MAPS-05

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

विकसित राजनीतिक सिद्धान्त

MAPS-05

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

विकसित राजनीतिक सिद्धान्त
(Advanced Political Theory)

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

प्रो. वी.आर. मेहता
अध्यक्ष, पूर्व कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

(स्व.) प्रो. इकबाल नारायण
4क5, जवाहर नगर, जयपुर (राज.)

प्रो. ए.पी. राणा
से. नि. आचार्य, राजनीतिक विज्ञान विभाग
एम.एस. विश्वविद्यालय, वडोदरा (गुजरात)

प्रो. शांति स्वरूप
से.नि. आचार्य एवं अध्यक्ष, राजनीतिक विज्ञान विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ (पंजाब)

प्रो. थॉमस पेन्थम
आचार्य, राजनीतिक विज्ञान विभाग
एम.एस. विश्वविद्यालय, वडोदरा (गुजरात)

डॉ. अनाम जैतली (संयोजक)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डॉ. लीला राम गुर्जर
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

तदान्तर नियुक्त संकाय सदस्य- डॉ.अशोक वर्मा, डॉ. कर्ण सिंह

पाठ्यक्रम निर्माण दल

प्रो. थॉमस पेन्थम
आचार्य, राजनीतिक विज्ञान विभाग
एम.एस. विश्वविद्यालय, वडोदरा (गुजरात)

डॉ. अशोक शर्मा
(राजनीतिक विज्ञान विभाग**)**
व

डॉ. अनाम जैतली
राजनीतिक विज्ञान विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डॉ. अनिल शुक्ला
(शिक्षा विभाग)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डॉ. लीला राम गुर्जर
राजनीतिक विज्ञान विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डॉ. नरेश दाधीच
राजनीति विज्ञान विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. नरेश दाधीच	**प्रो. एम.के. घड़ोलिया**	**योगेन्द्र गोयल**
कुलपति	निदेशक	प्रभारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामाग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

ISBN 13/978-81-8496-282-6

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

विकसित राजनीतिक सिद्धान्त

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई 1	राजनीति सिद्धान्त की प्रकृति	8–16
इकाई 2	राजनीति विज्ञान में मल्यों की भूमिका	17–25
इकाई 3	स्वतन्त्रता की अवधारणा-I	26–31
इकाई 4	स्वतन्त्रता की अवधारणा-II	32–47
इकाई 5	न्याय की अवधारणा-I जॉन रॉल का न्याय सिद्धान्त	48–63
इकाई 6	न्याय की अवधारणा-II माइकेल वॉल्जर	64–76
इकाई 7	समुदाय की अवधारणा-I चार्ल्स टेलर	77–91
इकाई 8	समुदाय की अवधारणा-II अलासदैर मेकण्टायर	92–107
इकाई 9	परम्परा, इतिहास तथा राजनीति-I माइकेल ऑकशॉट का राजनीतिक चिन्तन	108–123
इकाई 10	परम्परा, इतिहास तथा राजनीति-II ऐरिक वोगेलिन का वैचारिक संदर्भ	124–138

इकाई – 1 : राजनीति सिंद्धान्त की प्रकृति

इकाई संरचना

1. उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. व्यवहारवादी संकल्पनाएं
4. क्लासिकी राजनीतिक दर्शन का पुन: उद्भव
5. राजनीति दर्शन का 'केम्ब्रिज स्कूल'
6. राजनीति सिद्धान्त के नवकाण्टवादी प्रतिपादन
7. समसामयिक राजनीति सिद्धान्त का प्रकृति–सार
8. अभ्यास प्रश्न
9. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप यह भलीभांति समझ सकेंगे कि–

1. राजनीति सिद्धान्त की विषय वस्तु तथा प्रकृति में क्या कुछ सम्मिलित है?
2. उसके प्रमुख वैचारिक पड़ाव कौन–कौन से से परिलक्षित होते आए हैं? तथा
3. राजनीति सिद्धान्त राजनीतिक यथार्थ से किस सीमा तक संलग्न है? उसका क्या प्रभाव इंगित होता है?

2. प्रस्तावना

राजनीतिक दर्शन ग्रीक काल से लेकर उन्नीसवीं सदी के मध्य तक शाश्वत मूल्यों, व्यावहारिक मुद्दों तथा लोकनीति के बिन्दुओं से जुड़ा रहा । यद्यपि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध तथा बीसवीं सदी के प्रारंभ में राजनीति दर्शन का एक भिन्न रूप सामने आया । इस काल के राजनीतिक दर्शन को परम्परागत राजनीतिक दर्शन का नाम दिया गया । इस काल में राजनीतिक दर्शन की अध्ययन पद्धति ऐतिहासिक, विकासात्मक तथा तुलनात्मक रही । परम्परागत पद्धति के आग्रह का जन्म हीगल, काम्टे तथा स्पेंसर की रचनाओं से होता है किन्तु राजनीति दर्शन में इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति हमें विलियन डनिंग, मेकलवेन तथा सेबाइन के लेखन में दिखाई पड़ती है । राजनीतिक दर्शन के संदर्भ में इस पद्धति के तीन पक्ष प्रमुख रहे हैं:

प्रथम, राजनीति दर्शन को ग्रीक काल से लेकर अब तक के राजनीतिक चिंतन के इतिहास के अध्ययन के रूप में देखा जाने लगा । राजनीतिक दर्शन की अपेक्षा राजनीतिक दर्शन के इतिहास पर जोर दिया जाने लगा । अत: अध्ययन का आग्रह राजनीतिक दर्शन की अपेक्षा इतिहास के दर्शन पर हो गया ।

द्वितीय, राजनीतिक दर्शन विचारधारा में बदल गया ।

तृतीय, संस्था एवं कानून के प्रति आग्रह पर जोर दिया जाने लगा ।

बीसवीं सदी के दूसरे दशक के प्रारंभिक वर्षों में राजनीतिक दर्शन की दिशा थोड़ी बदली तथा उसका आग्रह अधिक विश्लेषणात्मक, वर्णनात्मक एवं व्याख्यात्मक विज्ञान पर हो गया । किन्तु फिर भी राजनीतिक दर्शन मुख्यत: राजनीतिक विचारों के इतिहास तथा विभिन्न सामाजिक–आर्थिक परिप्रेक्ष्यों में राजनीतिक संस्थाओं के अध्ययन तक ही सीमित रहा ।

3. व्यवहारवादी संकल्पनाए

राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में चार्ल्स मेरियम एक नए युग की शुरूआत करता है । इसी कारण उसे नए राजनीति विज्ञान का जन्मदाता माना जाता है । चार्ल्स मेरियम ने समाज विज्ञान अन्वेक्षण हेतु वस्तुपरक एवं संख्यात्मक तकनीक जैसी परिष्कृत पद्धतियों पर जोर दिया। इस हेतु उसने राजनीति विज्ञान में दूसरे समाज विज्ञानों, विशेषकर मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र, से अवधारणाओं एवं पद्धतियों को अपनाना शुरू कर दिया । किन्तु इस युग की उल्लेखनीय विशेषता यह रही है कि चार्ल्स मेरियम जैसे व्यक्तियों के लेखन में विज्ञानवाद के प्रति बढ़ती प्रतिबद्धता के होते हुए भी अनुभवात्मक वैज्ञानिक सिद्धान्त तथा राजनीतिक चिन्तन के इतिहास के अध्ययन की प्रवृत्तियों को राजनीतिक दर्शन के अध्ययन में परिपूरक प्रयासों के रूप में देखा गया । एक का आग्रह राजनीतिक प्रक्रियाओं के समसामयिक विश्लेषण पर था तो दूसरे का उनके विकास पर । दूसरे शब्दों में, कह सकते हैं कि इस युग में राजनीतिक दर्शन की दो प्रवृत्तियां समान्तर रुप से चलती रहीं । इनमें एक का आग्रह राजनीतिक चिन्तन के इतिहास के अध्ययन, उदार लोकतांत्रिक विचारों एवं उनके ऐतिहासिक विकास एवं उनका नाजी, फासी तथा साम्यवाद के सर्वाधिकारवादी आग्रह से अत्तर पर रहा तो दूसरी प्रवृत्ति का रूझान राजनीतिक प्रक्रियाओं एवं विवेकीय लोकनीति पर रहा है । पहली प्रवृत्ति को जॉर्ज सेबाइन ने आगे बढ़ाया तो दूसरी प्रवृत्ति को हेरॉल्ड लासवेल ने ।

यद्‌यपि व्यवहारवाद के तत्त्व हमें 1920 से राजनीतिक सिद्धान्त में देखने को मिलते हैं किन्तु वह 1950 तक अपना स्वरूप ग्रहण नहीं कर पाया था । व्यवहारवादी क्रांति एवं आंदोलन छठे दशक के मध्य तक राजनीति विज्ञान की मुख्य धारा का अंग बन गयी । यह सही है कि व्यवहारवाद के तत्त्व हमें चार्ल्स मरियम तथा लासवेल के लेखन में देखने को मिलते हैं, किन्तु अवधारणा के रूप में इसका स्पष्ट उल्लेख डेविड ईस्टन ने किया । प्रयास इस बात का रहा है कि प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धति के आधार पर राजनीति के विज्ञान का विकास किया जाए । उपर्युक्त दोनों धाराओं के वर्षों तक सहअस्तित्व में रहने के उपरान्त राजनीति विज्ञान के अध्ययन की ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक उपागमों में एक संघर्ष की स्थिति पैदा हो गई । इसका मुख्य कारण व्यवहारवादी विचारक रहे हैं । व्यवहारवादियों के अनुसार राजनीतिक दर्शन के इतिहास का अध्ययन एक 'अवैज्ञानिक, मानवीय एवं पुरातत्वीय पद्धति' लिए है । अगर हमें राजनीति यथार्थ को समझना है तो हमें ऐतिहासिक, दार्शनिक, संस्थात्मक एवं कानूनी पद्धति को नहीं वरन् उस हेतु हमें प्रक्रिया एवं व्यवहार को अपने अध्ययन का केन्द्र बनाना होगा। डेविड ईस्टन ने कहा है कि राजनीतिक के इतिहासवादी अध्ययन के कारण राजनीति सिद्धान्त का पतन हो गया है । डेविड ईस्टन के अनुसार राजनीतिक सिद्धान्त ऐतिहासिक विश्लेषण के रूप में सीमित हो गया है तथा भूतकालीन विचारों पर परजीवी की तरह जीवित

रहने लगा है । इसने अपने मूल्यांकनात्मक संदर्भ सूचकता की परम्परागत भूमिका को त्याग दिया है । साथ ही यह राजनीतिक व्यवहार तथा राजनीतिक संस्थाओं के संचालन के बारे में व्यवस्थात्मक सिद्धान्त निर्माण के कार्य को अस्वीकृत कर चुका है । ईस्टन के अनुसार राजनीतिक सिद्धान्त का पतन इतिहासवाद में हो गया । इस पतन की स्पष्ट अभिव्यक्ति हमें डनिंग मेकलवेन तथा सेबाइन की रचनाओं में दिखाई देती है । ईस्टन का आरोप था कि इन विचारकों ने समसामयिक मूल्यों के प्रति आलोचनाविहीन प्रवृत्ति अपना ली है । अत: राजनीतिक विचारों के इतिहासकारों की रुचि आज के सदंर्भ में भूतकालीन मूल्यों में नहीं वरन् वे इनका इतिहास केवल विवरण के लिए देखते हैं । इनका तर्क था कि राजनीतिक सिद्धान्त की इस तरह की परम्परा भूत का मृतप्राय अध्ययन है तथा वास्तविक वैज्ञानिक खोज की प्रगति में यह एक बाधा खड़ी करती है । ईस्टन ने जोर देकर कहा कि आज आवश्यकता, राजनीति मूल्यांकन के पुन: उद्भव तथा सामाजिक, वैज्ञानिक ज्ञान तथा राजनीतिक क्रिया की संबद्धता की है । उनका आग्रह इस बात पर रहा हे कि मूल्यों का विवेचन तथ्यों के विवरण एवं व्याख्या से अलग होना चाहिए । साथ ही हमें राजनीति के शुद्ध अनुभवात्मक विज्ञान पर जोर देना चाहिए । प्रस्तुत अध्ययन में हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि परम्परागत राजनीतिक दर्शन की प्रकृति क्या रही? क्या राजनीतिक सिद्धान्त के इतिहासकारों पर राजनीतिक सिद्धान्त के पतन का आरोप लगाना ठीक है? क्या इस युग में राजनीतिक सिद्धान्त का पतन हुआ है या राजनीतिक सिद्धान्त मृतप्राय हो गया है?

4. क्लासिकी राजनीतिक दर्शन का पुन: उद्भव

एक तरफ व्यवहारवादी राजनीतिक सिद्धान्त के इतिहासकारों पर राजनीतिक सिद्धान्त के पतन का आरोप लगा रहे थे तो दूसरी तरफ लियो रट्राउस, ऐरिक वोगेलिन तथा माइकल ऑकशॉट जैसे विचारकों ने इसका प्रत्युत्तर दिया । लियो स्ट्राउस जैसे राजनीति सिद्धान्त के इतिहासकार ने कहा कि वास्तव में राजनीतिक का नया विज्ञान ही पतन का वास्तविक लक्षण है जिसे कि हम सामान्यत: पश्चिम के राजनीतिक संकट, प्रत्यक्षवादी प्रवृत्तियों तथा आदर्शात्मक मुद्दों को अपनाने की असफलता में देख सकते हैं । भूत के राजनीतिक चिन्तन के अध्ययन का महत्त्व आधुनिक राजनीतिक मुद्दों की उपयुक्त समझ में है तथा समसामयिक राजनीतिक समस्याओं को दूर करने एवं उनके समाधान में है । इन विचारकों का आरोप रहा है कि तथ्यों को मूल्यों से अलग करने का आधुनिक राजनीति विज्ञान का प्रयास असंभव है । ये विचारक क्लासिकल राजनीतिक दर्शन की महान् परम्परा के पुन: उद्भव एवं पुन: स्थापना पर जोर देने लगे । क्लासिकल राजनीतिक दर्शन के पुन: प्रतिपादकों ने व्यवहारवाद को राजनीतिक सिद्धान्त के अस्तित्व के लिए एक खतरा माना । इनका मानना था कि व्यवहारवाद का संबध क्लासिकल राजनीतिक दर्शन के पुन: उद्भव से नहीं है, बल्कि वे ऐसी गलत एवं विसंगत पद्धति को लेकर चलते हैं, जो भूतकालीन प्रज्ञा की अनदेखी करती है । यह स्वयं राजनीतिक सिद्धान्त के पतन का एक लक्षण है । माइकल ऑकशॉट ने विवेकवाद की आलोचना करते हुए राजनीति में रूढ़िवादी आग्रह पर जोर दिया है । उनका मानना रहा है कि विज्ञानवाद तकनीकी ज्ञान तक सीमित हो गया है और तकनीकी ज्ञान हमारे ज्ञान का केवल एक पक्ष होता है । एक दूसरा पक्ष

और है व्यावहारिक ज्ञान का जो कि संबंधित समाज की परम्पराओं एवं रीतिरिवाजों से ही प्राप्त किया जा सकता है । अत: हमें समस्याओं का समाधान उस संबंधित समाज की परम्पराओं के अन्दर ही ढूंढना चाहिए । अगर उस समाज की विशिष्ट परम्पराओं के अनुरूप समाधान न ढूंढा गया एवं संस्थाओ को तय नहीं किया गया तो उनकी असफलता निश्चित है । ऐरिक वोगेलिन ने हीगल एवं प्रत्यक्षवाद के प्रभाव के फलस्वरूप आई दर्शन की विकृति का विवेचन करते हुए कहा है कि आज दर्शन पथविचलन की स्थिति में आ गया है । राजनीतिक यथार्थ के प्रतीकों का स्थान द्वितीय श्रेणी के प्रतीकों ने ले लिया है, फलत: राजनीतिक यथार्थ को पकड़ना असंभव हो गया है । ऐरिक वोगेलिन के अनुसार दर्शन की इस विकृति को दूर करने के लिए आवश्यक है कि एक ऐसी व्यवस्था की खोज की जाए जिसमें क्लासिकल मान्यताओं को समुचित स्थान मिल सके तथा प्लेटो एवं अरस्तु की शिक्षाओं की पुन: स्थापना संभव हो सके । बीसवीं सदी का सम्पूर्ण पांचवा दशक राजनीति सिद्धान्त की दृष्टि से एक विवाद का युग रहा है। साथ ही छठे दशक में भी यह मान्यता बनी रही कि प्रत्यक्षवाद, विशेषकर इसके व्यवहारवादी स्वरूप के प्रभाव के कारण अनुभवात्मक (empirical) राजनीतिक विज्ञान का विकास हुआ, उससे राजनीतिक सिद्धान्त का पतन हो गया है । Philosophy, Politics and Society श्रृंखला की सम्पादकीय भूमिकाएं, बर्लिन का लेख 'Does Political Science Still Exist ?' तथा प्लेमेट् की अपनी पुस्तक 'Man and Society'' की भूमिका आदि इसी प्रवृत्ति के स्पष्ट उदाहरण हैं ।

छठे दशक के अंत में व्यवहारवाद की उसके शुद्ध विज्ञान के आग्रह के कारण कई ओर से आलोचना होने लगी । इनमें हम दो तरह की आलोचनाओं को लेते हैं जिन्होंने राजनीतिक सिद्धान्त को नया रूप प्रदान किया । प्रथम, व्यवहारवादियों पर यह आरोप लगाया गया कि वे अपने युग के महत्त्वपूर्ण सामाजिक तथा राजनीतिक मुद्दों का अध्ययन करने में असफल रहे हैं। फलत: व्यवहारवाद के प्रमुख प्रतिपादक डेविड ईस्टन ने ही सन् 1969 में राजनीति विज्ञान में एक नई क्रांति की शुरुआत की जिसे उत्तर व्यवहारवाद की संज्ञा दी गई । उत्तर व्यवहारवाद में वैज्ञानिक पद्धति एवं तकनीक पर कम तथा विषय के जन दायित्वों तथा राजनीति समस्याओं पर ज्यादा जोर दिया जाने लगा । इस आग्रह ने विषय की लोकनीति छवि को पुन: उभारा । इसी को विषय की पहचान का प्रतीक बनाया गया । किन्तु राजनीतिक सिद्धान्त की दृष्टि से दूसरी आलोचना ज्यादा महत्त्वपूर्ण है । व्यवहारवाद की वैज्ञानिक पद्धति एवं उसके विश्लेषण को सबसे ज्यादा बढ़ावा एवं औचित्य तार्किक प्रत्यक्षवाद द्वारा दिया गया । अत: विचारकों ने राजनीतिक सिद्धान्त के प्रत्यक्षवादी स्वरूप पर आक्रमण करना प्रारंभ किया । इनमें हम थॉमस कुहन, हेबरमास, पीटर विंच तथा एलफ्रेड शुज (Alfred Schutz) को ले सकते हैं । थॉमस कुहन ने 'पैरेडायम' तथा हेबरमास ने 'कम्युनिकेटिव इथिक्स' की मान्यता रखी । थॉमस कुहन एवं हेबरमास के लेखन तथा समाज विज्ञान दर्शन में जो नई चुनौतियां सामने आईं उसके फलस्वरूप राजनीतिक सिद्धान्त में प्रत्यक्षवादी समाज विज्ञान की धारणा का स्थान कम होने लगा । पीटर विंच एवं एलफ्रेड शुज 'समाज विज्ञान के विचार' पर जोर देने लगे । पीटर विंच

का मानना है कि समाज विज्ञान का विचार प्रत्यक्षवादी समाज विज्ञान की धारणा से न केवल भिन्न है, वरन् इसने प्रत्यक्षवादी समाज विज्ञान की धारणा पर भी कुठाराघात किया है ।

इन आलोचनाओं के फलस्वरूप राजनीतिक सिद्धान्त के क्षेत्र में प्रत्यक्षवादी धारणा कमजोर पड़ने लगी । इसी समय राजनीति दर्शन ने इन मुद्दों से अपने को अलग कर लिया तथा सारभूत मुद्दों से अपना संबंध जोडना प्रारंभ कर दिया । दूसरे शब्दों में, जहां लम्बे समय से राजनीति सिद्धान्त केवल पद्धतीय प्रश्नों (methodological questions) से जुड़ा रहा, वही इसमें व्यक्ति एवं समाज तथा राज्य की स्वरूप संरचना पर जोर दिया जाने लगा । फलत: कुछ विचारक, विशेषकर डेविड मिलर इस काल के राजनीतिक सिद्धान्त को आदर्शात्मक राजनीतिक सिद्धान्त मानने लगे । डेविड मिलर का मानना रहा है कि राजनीतिक सिद्धांत एक बार फिर अपने परम्परागत स्वरूप की तरफ लौट गया है ।

5. राजनीति दर्शन का 'केम्ब्रिज स्कूल'

यहां यह उल्लेख करना वांछनीय होगा कि जहां राजनीतिक सिद्धांत सातवें दशक के प्रारंभ से जीवन के सारभूत मुद्दों से जुड़ा वहीं इसके समानान्तर रूप से राजनीतिक सिद्धान्त में एक अन्य धारा भी समाविष्ट रही जिसे राजनीति चिंतन के इतिहास में केम्बिज स्कूल की संज्ञा दी गई । इस स्कूल के प्रमुख विचारकों में हम क्वींटन स्कीनर, पीटर लासलेट, जॉन पोकॉक एवं जॉन डन को ले सकते हैं । इन विचारकों का आग्रह राजनीतिक चिंतन के इतिहास, विशेषकर क्लासिकल मूलपाठ (texts) का विश्लेषण करना रहा है । ये विचारक इस धारणा को लेकर चलते हैं कि किसी भी आलोचनात्मक विश्लेषण में भूतकालीन मूलपाठ का अर्थ समझना एक प्राथमिक आवश्यकता है । इसके लिए हमें व्याख्या की आधुनिक पद्धतियों का प्रयोग करना चाहिए । अत: मूलपाठ (text) के साथ जिस संदर्भ (context) में यह 'टेक्सट' लिखी गई, उसे भी देखना चाहिए । इस हेतु पोकॉक ने भाषा को प्रमुख माना है तो स्कीनर ने विचारधारा को आधार बनाकर 'टेक्सट' के मूल्यांकन पर जोर दिया है । स्कीनर का मानना रहा है कि 'टेक्सट' को समाने के लिए हमें न केवल उसके अर्थ को समझना होगा वरन् साथ ही यह भी देखना होगा कि इसके लिखने में लेखक के क्या इरादे रहे हैं । केम्ब्रिज स्कूल के विचारकों का क्लासिकल 'टेक्सट' के गहन विश्लेषण एवं व्यापक समझ पर आग्रह रहा है किन्तु राजनीतिक चिन्तन के इतिहास को राजनीतिक सिद्धान्त की समसामयिक स्थिति से पृथक कर दिया गया । फलत: इनका विवेचन भूतकालीन 'टेक्सट्स' के विश्लेषण तक ही सीमित रहा ।

6. राजनीति सिद्धान्त के नबकाण्टबादी प्रतिपादन

राजनीतिक सिद्धान्त के विकास में सन् 1971 में प्रकाशित जॉन रॉल्स की पुस्तक 'A Theory of Justice' एक ऐतिहासिक कदम है । जॉन रॉल्स की पुस्तक के ऐतिहासिक महत्त्व का विवेचन करने हुए ब्रायन बेरी ने लिखा है कि रॉल्स का ऐतिहासिक महत्त्व इसमें नहीं है कि उसकी विषय सूची में क्या है एवं वह क्या कहता है तथा उनके तर्कों में कितनी अन्त : निहित बौद्धिकता है, वरन् यह इसमें है कि वह 600 पृष्ठों से भी ज्यादा की एक पुस्तक आदर्शात्मक तार्किकता से लिख पाया । रॉल्स की पुस्तक एक लम्बे अन्तराल के बाद दार्शनिक सशक्तता से लिखी गई पुस्तक के रूप में सामने आई । रॉल्स की पुस्तक का ब्रिटीश

एवं अमेरिका के राजनीतिक सिद्धान्त एवं राजनीतिक जीवन दोनों पर ही व्यापक प्रभाव रहा हैं । तदोपरान्त के वर्षो में बहुत सारी महत्त्वपूर्ण रचनाएं सामने आईं जिन्होंने रॉल्स के सिद्धान्त का विकल्प प्रस्तुत करने का प्रयास किया हैं इसमें उल्लेखनीय है – राबर्ट नोजिक की पुस्तक 'Anarchy State and Utopia', माइकल वॉल्जर की पुस्तक ' Spheres of Justice', अलासदैर मेकण्टायर की पुस्तक 'After Virtue' तथा चार्ल्स टेलर का लेख 'Atomism' एवं पुस्तक 'Sources of Self' । इन सभी विचारकों द्वारा व्यक्ति उसके हित, उसके कर्तव्य, उसके नैतिक दावे, उसका समाज सें संबंध, सामाजिक संबंधों का स्वरूप आदि के प्रति अपनाए गए आग्रह को देखें तो सातवें दशक के बाद के राजनीतिक सिद्धान्त की तीन मुख्य धाराएं उभर सामने आती हैं । ये निम्नलिखित हैं:

प्रथम पहली धारा को हम नवकाण्टवादी उदार राजनीतिक सिद्धान्त कह सकते है । इस धारा का प्रतिनिधित्व जॉन रॉल्स, डर्बोकिन, इसैह बर्लिन करते हें । ये विचारक उदारवाद की उपयोगिता के आग्रह से दूर हटकर नैतिकतायुक्त उदार मान्यता पर जोर देते हैं । इस हेतु इन विचारकों ने काण्ट को अपने चिन्तन का आधार बनाया । अत: इन विचारकों ने उदारवादी मान्यता के घेरे में दो तत्त्वों नैतिक आधार तथा समतावादी दृष्टिकोण को जोड़ने पर जोर दिया। जॉन रोल्स ने उपयोगितावादी मान्यता की आलोचना करते हुए एक न्यायसंगत सामाजिक व्यवरथा स्थापित करने पर जोर दिया । रॉल्स अपनी न्याय की मान्यताओं में एक तरफ व्यक्ति को स्वतंत्र एवं समान विवेकीय प्राणी मानता है तो दूसरी तरफ वह अपनी सामाजिक एवं आर्थिक असमानताओं को इस रूप में व्यवस्थित करता है कि न्यूनतम सुविधा प्राप्त व्यक्तियों को सर्वाधिक लाभ मिले । यहां यह उल्लेख करना वांछनीय होगा कि रॉल्स स्वयं सन् 1980 के उपरान्त के अपने लेखन में अपनी मान्यता में संशोधन करता है । तथा वह समुदायवादी चिन्तन प्रवृत्ति की तरफ बढ़ता दिखाई देता है । यहां रॉल्स का आग्रह मूल स्थिति (original position) एवं विवेकीय चयन पद्धति पर नहीं वरन् एक विशिष्ट प्रकार के समाज से सम्बद्ध व्यक्तियों के मध्य सार्वजनिक सहमति के आधार के रूप में न्याय की भूमिका को प्रस्तुत करने पर रहा है । यहां रॉल्स न्याय के सिद्धान्तों को तय करने हेतु व्यक्ति के अमूर्त हितों की मान्यता की अपेक्षा 'व्यक्ति की अवधारणा' की स्पष्ट मान्यता लेकर चलते हैं । इसी मान्यता के आधार पर वे आधुनिक संवैधानिक लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना का आग्रह लेकर चलते हैं ।

द्वितीय, राजनीतिक सिद्धान्त की दूसरी धारा इच्छास्वतंत्रवादी (Libertarian) राजनीति सिद्धान्त की रही है । इस राजनीति सिद्धान्त के प्रतिपादकों में रोबर्ट नोज़िक एवं डेविड गौथियार (David Gauthier) प्रमुख रहे हैं । इच्छास्वतंत्रवादी विचारकों का मानना रहा है कि व्यक्ति एवं उसके संपत्ति के अधिकार को स्थापित एवं संरक्षित किया जाना चाहिए । इस हेतु ये विचारक सीमित राज्य की मान्यता को लेकर चलते हैं । इच्छास्वतंत्रवादी विचारक राज्य के दमनकारी तंत्र की आलोचना करते हैं । रोबर्ट नोज़िक ने रॉल्स पर व्यक्ति के अधिकारों की अवहेलना करने का आरोप लगाया । नोजिक ने रॉल्स के न्याय सिद्धान्त पर आक्रमण करते हुए कहा है कि रॉल्स की सामाजिक न्याय की मान्यता के साथ व्यक्तिगत अधिकारों की मान्यता मेल नहीं खाती है । नोजिक का मानना है कि रॉल्स अपनी उदार समतावादी मान्यता की

प्रस्थापनाओं में क्लासिकल उदारवाद की मान्यताओं से बचने के प्रयास में व्यक्तिगत अधिकारों की भाषा से ही दूर चला गया है जो कि एक खतरनाक स्थिति है क्योंकि वहां सर्वाधिकारवादी शक्ति के बढ़ने की संभावना व्याप्त हो जाती है । अत: नोजिक अधिकारयुक्त उदार मान्यता पर जोर देने लगा । नोजिक जॉन लॉक की मान्यता को स्वीकार करता हुआ कहता है कि व्यक्ति के अधिकारों की देखरेख एवं सुरक्षा हेतु एक राज्य जैसी प्रभुत्वकारी संरक्षण एजेन्सी को स्वीकृति प्रदान की जाती है । किन्तु इस तरह की एजेन्सी (राज्य) को व्यक्ति के अधिकारों के अतिक्रमण का अधिकार नहीं होगा । अत: इस राज्य के पास टैक्स लगाने जैसे अधिकार भी नहीं होंगे । नोज़िक का आग्रह है कि राज्य के पास संरक्षण, न्याय एवं व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा के अलावा कोई न्यायोचित शक्तियां नहीं हैं । अत: नोजिक ने अत्यल्प राज्य (minimal state) की बात की जिसमें व्यक्ति के अधिकार अक्षुण्ण बने रहें । नोजिक एक ऐसे आदर्श राज्य की स्थापना पर जोर देते हैं जहां व्यक्ति चाहे जैसे अपने जीवन को तय कर सकते हैं ।

समसामयिक राजनीतिक सिद्धान्त की तीसरी धारा सामुदायिक विचारकों, (Communitarian thinkers) की है । इन विचारकों में हम अलासदैर मेकिण्टायर, माइकल वॉल्जर, चार्ल्स टेलर तथा बेंजामिन बारबर को ले सकते हैं । सामुदायिक विचारकों ने नैतिक आधारयुक्त उदार मान्यता (रॉल्स) तथा अधिकारों युक्त उदार मान्यता (नोजिक) दोनों की ही आलोचना करने हुए कहा कि ये मान्यताएं अपने आप को व्यक्तिवादी मान्यता से अलग नहीं कर पाई है । इन विचारकों, रॉल्स एवं नोजिक की पद्धति व्यक्तिवादी रही तथा लक्ष्य सामुदायिक किन्तु ये विचारक सामुदायिक लक्ष्यों के अनुरूप किसी भी प्रकार की सामुदायिक जीवन की योजना स्पष्ट करने में असफल रहे हैं । फलत: उनकी पद्धति तथा लक्ष्यों में खाई पैदा हो गई जिसे पाटने में ये विचारक असमर्थ रहे ।

सामुदायिक विचारकों के अपने चिन्तन का आधार अरस्तु तथा हीगल को बनाया । अरस्तु एवं हीगल के चिन्तन से स्रोत लेते हुए इन विचारकों ने एक तरफ रॉल्स एवं नोजिक की मान्यता का विकल्प प्रस्तुत किया तो दूसरी तरफ उन्होंने समसामयिक उदारवाद में कम से कम सैद्धान्तिक रूप से तो 'स्व' तथा समुदाय में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया । अरस्तु का अनुसरण झरते हुए इन विचारकों ने कहा कि हम सामान्य तथा सामुदायिक लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को ध्यान में रखे बिना राजनीति समझौतों एवं सहमतियों को यायसंगत नहीं देख सकते हैं । इसके लिए जरूरी है कि हम सामुदायिक जीवन में किसी व्यक्ति की भूमिका को देखें । काण्ट के विरुद्ध प्रयुक्त किए गए हीगल के तर्को को अपनाते हुए ये विचारक आधुनिक उदारवाद की अच्छाई के ऊपर अधिकारों को प्राथमिकता देने के दावे अर्थात् उदारवादी सिद्धान्त की 'डिऑन्टोलोजिकल' (Deontological) स्थिति तथा व्यक्ति की स्वतंत्र पसन्दगी की प्रमुखता को चुनौती देने लगे । अलासदैर मेकण्टायर (Alasdair Macintyre) ने अरस्तु की न्याय की धारणा को स्वीकार करते हुए रॉल्स एवं नोजिक द्वारा योग्यता की उपेक्षा किए जाने के कारण उनकी आलोचना की । अरस्तु की धारणा में न्याय ऐसे समुदाय में निहित होता है जिसमें व्यक्ति तथा समुदाय दोनों एक – दूसरे की अच्छाई में सहभागी हों । इस संदर्भ में हम देख सकते हैं कि मैकिण्टायर के अनुसार व्यक्ति का लक्ष्य तथा उसकी उपलब्धि केवल उसके अपने

आप तक ही सीमित नहीं है वरन् वे उस समुदाय से भी जुड़ी हैं जिसमें व्यक्ति रह रहा है । इसी भांति माइकल वॉल्जर ने भी रॉल्स तथा नोजिक की मान्यता को अस्वीकार करते हुए कहा है कि इन्होंने व्यक्ति को उसके सामाजिक पक्ष से अलग कर दिया है । दूसरे शब्दों में, व्यक्ति का समुदाय से संबंध कट गया तथा प्रत्येक व्यक्ति अन्य दूसरे व्यक्ति से पृथक हो गया । साथ ही वाल्जर ने उदारवादियों की इस मान्यता को भी अस्वीकार कर दिया कि विभिन्न प्रकार की संस्थाएं कृत्रिम हैं तथा इनका अस्तित्व व्यक्तियों की सहमति पर निर्भर करता है । वॉल्जर का मानना है कि ये संस्थाएं किसी भी रूप में व्यक्तियों के समझौते का परिणाम नहीं है । अत: इन सब पर सर्वमान्य कानून, नियम, रीति–रिवाज लागू नहीं होते । इन संस्थाओं का दायरा तथा नियम उस विशिष्ट समाज की प्रकृति पर निर्भर करता है । वॉल्जर आधुनिक उदार समाजों में सन्निहित सामाजिक समझ के आधार पर न्याय का सिद्धान्त विकसित करना चाहते हैं । वॉल्जर के अनुसार समाज में बहुत सारे विभिन्न क्षेत्र (Spheres) होते हैं । प्रत्येक क्षेत्र में भिन्न कसौटी के अनुसार वस्तुओं का वितरण होना चाहिए । उदाहरण के लिए, लोककल्याणकारी वस्तुओं का वितरण आवश्यकता एवं पदों का समान अवसर के आधार पर होना चाहिए । साथ ही वॉल्जर का मानना है कि प्रत्येक वस्तु के सामाजिक अर्थ का निर्धारण उसके वितरण सिद्धान्त से ही निर्धारित होता है । अगर हम विभिन्न क्षेत्रों की पृथकता बनाए रखने में सफल रहते हैं तो हम समाज में समानता स्थापित करने में सफल होंगे । चार्ल्स टेलर का मानना है कि उदार राजनीतिक सिद्धान्त परमाणुवाद (Atomism) की मान्यता पर आधारित है जिसमें यह माना जाता है कि व्यक्ति समाज के बाहर आत्मनिर्भर है, अत: उसे सांस्कृतिक परिवेश की कोई जरूरत नहीं है । उदारवादी व्यक्ति, जैसा कि उसे परमाणुवादी सिद्धान्त के 'अंतर्गत माना गया है, अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं से पूर्णत: जुड़ा है । चार्ल्स टेलर ने आधुनिक स्व की मान्यता को अस्वीकार कर दिया है । उन्होंने आधुनिक स्व की धारणा की अपेक्षा सामाजिक धारणा को स्वीकृति प्रदान की है । उनका मानना है कि व्यक्ति की क्षमताएं सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश के साथ एक विशिष्ट प्रकार के समाज में ही विकसित एवं संचालित हो सकती हैं ।

7. समसामयिक राजनीति सिद्धान्त का प्रकृति–सार

अगर हम समसामयिक राजनीति सिद्धान्त की प्रकृति को देखें तो पाते हैं कि पिछले एक दशक से व्यक्ति एवं समाज की पारस्परिक संबंधता का अध्ययन ही इसका मुख्य विषय रहा है । साथ ही, जिस तेजी से राजनीतिक सिद्धान्त से संबंधित साहित्य सामने आ रहा है वह अपने आप में राजनीतिक सिद्धान्त के प्रति बढ़ती हुई रुचि का प्रतीक है ।

8. अध्याय प्रश्न

1. 'राजनीतिक सिद्धान्त की प्रकृति' विषय पर एक लेख लिखिए ।
2. राजनीतिक सिद्धान्त के क्षेत्र में व्यवहारवादी संकल्पनाओं से क्या आशय है? चर्चा कीजिए ।
3. राजनीतिक सिद्धान्त के सदंर्भ में क्लासिकी राजनीतिक सिद्धान्त के पुन: उद्भव का क्या प्रभाव पड़ा? समीक्षा कीजिए ।

4. राजनीतिक सिद्धान्त के नवकाण्टवादी प्रतिपादन क्या हैं? उनकी तीन वैचारिक धाराओं का उल्लेख कीजिए ।
5. राजनीतिक सिद्धान्त के 'केम्ब्रिज स्कूल' का महत्त्व स्पष्ट कीजिए ।

9. संदर्भ ग्रन्थ सूची

इंटरनेशनल एन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेज (1973)

लीलाराम गुर्जर : बीसवीं सदी के राजनीतिक विचारक (1997)

इकाई 2 : राजनीति विज्ञान में मूल्यों की भूमिका

इकाई संरचना

1. उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. मूल्य – अर्थ एवं स्वरूप
4. मूल्यों का परिचालन
5. राजनीति एवं मूल्य – प्रक्रियात्मक संदर्भ
6. राजनीति विज्ञान में मूल्यों का महत्त्व
7. निष्कर्ष
8. अभ्यास – प्रश्न
9. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप यह समझ सकेंगे कि –

1. मूल्य से क्या अभिप्राय है और उनका क्या स्वरूप है?
2. मूल्य समाज एवं राजनीति में कैसे परिचालित होते हैं?
3. मूल्यों की क्रियाशीलता राजनीतिक सिद्धान्त एवं प्रक्रिया को किस प्रकार प्रभावित करती है? तथा
4. राजनीति विज्ञान में मूल्यों का क्या महत्त्व है?

2. प्रस्तावना

दर्शन व सामाजिक विश्लेषण में 'मूल्य' तथा 'मूल्य मीमांसा' व 'वैज्यू' व 'वैल्यू–फिलॉसफी' के रूप में प्रचलन काफी नवीन प्रवृत्ति है जिसकी संगठित शुरूआत सन् 1880 – 90 के दौरान हुई और 1920 तक अनेक उल्लेखनीय बौद्धिक योगदान प्रकट हुए। इस दृष्टि से पैरि की जनरल थियरी ऑफ वैल्यू, मैटर्स की एक हिस्टरी ऑफ योरोपियन थॉट इन दि नाइन्टीन्थ सेन्चुरी, ऐरेन्फेल्स की सिस्तेम देर बैर्त–तेओरी, जिमल की फिलोसफी देस गैल्दसे पॉललापि की लोजिक दलावोलोंते तथा अर्बन की वैल्युशन–इट्स नेचर एण्ड लॉज कृतियां विशेष उल्लेखनीय है । इस बौद्धिक धारा को एक नूतन आयाम बौन्सेके हार्तमान तथा ड्युई की कृतियों से मिला । इस संदर्भ में बौन्सैके की प्रिंसीपल ऑफ इन्डिविडुएलिटी एण्ड वैल्यू हार्तमान की ऐतिक तथा ड्युई की थियरी ऑफ वेल्यूऐशन कृतियां महत्त्वपूर्ण हैं ।

इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि 1880 – 1920 के दौरान प्रकट इस बौद्धिक प्रचलन से पूर्व 'मूल्य' अथवा 'मूल्य मीमांसा' अविद्यमान अथवा उपेक्षित थे । वे और उनके प्रतिनिधि मंतव्य तो दर्शन व चिन्तन के प्रारंभ से ही क्रियाशील रहे हैं, कोई भी दर्शन उनके बिना पनप ही नहीं सकता । वस्तुतः नाम व रूप–भेद ही 'मूल्य' व 'मूल्य मीमांसा' को एक नवीन प्रस्थान बनाते हैं । पश्चिमी व भारतीय दर्शन तथा चिन्तन में 'मूल्य' के स्थान पर अन्य

भाव व नामादि प्रकट हुए हैं । उदाहरण के लिए, प्लेटो के चिन्तन में सत् 'श्रेयस' एवं 'सौंदर्य' की समग्र विवेचना मिलती है तो अरस्तु 'तत्त्व–दर्शन' एवं 'आचार–दर्शन' के क्रम में सत् व श्रेयस को संसाधित करता है । कालांतर में श्रद्धा व विश्वास (ईसाइयत), बुद्धि व तर्क (पुनर्जागरण) मूल्य–रूप में पश्चिमी चिन्तन के नियामक बने और यह सिलसिला लगातार चलता रहा ।

भारत में वैदिक काल में ऋतू से उत्पन्न 'आनन्द' वरेण्य था तो बौद्ध दर्शन में 'परमार्थ' चरम मूल्य था जो दु:ख के अनर्थ 'डिस्वैल्यू' से मोक्ष के (अल्टिमेट वेल्यू) तक ले जाता था । मध्यकाल में भक्ति और श्रद्धा तथा आधुनिक काल में आध्यात्मिक व मानवीय मूल्यों में समन्वय इसी मूल्य यात्रा की सततता के परिचायक हैं ।

बीसवीं सदी में सामाजिक विज्ञानों में मूल्यों के समावेश ने दर्शन, सिद्धान्त व समाज – विश्लेषण को एक नई बुलन्दी उपलब्ध कराई । इस क्रम में राजनीतिक सिद्धान्त एवं चिन्तन भी पर्याप्त समृद्ध हुआ । इस इकाई में आप इन्हीं प्रसंगों का अध्ययन करेंगे और उनके परिणामों तथा प्रभावों की कुछ थाह पा सकेंगे ।

3. मूल्य – अर्थ एवं स्वरूप

सामाजिक विज्ञानों में उपलब्ध साहित्य में मूल्यों की संकुचित तथा व्यापक–दोनों प्रकार की धारणाएं विद्यमान हैं । अपने संकुचित क्रम में मूल्य कुछ सुनिश्चित वांछनीय विषयक ऐसी धारणाएं हैं जो किसी चयनात्मक व्यवहार को निर्णायक रूप से प्रभावित करती हैं (रॉबिन एम. विलियस 'दि कॉन्सेप्ट ऑफ वैल्यूज', इन्टरनेशनल एन्साइक्लोपिडिया ऑफ दि सोशल साइंसेज 1972 पुनर्मुद्रित संस्करण, पृ.283) । मूल्य 'व्यक्तित्व के समग्र पदसोपानिक दीर्घकालिक लक्ष्यों से संगत आवेगों की संतुष्टि को नियमित करते हैं, (उनसे) व्यक्तित्व तथा सामाजिक सांस्कृतिक जगत दोनों का व्यवस्था निर्मिति के क्रम में समाधान होता है तथा सामाजिक जीवन–क्रम में (मूल्यों द्वारा) अन्य व्यक्तियों व समग्र समूहों के हितों का पारस्परिक समायोजन भी होता है ।' (क्लाइड क्लकहॉन, विनियम्स द्वारा उद्धत, वही)

अपने व्यापक अर्थ में कोई भी अच्छी या बुरी चीज मूल्य परिधि में समाविष्ट है (पैपर); अथवा मानव की रुचि का कोई भी विषय मूल्य है (पैरि) । ऐसा इसलिए क्योंकि अपनी मूल प्रकृति में व्यक्ति अपने अनुभव के तथ्यात्मक स्तर पर कभी संतुष्ट नहीं होते, वे निरन्तर मूल्य–आंकलन गतिविधि में संलग्न रहते हैं – 'अच्छा' या 'बुरा' नियत करते रहते हैं और अच्छे अथवा 'श्रेयस' के संदर्भ में स्वयं अपने को तथा अपने परिवेश को रूपांतरित करते रहते हैं । 'श्रेयस' के इसी संसाधन से समाज, सभ्यताएं एवं संस्कृतियां सतत निर्मित होती रहती हैं । 'श्रेयस' से अपकर्ष (गिराव) स्वयं समाजों, सभ्यताओं व संस्कृतियों के पतन का कारक बन जाता है ।

चाहें संकुचित हों अथवा व्यापक, प्रत्येक मूल्य–क्रिया के कुछ समान लक्षण प्रकट होते हैं । वे लक्षण इस प्रकार हैं :

(1) समस्त मूल्य प्रकारों में कुछ बोधात्मक तत्त्व निहित होते हैं – उनमें कुछ चयनात्मक अथवा दिशात्मक गुण विद्‍यमान होते हैं जो 'वणेण्य' का आभास देते हैं।

(2) समस्त उद्देश्यात्मक क्रियाएं मूल्यांकन क्रियाओं की परिधि में प्रकट होती हैं । उक्त क्रियाओं को तीन विशिष्ट मूल्यों से अर्थ प्राप्त होता है – क्रियात्मक मूल्य (जैसे– इच्छा, पसन्द आदि) उपलब्धिमूलक मूल्य (जैसे सफलता बनाम हताशा) तथा भावात्मक मूल्य (सुख बनाम पीड़ा अथवा दु:ख); तथा

(3) मूल्य व्यक्तित्व के निर्णायक संघटक तत्त्व अभिज्ञात करते है उनका संसाधन तथा उनमें समन्वय स्थापित करते हैं ।

विश्वास, आवश्यकताएं, मंतव्य एवं मानक यद्‍यपि मूल्यों से निक संबंधित हैं परन्तु वे मूल्य का तत्सम अथवा पर्याय नहीं है । इच्छा कु सुनिश्चित लक्ष्यों अथवा अवस्थाओं को निर्देशित मानवीय संवेग होता है । कु विशिष्ट स्थितियों में वह इतनी सघन हो सकती है कि वह 'आवश्यकता' ब जाए जैसे (भूख अथवा काम) जिसका मूल्य न तो एकमात्र और न सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संघटक तत्त्व होता है । दूसरी ओर मूल्य स्व आवश्यकताओं एवं इच्छाओ के उत्प्रेरक बनकर प्रकट होते हैं और अपने इस रूप में वे आवश्यकता तथा इच्छा को मूर्त रूप देते हैं, जैसे 'देशभक्ति' जीवन– बलिदान को अभिप्रेरित करें, व्यक्तियों में वीरता व त्याग की भावना का संचार करे । मूल्य अभिप्राय अथवा मंतव्य भी नहीं है । कुछ विशिष्ट मंतव्य किसी सुनिश्चित मूल्य के प्रति संकल्प तो गढ़ सकते हैं परन्तु मूल्य स्वयं ऐसी सक्षमता प्राप्त होते हैं कि वे किसी भी मंतव्य विशेष से प्राय: स्वतंत्र होते हैं । इसी प्रकार, मूल्य आचरण का नियम अथवा मानक भी नहीं होते यद्‍यपि आचरण के नियम इनसे अवश्य निर्धारित होते हैं । मूल्य तो वांछनीयता की कसौटियां बनाते हैं, उन्हें सतत औचित्य प्रदान करते हैं और इस अंतर्क्रिया से आचरण का बाहय व्यापार परिचालित होता है । मूल्य वे विद्‍युत तरंगे हैं जिनसे आचरण के ट्रेफिक की लाल, पीली, हरी बत्तियां सतत जलती – बुझती हैं और बिना किसी दुर्घटना के आवागमन सुचारु रहता है ।

4. मूल्यों का परिचालन

मूल्य किसी भी व्यक्तित्व, समाज अथवा संस्कृति के व्यावहारिक व सैद्धान्तिक क्रम में एकांगी नहीं होते । वैयक्तिक, सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन कभी भी किसी एक मूल्य के सहारे नहीं चलता । वस्तुत: अनेक मूल्य परस्पर, जुड़कर किसी व्यक्ति, समाज अथव संस्कृति के विकास की नियामक स्थितियां बनाते हैं । मूल्य स्वयं एक जटिल व बहुआयामी व्यवस्था से परिचालित होते हैं । प्रत्येक संदर्भ में विभिन्न प्रकार के मूल्यात्मक सम्बन्ध एवं संरचनाएं क्रियाशील होती हैं तथा उनके विशिष्ट तार्किक, जैविक व सामाजिक पक्ष उद्‍घाटित होते हैं । इस स्थिति में मूल्य कोई स्थिर सत्ता का बोध नहीं कराते । व्यक्तियों अथवा सामाजिक – सांस्कृतिक व्यवस्थाओं में मूल्य परिवर्त्यों (वेरिएबिल्स) के रूप में उपस्थित होते हैं ।

मूल्यों की विविधता व तुलनीयता को संस्कृतियों के आर–पार विभिन्न समाजों में देखने–परखने के अनेक अभ्यास किए गए हैं । ऐसे अभ्यास किसी व्यापक वैचारिक ढांचे व उसकी प्रतिनिधि श्रेणियों की सहायता से ही चरितार्थ हो सकते हैं । ऐसा एक बड़ा अभ्यास 1961 में प्रकाशित फ्लोरेन्ट क्लकहॉन तथा स्ट्रोइटबैक की कृति वेरिएशन्स इन वैल्यू ओरिएन्टेशन्स से प्रकट होता है । इस कृति में न्यू मैक्सिको की पांच संस्कृतियों का समन्वित अध्ययन किया गया और उसके विषयगत प्रक्षेपण (प्रोजेक्शन्स) प्रस्तुत किए गए । इस कृति में मूल्य–बोध में विचलन तथा वैविध्य को निम्नलिखित ढांचे की सहायता से अभिज्ञात किया गया और तदनुसार अन्तर–परिवर्ती प्राथमिकताएं (डिफरेन्शल प्रायौरिटीज) अधिनिर्णित की गई जो मूल्यों के परिचालन का एक अच्छा उदाहरण है :

(1) अंतर्निहित मानव प्रकृति के चारित्र की अवधारणा – वह बुरा है? अच्छा है? अच्छा बुरा दोनो है? वह चल है अथवा अचल?

(2) प्रकृति तथा अधि–प्रकृति (सुपरनेचर) से व्यक्ति का सम्बन्ध – यह सम्बन्ध सदभावमूलक है? उनके अधीन दासत्व का परिचायक है? अथवा, उन पर स्वामित्व का सूचक है?

(3) मानव जीवन के इहलौकिक (टेम्पोरल) केन्द्र बिन्दु – इन केन्द्र बिन्दुओं व मूल्य प्रधान स्थितियों के क्रम में अतीत, वर्तमान व भविष्य की सातव्यता व उस क्रम की व्याख्या/गवेषणा ।

(4) मानव गतिविधि की निश्चय मात्रा अथवा रीति–प्रकार (मोडैलिटीज) – भव (होना), भवत् (होकर बनना), कर्त्ता, कर्तव्य आदि; तथा

(5) अन्य व्यक्तियों से व्यक्ति के सम्बन्धों का रीति–प्रकार – पारम्परिक, सापार्श्विक (कोल्लेटरल) अथवा वैयक्तिक (इडिविड्युअल)

संस्कृतियों के भीतर व उनके आर–पार व्याप्त विभेदों को उक्त क्रमानुगत आधार पर ग्रहण किया गया और 'काल–उन्मुखीकरण' (टाइम ओरिएन्टेशन्स) के संदर्भ में उनका संसाधन–विश्लेषण प्रकट किया गया ।

इस व्यापक आधार पर मूल्यों का परिचालन समझा–समझाया जा सकता है । इस संदर्भ में एक तथ्य का उल्लेख अति आवश्यक है । मूल्य का अध्ययन सदैव विशिष्ट संस्कृति सापेक्ष होता है । उसी संस्कृति के पैमाने से मूल्यों का लेखा–जोखा हो सकता है। भारतीय सामाजिक मूल्यों को अमेरिकी, इतालवी अथवा जापानी सांस्कृतिक श्रेणियों से नहीं जाना जा सकता । यही बात अन्य सभी समाजों व संस्कृतियों पर भी समान रूप से लागू होती है । यदि इसकी अनदेखी हो तो 'आधुनिकीकरण' 'पश्चिमीकरण' बन जाता है या पश्चिमी संस्कृति तो 'पार्टिसिपेन्ट' (सहभागी) दिखाई देती है और अन्य सभी संस्कृतियां 'सब्जेक्ट' (अधीन) नज़र आती हैं ।

5. राजनीति एवं मूल्य – प्रक्रियात्मक संदर्भ

राजनीति और मूल्य प्रारम्भ से ही अपने युगल रूप में राजनीति विज्ञान को समृद्ध व सम्पन्न बनाते आए हैं । मूल्य की अन्तर्दृष्टि, पहचान, प्रयोग एवं विश्लेषण राजनीतिक प्रसंगों को उनका वैशेषिक सार प्रदान करते रहे हैं । मूल्यों से प्रकट मनन, चिन्तन व दर्शन की अविरल धारा राजनीतिक शक्ति व सामर्थ्य को साध्य बनने से रोकती आई है । उनके समवेत प्रभाव राजनीति को 'अच्छाई की राजनीति' (गुडनेस पॉलिटिक्स) बनाने का उपक्रम करते हैं । मूल्यों से राजनीति को उसके नियामक संस्कार प्राप्त होते हैं और संस्कारयुक्त राजनीति सामाजिक प्रक्रिया को परिचालित करती है, उसे परिष्कार प्रदान करती है । मूल्यों से जुड़कर ही राजनीति को दिशाबोध व अर्थवत्ता मिलते हैं, उसकी स्थाई पहचान बनती है । अपने इसी क्रम में मूल्य सामाजिकता– सांस्कृतिकता का रथ संचालित करते कृष्ण दिखाई देते हैं और उनके नायकत्त्व में राजनीति गांडीव उठाए अर्जुन । जीवन का 'कर्मक्षेत्र' इसी युग्म से परिचालित होता आया है और आगे भी ऐसा ही होगा ।

राजनीति अपने प्रारंभ से बीसवीं शताब्दी के स्पर्श तक मूलत: मानकीय (नॉर्मेटिव) ही रही है और मानक सदैव मूल्यों से पैदा होते हैं । मूल्य–वरीयत में बदलाव स्पष्ट रूप से मानक भी बदलता है परन्तु कोई न कोई मूल्य किसी भी सामाजिक – सांस्कृतिक परिवेश में सदैव महिमा मण्डित होता है और उसी क्रम में मानक भी ।

प्राचीन यूनानी राजनीतिक चिन्तन बुद्धिप्रधान था और मूल्य उसी परिवेश में सुविचारित थे । प्लेटो की यह धारणा थी कि मूल्य कुछ सुनिश्चित बुद्धिग्राह्य अर्थ हैं न कि इन्द्रियग्राह्य पदार्थ तथा मूल्य और सत् में एक मौलिक अभेद व्याप्त है । मूल्य निरपेक्ष, नित्य, स्वरूपसत् विषय है । वे मानस–धर्म सापेक्ष नहीं है । सत् ज्ञान के सद्गुण से प्रकट होते है । और फलत: समाज मे दिके (धर्म) प्रतिष्ठित होता है । अरस्तु भी मनुष्य के श्रेयस का संधान करते हुए यह मत प्रतिपादित करता है कि उत्कृष्ट मानसिक क्रिया में ही मनुष्य का श्रेयस विद्यमान है । ये क्रियाएं सहज और स्वत: पर्याप्त होनी चाहिए । इस श्रेयस के संसाधन से ही टीलौस (परम लक्ष्य) प्रकट होता है और मनुष्य को उसका अभीष्ट अस्तित्त्व – सार उपलब्ध होता है ।

इस बुद्धि व ज्ञान प्रधान मूल्य–मीमांसा से विचलन एपिक्यूरस तथा स्टॉइक सम्प्रदाय के वैचारिक परिप्रेक्ष्यों में प्रकट होता है । एपिक्यूरस सुख को मनुष्य का लक्ष्य और सुखानुभूति को मनुष्य कर्म नापने का पैमाना बताता है । उसके अनुसार सुख 'जीने की कला' से प्रकट होते हैं और जीने की कला मतिमत्ता तथा दर्शन के परिशीलन से आती है । डेमोक्रेटिस के परमाणुवाद पर आधारित एपिक्यूरस की यह मूल्य–व्यवस्था भौतिकवाद का स्पष्ट आभास कराती है जिसमें दर्शन स्वयं परमार्थ नहीं बल्कि सुख–उपलब्धि का एक प्रभावी साधन बताया गया है । स्टॉइक संप्रदाय सुख के स्थान पर साधुता को जीवन की चरम सार्थकता स्वीकार करता है । उसका आग्रह है कि प्राकृतिक नियमों से सुसंगत सादा, शान्त और संयत जीवन ही मनुष्य का श्रेयस है । बौद्धिक ज्ञान को आवश्यक रूप से मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों के वशीकरण में सहायक होना चाहिए केवल तभी मनुष्य नैतिक जीवन में कृतार्थ हो सकता है । स्टॉइक मत में बुद्धिवाद व श्रद्धा का संगम चरितार्थ होता है ।

श्रद्धा का उत्कर्ष ईसाई धर्म में परिलक्षित होता है । बौद्धिक ज्ञान की परम्परा और उससे प्रकट मूल्यों के स्थान पर ईसाई धर्म ने अमर जीवन की संभावनाओं का लक्ष्य अंगीकार किया । उसने ईश्वर प्रोक्त संदेश में श्रद्धा के आधार पर लौकिक आसक्ति के त्याग, प्रगाढ़ भगवत् भक्ति, सब की समानता तथा विश्व प्रेम को व्यक्ति और समाज दोनो का प्रधान–मूल्य प्रतिपादित किया । ईसाइयत के पराभव तथा राज्य–सत्ता के निर्णायक उदय के साथ यूरोप में 'रेनेसांस' (पुनर्जागरण) का युग प्रारंभ हुआ जिसके परिवेश में एक नई इहलौकिकता तथा बुद्धिवाद का प्रसार हुआ । इस सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरण में बुद्धि अभिनव प्रत्यक्षवाद तथा कल्पनाश्रित तर्क के अधीन प्रकट हुई, 'वैज्ञानिक मानववाद' का उदय हुआ, धर्म और दर्शन का स्थान विज्ञान ने ले लिया तथा ईश्वर की जगह व्यक्ति व मानव–समाज की प्राण–प्रतिष्ठा हुई।

इस क्रम में राजनीतिक चिन्तन एवं दर्शन के भी बहुल रूप – विन्यास उदित हुए जो विभेदी मूल्य–कसौटियों पर आधारित थे परन्तु थे वे मूल्योन्मुखी ही ।

आधुनिक काल में बुद्धितत्त्व की अस्वीकृति और प्रत्यक्षमूलक अनुमान की प्रति–स्थापना ने मूल्यों के प्रति– स्थापना एवं संसाधन में मनुष्य के परिस्थितिजन्य विशिष्ट मानस व तत्युत्पन्न संस्कारों को प्रधानता दी । इसी क्रम में मूल्य–बोध मनोवैज्ञानिक मान्यताओं एवं पद्धतियों के संदर्भ में उद्घाटित किए गए । हॉब्स, स्पिनोज़ा, बटलर, ह्यूम, बेन्थम, मिल (सीनियर व जूनियर) और सिजविक न मूल्य–बोध व मूल्य–व्यवहार को कुछ सुनिश्चित मनोवैज्ञानिक हेतुओं से अभिनिर्मित सिद्ध किया । हॉब्स और स्पिनोजा जहां राग–द्वेष तथा शक्तिसंग्रह की इच्छा को मानव–व्यवहार का नियामक मानकर स्वार्थपरायणता को मूल्य रूप देने को प्रवृत्त हुए, वहीं बटलर, ह्यूम तथा सिजविक ने स्वार्थ और परार्थ दोनों को मूल्य– क्षेत्र में संकल्पित किया और नैतिक जीवन को इन दोनों स्थितियों के द्वंद्वात्मक विलास के रूप में चरितार्थ किया । बेन्थम ने 'अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख' को मूल्य माना तो रूसो और कान्ट ने मानव हित की अवधारणा को अपनी मूल्य–मीमांसा में केन्द्रीयता प्रदान की । रूसो मानव हित विषयक धारणाओं से प्रकट विवेक को स्वतंत्र एवं न्यायशील समाज के संगठन का आधार मानने को प्रवृत्त हुआ । कान्ट ने मानव विवेक को नैतिक आदेश के समकक्ष माना। हेगेल के दर्शन में 'आत्म–बोध' को परम तत्त्व मानकर आत्मज्ञान को परम पुरुषार्थ व इतिहास साध्य रूप में स्वीकार किया गया । हेगेल के अनुसार सामाजिक संस्थाएं और सांस्कृतिक अभिकल्प आत्म स्वातंत्र्य और आत्मज्ञान की ही मूर्त उपलब्धियां हैं । इसी मूल्य–यात्रा के उत्तरोत्तर विकास–क्रम में मार्क्स ने मूल्यों की वर्गेतिहासिक व्याख्या की जबकि स्पेन्सर ने जीवैतिहासिक (मूल्य मीमांसा के इस ऐतिहासिक सर्वेक्षण के लिए गोविन्द चन्द्र पांडे की मूल्य मीमांसा का प्रथम अध्याय विशेष द्रष्टव्य) ।

पश्चिमी वैचारिक जगत में जहां मूल्यों का पदसोपानिक क्रम बारम्बार पुनर्व्यवस्थित होता रहा, वहीं एशियाई संस्कृतियों व सभ्यताओं में व्याप्त मूल्य–कसौटियां ऐतिहासिक क्रम में अपेक्षाकृत सुस्थिर रही । भारत में, उदाहरणार्थ, तात्त्विक संदर्भ का प्राधान्य रहा और तत्त्व मीमांसा से उद्भूत अस्तितत्व के यथार्थ ने जीवन के 'प्रथम–सिद्धान्तों' का सृजन किया जो कि

चिरन्तन व सतत प्रासंगिक थे । उनकी अनुकृतियों के रूप में 'द्वितीय सिद्धान्तों' को अभिकल्पितव संरचित किया गया जो कि युगयुगीन सामाजिक संगठन व सामाजिक पुनर्रचना का आधार बने । ये 'द्वितीय सिद्धान्त' परिवर्तनीय थे और इन्हें 'प्रथम सिद्धान्तों' से अर्थवत्ता प्राप्त होती थी । भारतीय मूल्य–व्यवस्था में मूल्यों की अन्यायोन्याश्रितता (एक दूसरे पर अवलम्बित व आश्रित होने का गुण) इतली प्रबल थी कि पारम्परिक रूप से आदर्श व यथार्थ, अध्यात्म व भौतिकता तथा विज्ञान, व दर्शन में सातत्य विद्यमान था और जीवन का पूर्णत्व इसी सातत्य पर टिका हुआ था । यही कारण है कि मूल्यों का द्विभासी विरोध (बाइनरी अपोज़िशन) भारतीय मूल्य मीमांसा को उस क्रम में प्रभावित नहीं कर पाता जैसा कि पश्चिमी वैचारिक जगत में परिलक्षित होता है ।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में समस्त विज्ञानों में परस्पर एकीकरण ने मूल्यों के अपूर्व यौगिक (कम्पाउन्ड्स) अभिनिर्मित किए हैं । अब विकास के साथ व्यवस्था व स्थिरता निर्णायक रूप से जुड़ गए हैं । चाहे लोकतंत्र हो अथवा –समाजवाद विकास का प्रतिमान दोनों के लिए ही समान ग्राह्य है । विकासधारा से असम्पृक्त कोई भी प्रणाली अब टिक नहीं सकती । वैश्वीकरण के तर्क व प्रक्रिया ने तो इस जुड़ाव को और अधिक अपरिहार्य बना दिया है । वैयक्तिक स्तर पर, स्वतंत्रता व समानता के मूल्य परस्पर पूरक हो गए हैं । बिना समानता व सामाजिक न्याय के स्थाई स्वतंत्रता की अब कल्पना ही नहीं की जा सकती । उतना ही सही यह क्रम भी है कि स्वतंत्रता को मर्यादित करना और उसे समानता के प्रति संवेदित करना स्वयं स्वतंत्रता को अक्षुण्ण बनाने के लिए अत्यावश्क है ।

नई सहस्त्राब्दी के नव–प्रभात में मूल्यों का महत्त्व तो और अधिक स्वयंसिद्ध हो गया है । प्रौद्योगिकी के सतत बढ़ते उपयोग, उपभोक्तावाद की लगातार बढ़ती लालसाएं, विश्व–बाजार व वहां से सतत तीव्र होती खरीद– फरोख्त की बोलियां तथा व्यक्ति के 'वस्तु' (कर्मोडिटी) बनने की बढ़ती प्रवृत्ति–. इन सभी सामान्य – अपसामान्य (नॉर्मल–एबनॉर्मल) विकास क्रमों को सहज समायोजित करने के लिए मूल्यों की सार्वभौमिक सत्ता का होना लाजिमी है । वैश्विक प्रक्रियाएं वैश्विक मूल्य प्रणालियों के बिना बेलगाम हो जाएंगी । आखिरकार ये प्रक्रियाएं तो मानव व मानव–समाजों के विकास व अभ्युदय का साधन मात्र है । साध्य तो जीवन का अस्तित्त्व सार है, व्यक्ति का आत्म स्वातंत्र्यता व आत्म–बोध है जो कि उसे अपनी वर्तमान नियति व स्थिति से सतत ऊर्ध्व संचरण (ट्रान्सेन्ड, ऊपर चढ़ने) को अभिप्रेरित करता है और जिसके सहारे वह अपने कुछ होने और कुछ बनने के क्रम संयोजित कर पाता है । यही विकासयात्रा मनुष्य के मनुष्यत्त्व की वैशेषिक है ।

6. राजनीति विज्ञान में मूल्यें का महत्त्व

पिछले खण्ड से आप यह भलीभांति समझ सके होंगे कि प्लेटो से लेकर मार्क्स और उसके बाद भी मूल्य विचार–जगत को सतत संयोजित–संचालित करते आए हैं । अत: विचारों की विकास–यात्रा में मूल्यों का महत्त्व असंदिग्ध है । आदर्शवाद, भौतिकवाद, उपयोगितावाद, यथार्थवाद, मार्क्सवाद, समुदायवाद, व्यक्तिवाद, आदि कोई भी वैचारिक अवस्था अपने वैशेषिक

प्रतिनिधि मूल्य के अभाव में अनुप्राणित नहीं हो सकती । उनकी प्राण–प्रतिष्ठा वस्तुत: मूल्यों की सप्राणता ही सिद्ध करती है ।

बीसवीं शताब्दी के दौरान पनपी विचार–यौगिकता ने राजनीतिक चिन्तन के कलेवर को निर्णायक रूप से प्रभावित किया । मूल्यों के परस्पर अवलम्बन की स्थिति विचारकों के वैयक्तिक योगदानों में अभीष्ट आकार व विस्तार पाने में सफल रही है । समसामयिक राजनीतिक सिद्धान्त व राजनीतिक चिन्तन इस स्थिति का परिपक्व समायोजन प्रस्तुत करता है। आप इस अध्ययन क्रम में यह सहज अनुभव करेंगे कि स्वतंत्रता, न्याय, समुदाय, लोकतंत्र व राज्य के वैचारिक स्तम्भ एक दूसरे का अविरल सहारा लिए टिके हुए हैं । कोई भी वैचारिक प्रसंग बिना दूसरे वैचारिक संदर्भों के नितान्त बेमानी व अधूरा है । इसलिए विचारों की आधारशिला के रूप में इस अध्ययन में प्रस्तुत प्राय: प्रत्येक विचारक ने इतिहास व परम्परा की अपने – अपने क्रम में पुनर्व्याख्या को है, मूल्यों की ऊर्जा से उन्हें 'री– चार्ज' क्रिया है ताकि उनकी अभीष्ट विचार –योजना पर्याप्त पक व ढल सके । मूल्यों की, प्राधानिक अर्थवत्ता का इससे सुन्दर व प्रभावी कोई अन्य प्रमाण नहीं हो सकता ।

7. निष्कर्ष

इस इकाई में आपने मूल्य के संकुचित व व्यापक अर्थ को ग्रहण किया । आपने यह जाना कि संकुचित क्रम में मूल्य कुछ ऐसे वांछनीय तत्त्वों को संयोजित करते हैं जिससे मानव का चयनात्मक व्यवहार पनपता है । अपने स्थूल व्यापक अर्थ में मूल्य व्यक्ति को लगातार हर पल मूल्य आकलन से जोड़े रखते हैं । जीवन सिवाय मूल्य–आकलन, मूल्य—निर्धारण, मूल्य व्यवहार व मूल्य पुनर्प्रतिपादन के कुछ और है ही नहीं । संस्कृतियां व सभ्यताएं इसी सतत मूल्य निर्वाह का ही सुपरिणाम हैं ।

मूल्य विचार–जगत के अनुप्रेरक हैं । 'श्रेयस' उन्हीं से बनता है, जीवन के समस्त कल्पना चित्र व उनके बहुरंगी आयाम मूल्यों से ही प्रकट होते हैं । तथ्यत: प्राचीन यूनान से लेकर आधुनिक विश्व तक के समस्त सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक प्रसंग मूल्यों के क्रमों में ही प्रस्तुत होते आए हैं । लेटों से मार्क्स तथा अनुवर्ती विचारकों के वैचारिक प्रसंग इस विचार– विकास के प्रभावी उदाहरण हैं । बीसवीं सदी का समन्वित/एकीकृत परिदृश्य विचारों के यौगिक निर्मित करने में सफल रहा । इस सफलता का पारिणामिक समसामयिक राजनीतिक सिद्धान्त व चिन्तन में उपलब्ध है । दूसरे शब्दों में, मूल्यों की अर्थ प्रधानता भी इसी क्रम में पुनर्प्रस्तुत होती है ।

8. अभ्यास प्रश्न

1. मूल्य क्या हैं? पश्चिमी व भारतीय संदर्भों में उनका स्वरूप – निर्धारण कीजिए ।
2. मूल्य परिचालन की क्या स्थितियां एवं अवस्थाएं हैं? उनकी प्रभावशीलता का आकलन कीजिए ।
3. राजनीति एवं मूल्य प्रक्रिया का विचारों के ऐतिहासिक क्रम में अन्त: सम्बन्ध सिद्ध कीजिए ।

4. 'पश्चिम में वैचारिक विकास–क्रम में मूल्य का संकेन्द्रण परिवर्तनशील रहा है जबकि भारत में वह प्राय: स्थिर' । व्याख्या कीजिए
5. बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में प्रकट प्रवृत्तियां के संदर्भ में क्या की प्रासंगिकता अक्षुप्रण है? तर्क सहित उत्तर दीजिए ।
6. राजनीति विज्ञान में मूल्यों का क्या महत्त्व है? विवेचन कीजिए ।

9. संदर्भ ग्रन्थ सूची

गोविन्द चन्द्र पांडे : मूल्य मीमांसा (1973)

दया कृष्ण : मॉडर्न लॉजिक एण्ड फिलॉसफी (1964)

श्री अरविन्द : दि लाइफ डिवाइन (1939)

केशवदेव आचार्य (अनु) : दिव्य जीवन (1971)

जॉन ड्युई : थियरी ऑफ वेलुएशन (1939)

इंटरनेशनल एन्साइक्लोपीडिया ऑफ दि सोशल साइन्सेज, खण्ड 15, 16, 17 (पुनर्मुद्रित संस्करण, पृ.सं. 283– 91.)

इकाई 3 : स्वतंत्रता की अवधारणा– I: इसाह बर्लिन

इकाई संरचना

1. उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. जीवन परिचय एवं कृतित्व
4. पार्श्व वैचारिक घटक
5. स्वतंत्रता की अवधारणा
6. बर्लिन का वैचारिक योगदान
7. निष्कर्ष
8. अभ्यास – प्रश्न
9. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप यह समझ सकेंगे कि–

1. बर्लिन का राजनीतिक सिद्धांत की दुनिया में क्या महत्तव है?
2. विचारों के इतिहास–लेखन ने किस प्रकार बर्लिन को समसामयिक राजनीतिक प्रसंगों से जोड़ा?
3. बर्लिन की स्वतंत्रता की अवधारणा क्या है? उसके वैचारिक आयाम कितने व्यापक हैं? तथा
4. स्वतंत्रता विषयक बर्लिन की अवधारणा ने किस स्तर तक अनुवर्ती विचारों को अभिप्रेरित किया?

2. प्रस्तावना

सर इसाह बर्लिन युद्धोत्तर–काल के एक विशिष्ट राजनीतिक दार्शनिक रहे हैं । उनके व्यक्तितत्व और कृतित्व का अनुवर्ती राजनीतिक दार्शनिकों तथा सिद्धांत शास्त्रियों पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा । विशेषत: स्वतंत्रता विषयक दार्शनिक एवं राजनीतिक प्रश्नों व समस्याओं के संससाधन से जुड़े लोग बर्लिन के विचारों से अछूते नहीं रहे । इस दृष्टि से बर्लिन समसामयिक/युद्धोत्तरकालीन राजनीतिक दर्शन तथा चिंतन के क्षेत्र में एक 'युग पुरूष' के रूप में प्रकट होते हैं । बर्लिन एक समग्र विचारक थे । उनके लेखन की समग्रता में इतिहास दर्शन, विचारों का इतिहास प्रसंग तथा साहित्यिक समालोचना समाहित थे । इस विरल ठोस वैचारिक भूमि पर उनकी स्वतंत्रता की अवधारणा अंकुरित हुई और फली–फूली ।

इस इकाई में इसाह में बर्लिन के इसी समग्र कृतित्व व उसकी प्रभावोत्पादकता की चर्चा की जाएगी ।

3. जीवन परिचय एवं कृतित्व

विख्यात ब्रिटिश दार्शनिक व विचारों के इतिहासकार सर इसाह बर्लिन का जन्म 9 जून 1909 को रीगा, लाट्विया (अब सोवियत रूस में स्थित) में हुआ था । 11 वर्ष की आयु में

बर्लिन इंग्लेंड आकर बस गए । वहां पर उनकी शिक्षा –दीक्षा लंदन के सेंट पॉल्स स्कूल में हुई और उसके बाद वह कॉपस क्रिस्टी कॉलेज में पढ़े । पढ़ाइ के उपरांत उन्होंने मॉस्को तथा वाशिंगटन डी. सी. में स्थित ब्रिटिश दूतावास में सरकारी नौकरी की । अध्यापन से जुड़कर बर्लिन ने हार्वर्ड विश्वविद्यालय, शिकागो विश्वविद्यालय, प्रिन्सटन विश्वविद्यालय तथा लंदन विश्वविद्यालय जैसे सुविख्यात शिक्षण संस्थानों में सामाजिक व राजनीतिक सिद्धांत के आचार्यत्त्व (प्रोफोसरशिप) का निर्वाह किया । वे 1963 – 64 के दौरान अरिस्टोटेलियन सोसाइटी के अध्यक्ष रहे । बर्लिन को हल, ग्लासगो, ईस्ट एंग्लिया, वॉल्येम के ब्रेन्डीस, कोलम्बिया, केम्ब्रिज, लंदन, जेरूसलम के हेंब्रू, लिवरपूल, हार्वर्ड, ससेक्स आदि अनेक विश्वविद्यालयों से पी.एच.डी. की मानद उपाधि का अलंकरण हुआ ।

उनके प्रमुख प्रकाशनों में निम्नलिखित विशेष उल्लेखनीय है :

1. कार्ल मार्क्स: हिज लाइफ एण्ड एन्वायरमेंट (1948)
2. दि हेजहॉग एण्ड दि फॉक्स: एन एसे ऑन टॉल्सटॉयज व्यू ऑफ हिस्टरी (1953)
3. फोर एसेज ऑन लिबर्टी (1969)
4. दि डाइवोर्स बिटवीन दि साइन्सेज एण्ड दि ह्यूमेनिटीज (1974)
5. वाइको एण्ड हर्डर: ट्र स्टडीज इन दि हिस्टरी ऑफ आइडियाज (1976)
6. रशियन थिंकर्स (हेंनेंरो हॉडो से 1978)
7. कॉन्सेप्ट्स एण्ड केटेगरीज: फिलोसॉफिकल एसेज (1979)
8. अगेन्स्ट दि करेन्ट: एसेज इन दि हिस्टरी ऑफ आइडियाज (1980)
9. पर्सनल इम्प्रेशन (1981)

इन प्रकाशनों के अतिरिक्त स्वयं बर्लिन के कृतित्त्व पर एलेन रायन संपादित कृति इन दि आइडिया ऑफ फ्रीडम : एसेज इन ऑनर ऑफ इसाह बर्लिन (1971) भी उल्लेखनीय है ।

4. पार्श्व वैचारिक घटक

यद्यपि बर्लिन अपने व्यक्तितत्त्व और कृत्तितत्त्व की दृष्टि से एक विशिष्ट राजनीतिक दार्शनिक रहे हैं, परंतु यह भी एक विलक्षण तथ्य है कि उनका राजनीतिक दर्शन विषयक प्रत्यक्ष लेखन अत्याधिक अल्प है । उनकी कृतियां अधिकांशत: विचारों के इतिहास, इतिहास–दर्शन, सामान्य दर्शन, विश्व मामलात तथा साहित्यिक समालोचना से संबंधित हैं । अपने इस क्रम में उनसे राजनीतिक दर्शन के निहितार्थ प्रकट होते हैं ।

विचारों के इतिहास से संबंधित बर्लिन की सर्वाधिक उल्लेखनीय कृतियां हैं कार्लमार्क्स, वाइको एण्ड हर्डर तथा रशियन थिकर्स । विचारों के इतिहास लेखन के क्रम में बर्लिन ने पूर्व–क्रांतिकालीन रूस से चिंतन की जटिलताओं का प्रामाणिक उद्घाटन प्रस्तुत किया है । उसने इन चिंतकों के निरकुंशतावादी तथा युटोपियाई मूल्यों के प्रति तत्काल आकर्षण व विकर्षण दोनों का प्रामाणिक चित्रण किया है । बर्लिन ने इन कृतियों के माध्यम से इतिहास के मानववादी दर्शनों, ऐतिहासिक व्याख्याओं में यांत्रिक पद्धतियों की अनुपयुक्तताओं तथा विज्ञान–विरोध को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है ।

यद्‌यपि बर्लिन अपने ऑक्सफोर्ड प्रवास के दौरान विश्लेषणात्मक तथा भाषायी दर्शन दार्शनिकों के घनिष्ठ संपर्क व सहयोग में था परंतु उसने वेश्लेषणात्मक व भाषायी पद्धतियों की उपयोगिता को कभी भी स्वीकार नहीं केया । उसकी दृष्टि में ये पद्धतियां नितांत सीमित व संकीर्ण थीं । बर्लिन की स्पष्ट मान्यता थी कि दर्शन का आवश्यक सरोकार ऐसे सघन प्रश्नों से होता है जिनका समाधान न तो पर्यवेक्षण अथवा आनुभविक अन्वेषण के उपकरणों तथा पद्धतियों से हो सकता है और न ही औपचारिक तर्क उनके संतोषप्रद उत्तर जुटा सकता है । दर्शन विषयक ऐसे सवालात ज्ञान व विश्वास, इतिहास व राजनीति की विशिष्ट प्रकृति तथा व्यक्ति व जगत के स्वतंत्र लक्षणों से जुड़े होते हैं । उनका संसाधन कुछ विशिष्ट व्याख्यात्मक श्रेणियों से तो संभव है पर आनुभविक वैज्ञानिक पद्धतियों से ऐसा कर पाना नामुमकिन है ।

बर्लिन अपने चिंतन में विश्व विषयक एकात्म व बहुलवादी दृष्टियों के अंतर को उसकी बहुरंगी छटाओं में उकेरते हैं । बर्लिन ने इन अंतर्दृष्टियों की सहायता से नीतिशास्त्र, इतिहास व राजनीति विषयक ज्ञान को अप्रतिम योगदान दिया । एकात्म दृष्टि एक समरूपी व्याख्या का आश्रय लेते हुए समस्त सामाजिक वृत्तियों, प्रघटनाओं तथा प्रक्रियाओं का ऐसा विश्लेषण करती है जिसमें समस्त विचलन, समस्त संघर्ष तथा वैयक्तिक साध्य एक सर्वव्यापी सामाजिक उद्देश्य के अधीन समायोजित कर दिए जाते हैं । एकात्मवादी इस दृष्टि में विवेक एक मानवीय इंद्रिय या क्षमता न होकर स्वयं सद्‌जीवन का एक वस्तुनिष्ठ सिद्धांत बनकर प्रकट होता है । बर्लिन ने यूरोप के विचार–इतिहास से संबंधित अपने लेखन में बारम्बार यह हवाला दिया है कि यूरोप प्राय: शुरू से आखिर तक इस एकात्मवादी दृष्टि के वर्चस्व में रहा है चाहे वह प्लेटो या हीगल का वस्तुपरक आदर्शवाद हो या मार्क्स प्रेरित सामाजिक सिद्धांतों का कठोर नियतिवाद।

इससे बिल्कुल अलग, बहुलवादी दृष्टि जगत को व्यक्ति के हित व साध्य विषयक अमिट विविधताओं के क्रम में अभिव्यक्त करती है– एक ऐसा परिदृश्य जहां व्यक्ति एक साथ अनेक रूपी हितों तथा जीवन उद्देश्यों का संसाधन करते हैं और ये हित व उद्देश्य तत्काल एक दूसरे के परिपूरक भी होते हैं और विरोधी भी। अतएव, बर्लिन की यह मान्यता है कि नीतिशास्त्र तथा राजनीति में ऐसे प्रतियोगी व सहभागी मूल्य एवं मान्यताएं विद्‌यमान हैं जो परस्पर न तो समायोजित की जा सकती है और न उन्हें किसी एक सर्वव्यापी सिद्धांत के तले ढाला जा सकता है। स्वयं बर्लिन के शब्दों में: “हर चीज जो है, सो है, स्वतंत्रता स्वतंत्रता है न कि समानता अथवा सदाशयता, न्याय या संस्कृति या फिर मानव सुख।“ बर्लिन की यह मान्यता है कि मानव जीवन संबंधी ये विविध उद्देश्य, मूल्य अथवा सिद्धांत तर्क की किसी भी सत्ता से परे है । ये वो विविध वैचारिक श्रेणियां हैं जिनसे स्वयं राजनीतिक तर्क अभिनिर्मित तथा परिचालित होता है। बर्लिन के अनुसार इस आवश्यक बहुलवाद की स्वीकृति सभ्यताओं के परिष्कार व विकास तथा स्वयं व्यक्ति के कल्याण के लिए अपरिहार्य है । कठोर एकात्मवाद का कोई भी रूप व प्रकार व्यक्ति के मानवीय सार को खंडित करता है क्योंकि उससे व्यक्ति की स्वायत्तता, स्वतंत्रता तथा विवेकशील का क्षय होता है ।

बहुलवाद के प्रति अपनी वरीयता दिखाने के बावजूद बर्लिन ने यह मत प्रतिपादित किया कि यूरोपीय विचारों के इतिहास में यह बहुलवाद विरल ही प्रवर्तित रहा है । आंग्ल क्लासिकी उदारवादी परंपरा कुछ अर्थों में बहुलवाद अवश्य उद्‌घाटित करती है । परंतु रूसी चिंतन से इस

धारा की पुष्टि नहीं हो पाती । बर्लिन के अनुसार मानवीय स्थितियों का यह एक प्रकट लक्षण है कि वे मूल्यों की किसी स्थिर व सुव्यस्थित प्रणाली का वरण पसंद नहीं करते हैं क्योंकि उससे उन्हें सुरक्षा तथा निश्चिंतता की, व्यवहार्य गारंटी सुलभ होती है वे ऐसी किसी भी जिम्मेदारी से बचना चाहते हैं जो उन्हें अंतिम चयन के अभिप्रेरित करती हो क्योंकि ऐसे किसी भी क्रम में उन्हें जोखिम उठाना पड सकता है । यह बात अलग है कि इस क्रम में स्वयं स्वतंत्रता की संभावनाओं का हनन होता है ।

5. स्वतंत्रता की अवधारणा

बर्लिन की स्वतंत्रता विषयक अवधारणा का सुव्यवस्थित प्रतिपादन सके 'टू कॉन्सेप्ट्स ऑफ लिबर्टी' विषयक व्याख्यान से हु आ जो उसने सन् 958 में दिए और जो बाद में उसकी कृति फोर एसेज ऑन लिबर्टी 1969) में भी सम्मिलित किए गए । बर्लिन ने स्वतंत्रता विषयक अपने वतन में स्वतंत्रता को दो पक्षों में महत्त्वपूर्ण रूप से संयोजित किया है— कारात्मक तथा सकारात्मक स्वतंत्रता । नकारात्मक स्वतंत्रता में उत्पीड़न की अनुपस्थिति परिलक्षित होती है— एक ऐसी स्वतंत्रता जिसमें व्यक्ति के इर्द—गिर्द एक व्यवहार्य परिवेश व्याप्त होता है और जिसमें रहते हु ए वह अपनी इच्छानुसार चयन कर सकता है चाहे उसके ये चुनने के प्रसंग अच्छे हों अथवा बुरे, विवेकयुक्त हों अथवा अविवेकी । दूसरी ओर सकारात्मक स्वतंत्रता आत्म – नियंत्रण तथा आत्म—स्वामित्व की स्थितियों को प्रकट करती है । सकारात्मक स्वतंत्रता का निहितार्थ है कि निर्बन्धित व्यक्ति अपने आप में तब तक स्वतंत्र नहीं है जब तक कि वह अपने जीवन व अस्तित्व विषयक विवेकी लक्ष्यों का संसाधन नहीं करता । बर्लिन ने इन दोनों संभावनाओं को स्वीकार करते हु ए यह मत प्रतिपादित किया कि उत्पीड़न से मुक्त व्यक्ति स्वयं अपनी अविवेकी इच्छाओं तथा 'निम्नतर आत्म' (लोअर सेल्फ) का गुलाम हो सकता है । अत: स्वतंत्रता तथा विवेक सहगामी हैं । उदाहरण के लिए, किसी अविवेकी इच्छा के आमूल निवारण के लिए प्रयुक्त उत्पीड़न स्वतंत्रता का प्रतिकारी नहीं बल्कि उसका परिपूरक हो सकता है क्योंकि उसका लक्ष्य स्वयं व्यक्ति की उच्चतर स्वतंत्रता का अधिकतम संवर्द्धन करना है ।

प्रारंभिक स्तर पर इस संभावना को स्वीकार करने और तदुपरांत उसके सघन परीक्षण एवं आकलन के फलस्वरूप बर्लिन ने अपने चिंतन के उच्चतर चरणों की ओर प्रयाण किया । इस क्रम में उसने स्वतंत्रता—विवेक युग्म (जोड़े) से प्रकट स्वतंत्रता के इस प्रकार को, इस 'निरकुंश—दृष्टि' को एकात्मवाद का एक फलता—फूलता परिणाम बताया । यह इसलिए क्योंकि इसके अंतर्गत समस्त प्रतियोगी मूल्यों को 'तार्किक स्वतंत्रता' के संदर्भ में पुनर्परिभाषित किया जाता है । यह तार्किक स्वतंत्रता अपनी अंतिम परिणति में एक सर्वाधिकारी—सर्वव्यापी (Totalitarian) स्थिति निर्मित करती है । ऐसा इसलिए संभव हो पाता है क्योंकि वास्तविक स्वतंत्रता की एकमात्र संकल्पना कुछ सुनिश्चित सामूहिक साध्य एवं लक्ष्यों पर निर्भर करती है और इस क्रम में वैयक्तिक चयन की स्वतंत्रता दूरतर होती जाती है ।

एकात्मवादी स्वतंत्रता की पर्याय सकारात्मक स्वतंत्रता की आभासित प्रतिगामी नकारात्मक स्वतंत्रता अपने विशिष्ट विकास—क्रम में बहु लवाद से संबंधित दिखाई देती है । यह संबंध इसलिए प्रकट होता है क्योंकि नकारात्मक स्वतंत्रता के अंतर्गत स्वतंत्रता को अनेक

सिद्धांतों में से एक माना जाता है और इन स्थितियों में उसके विकास के साथ अन्य मूल्यों तथा सिद्धांतों का सह– विकास भी संभव दिखाई देता है । जैसे स्वतंत्रता उपयोगिता या समानता के सह–विकास क्रम में उनसे अथवा अन्य मूल्यों से भी जुड़कर किसी के विशिष्ट संदर्भ में अपना आकार सिकोड़ सकती है या बढ़ा भी सकती है ।

बर्लिन नकारात्मक स्वतंत्रता की व्यापक संभावनाओं पर गौर करते हुए यह तर्क विकसित करता है कि क्योंकि उसमें संघर्ष व चयन दोनों विद्यमान हैं और क्योंकि उसमें विभिन्न मूल्यों के साथ समरसता की प्रवृत्ति भी दिखाई देती हे, अतएव नकारात्मक स्वतंत्रता से आबद्ध राजनीतिक चिंतन व सिद्धांत मुक्त समाजों से सतत संबंधित रहा है । इस राजनीतिक चिंतन ने व्यक्ति विषयक स्वायत्तता–प्रसंगों को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया है । इनसे नैतिकता का न्यून आधार भी बनता रहा है । स्वायत्तता नैतिकता व बहुलता के ये समन्वित स्वतंत्रता प्रसंग बर्लिन की दृष्टि में प्रकट व्यक्ति की अवधारणा को पर्याप्त परिपुष्ट करते हैं ।

6. बर्लिन का वैचारिक योगदान

बर्लिन ने अपने चिंतन द्वारा स्वतंत्रता के निहितार्थों तथा अनुद्घाटित आयामों को महत्त्वपूर्ण आकार प्रदान किया है । विशेषरूप से सकारात्मक । स्वतंत्रता विषयक उसकी समालोचना तथा एकात्मवाद, कल्पनावाद व सर्वाधिकारी मंतव्यों के संदर्भों में उसकी आलोचनात्मक दृष्टि ने राजनीतिक चिंतन एवं सिद्धांत को पर्याप्त समृद्ध किया है । पश्चिमी विचारों के ऐतिहासिक अध्ययन के क्रम में बर्लिन ने न केवल उल्लेखनीय विद्वत्ता का परिचय दिया बल्कि उनमें व्याप्त अमूर्त तत्त्वों के पार्श्व में निहित मानवता–विरोधी परिणामों व प्रवृतियों को उद्घाटित भी किया । बर्लिन के इतिहास–दर्शन में जहां एक ओर इतिहास के प्राकृतिक विज्ञान के तार्किक आधारों का सटीक खंडन हुआ है, वहीं दूसरी ओर उसमें विचारों की उस अमरता के आभास को भी तोडा गया है जिसका आग्रह है कि कुछ लौकिक कानून तथा सामाजिक प्रक्रियाएं अपने विशिष्ट स्वरूप में वैयक्तिक लक्ष्यों व साधनाओं से अधिक ऊंचा मूल्य प्राप्त है और इसलिए वे सदैव अनुकरणीय तथा उल्लंघनों से परे हैं ।

चिंतन संबंधी इन विशिष्टताओं के बावजूद जहां सकारात्मक स्वतंत्रता की समालोचना में बर्लिन का चिंतन प्रकटत: उत्कृष्टता प्राप्त हैं, वहीं नकारात्मक स्वतंत्रता की महिमा इस चिंतन में प्राय: अनाकार रही है–उसकी केवल धूमिल–अस्पष्ट छवि ही दूर से दिखाई देती है । फलस्वरूप बहुलवाद तथा स्वतंत्रता का अवधारणात्मक विश्लेषण बर्लिन के चिंतन में पर्याप्त मुखरित व क्रियाशील नहीं हो सका है । नैतिक सिद्धांतों के अंतिम सत्य के प्रति बर्लिन का संशयवाद उसे एक ऐसी मजबूरी का शिकार बना देता है जिसके रहते वह मूल्यों के संघर्ष की स्थिति में उन पर कोई प्रामाणिक अधिनिर्णय नहीं कर पाता और निर्बल दर्शक की भांति मूल्यों का परस्पर संघर्ष व उलझाव ही देखता रहता है । स्वतंत्रता का बेमेल तारतम्य ले वह अवश्य तोड़ता है परन्तु उसके बिखरे सूत्र व पक्षों को परस्पर संगति देने में उसे कोई सफलता हाथ नहीं लग पाती । ऐसा लगता है कि लगातार वहा "जिग–सौ" पहली बूझते–बूझते ही समाप्त हो जाने को विवश है ।

7. निष्कर्ष

इस इकाई में आपने सर इसाह बर्लिन के राजनीतिक चिंतन का अध्ययन किया। आपने यह समझा कि उसके इतिहास–लेखन ने पश्चिमी विचारों के इतिहास की समीक्षा की। इस समीक्षा के नवनीत रूप में स्वतंत्रता की अवधारणा प्रकट हुई। इस अवधारणा का बर्लिन ने और अधिक परिमार्जन व परिष्कार किया। सकारात्मक स्वतंत्रता को एकात्मवाद व सर्वाधिकारवाद से जोड़कर उसकी सीमाओं का आभास तथा नकारात्मक स्वतंत्रता के व्यापक विस्तार में बहुलवाद की अप्रतिम संभावनाओं की ओर इशारा बर्लिन के चिंतन की विशेषताएं हैं। संकेत और अभिप्राय ठोस उपलब्धियों के उत्प्रेरक तो होते हैं परन्तु सफल वाहक हों ही यह अनिवार्य नहीं होता। अतएव, बर्लिन भी सार्थक मूल्यों के बियाबान में लुप्त से हो जाते हैं विचार की पगडंडी किसी राजमार्ग पर मिलने से पहले ही कांटो–झाडियों से मिल जाती हैं। चिंतन की यह सीमा भी है और भावी चिंतन की संभावनाएं भी इसी स्थिति में व्याप्त हैं।

8. अभ्यास प्रश्न

1. 'बर्लिन की स्वतंत्रता अवधारणा' विषय पर एक लेख लिखिए।
2. बर्लिन के चिंतन के पार्श्व–घटकों की विवेचना कीजिए।
3. बर्लिन सकारात्मक व नकारात्मक स्वतंत्रता में कैसे और क्या अंतर प्रकट करता है? चर्चा कीजिए।
4. राजनीतिक चिंतन व सिद्धांत के क्षेत्र में बर्लिन का क्या महत्त्व है? स्पष्ट कीजिए।

9. संदर्भ ग्रन्थ सूची

सर इसाह बर्लिन : कार्लमार्क्स–हिज लाइफ एण्ड एन्वायरमेन्ट (1948)

– – – – – – – – – – – – : फोर एसेज ऑन लिबर्टी (1969)

– – – – – – – – – – – – : दि डाइवोर्स बिटवीन दि साइंसेज एण्ड दि ह्यूमेनिटीज (1974)

– – – – – – – – – – – – : वाइको एण्ड हर्डर–टू स्टडीज इन दि हिस्टरी ऑफ आइडिगंन (1976)

– – – – – – – – – – – – : अगेन्स्ट दि करेन्ट: एसेज इन दि हिस्टरी ऑफ आईडियाज (1980)

रायन (सं.) : इन दि आइडिया ऑफ फ्रीडम (1971)

इकाई 4 – स्वतंत्रता की अवधारणा II : रॉबर्ट नोजिक का इच्छास्वतंत्रवाद

इकाई संरचना

1. उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. 'अत्यल्प राज्य' 'बनाम अराजकतावाद
4. अत्यल्प राज्य का रूप–विधान
5. अधिकारों की मान्यता
6. न्याय के प्रचलित सिद्धान्तों का खण्डन
7. न्याय की अधिकृतता का सिद्धान्त : नोज़िक की न्याय–अवधारणा
8. अत्यल्प राज्य : एक आदर्श राज्य की संरचना ।
9. मूल्यांकन एवं निष्कर्ष
10. अभ्यास प्रश्न
11. संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप यह समझ सकेंगे कि –

1. इच्छा स्वतंत्रवाद क्या है? रॉबट नोज़िक इच्छास्वतंत्रवाद का किस प्रकार प्रतिनिधि विचारक है?

2. अत्यल्प राज्य क्या है? उसमें व्यक्ति के परिपूरक प्रसंग किर प्रकार संसाधित होते हैं?

3. व्यक्ति की स्वतंत्रता को संवर्द्धित करने की दृष्टि से नोज़िक अधिकार तथा न्याय के किस प्रतिमान को महिमामण्डित करता है? तथा

4. उदारवादी राजनीतिक चिन्तन के विकास एवं प्रसार में नोज़िक का क्या महत्त्वपूर्ण योगदान है?

2. प्रस्तावना

इच्छास्वतंत्रवाद (Libertarianism) बीसवीं सदी का वह राजनीतिक सिद्धान्त है जो व्यक्ति के अधिकारों का सशक्त समर्थन करता है तथा बिना किसी नियंत्रण वाली अहस्तक्षेपवादी (Laissez Faire) व्यवस्था को सबसे वांछनीय सामाजिक व्यवस्था मानता है । व्यक्ति के अधिकारों एवं उनके संरक्षण हेतु किस तरह की राजनीतिक संरचना हो? सरकार के क्या न्यायोचित कार्य हों आदि मूल प्रश्नों को यह लेकर चलता है । इन्हीं प्रश्नों के उत्तर के आधार पर इच्छास्वतंत्रवाद को दो भागों में बांट सकते हैं । प्रथम, पूर्णत: अराजकतावादी स्थिति को स्वीकृति प्रदान करता है तथा हर प्रकार की राजनीतिक संरचना को अन्यायोचित एवं अनैतिक करार देता है । द्वितीय धारा को हम अल्प अराजकतावाद (Minarchists) कह सकते

हैं । इसके अनुसरणकर्ताओं का मानना है कि सरकार को हम पुलिस संरक्षण, समझौतों को लागू करवाने, राष्ट्रीयता सुरक्षा जैसे कार्य दे सकते हैं किन्तु ये टैक्स लेने जैसे अधिकार राज्य को प्रदान करने को तैयार नहीं है । जबकि दूसरी तरफ अराजकतावादी राज्य के इस चौकीदारी (Nightwatchman) वाले स्वरूप को भी मानने को तैयार नहीं है । उनका मानना है कि अल्प–अराजकतावादी जो कार्य राज्य को देते हैं, वे निजी संरक्षणकारी इकाइयों से करवाया जा सकता है । सबसे पहले इच्छास्वतंत्रवाद द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त प्रसिद्ध अमेरिकी अर्थशास्त्री मूरे एन. बोथबोर्ड के लेखन में उभर कर सामने आया । बोथबोर्ड ने मानव अधिकारों के निरपेक्ष मत का समर्थन अहस्तक्षेपवादी अर्थव्यवस्था को जोड़ते हुए किया और इसी के अनुरूप उन्होंने राज्य की मान्यता को स्वीकार किया । शैक्षणिक जगत में, विशेषकर राजनीतिक दर्शन में इच्छास्वतंत्रवाद की मान्यता को लोकप्रिय एवं प्रभाव तरीके से प्रस्तुत करने का सबसे ज्यादा योगदान रोबर्ट नोज़िक का रहा है । चूंकि प्रस्तुत अध्याय का आग्रह इच्छास्वतंत्रवाद का विवेचन करना नहीं वरन् उसके प्रतिनिधि विचारक रोबर्ट नोज़िक की मान्यता का मूल्यांकन करना है । अत: यहां केवल नोज़िक की मान्यता को ही प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

3. 'अत्यल्प राज्य' बनाम अराजकतावाद

नोज़िक ने वितरणात्मक न्याय के प्रचलित सिद्धान्त की समस्याओं से बचने के लिए एक ऐतिहासिक सिद्धान्त की मान्यता को स्वीकृति प्रदान की है । इस हेतु वह लॉक की प्राकृतिक अवस्था की स्थिति को स्वीकार करता है, जहां व्यक्ति के अधिकार अक्षुण्ण बने रह सकते हैं । नोज़िक ने अपने अत्यल्प राज्य (Minimal State) की अवधारणा का विकास अराजकतावादियों की इस मान्यता के विपरीत किया है कि राज्य जब एक भू–भाग पर शक्ति प्रयोग एवं प्रत्येक को संरक्षण प्रदान करने हेतु उस पर प्रभुत्व बनाए रखता है तो व्यक्ति के अधिकारों का उल्लंघन होना स्वाभाविक है । अत: राज्य स्वाभाविक रूप से अनैतिक है । नोज़िक का मानना है कि राज्य की आवश्यकता को हम तभी समझ सकते हैं जबकि हम प्राकृतिक अवस्था की प्रकृति एवं उसकी कमियों को देखें तथा प्राकृतिक अवस्था की स्थिति का मूल्यांकन करके यह निष्कर्ष निकालें कि राज्य की आवश्यकता है या नहीं । जैसा कि स्पष्ट है कि इस अवस्था में राज्य के अस्तितत्व को अराजकता की अवस्था की अपेक्षा जरूरी माना गया क्योंकि राज्य उस स्थिति में सुधार करेगा । साथ ही, राज्य जिस प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न हुआ है, वह कदम नैतिक दृष्टि से अस्वीकृत नहीं है । अत: राज्य के अस्तितत्व को न्यायोचित ठहराया जा सकता है । जैसा कि नोज़िक ने लिखा है कि 'मेरा तर्क है कि राज्य अराजकता, जैसा कि लॉक की प्राकृतिक अवस्था में प्रस्तुत किया गया, से एक ऐसी प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न हुआ, हालांकि इसके लिए किसी ने इरादा या प्रयास नहीं किया, जिसमें किसी के अधिकारों के उल्लंघन की आवश्यकता हो ।' नोज़िक ने उस सभी विचारकों, विशेषकर लिसेन्डर स्पूनर, बैंजामिन टुकर, फ्राँसिस टेन्डी एवं मूरे एन. रोथबार्ड की इस मान्यता को अस्वीकार कर दिया है जो यह मानते हैं कि प्राकृतिक अवस्था की असुविधाओं को दूर करने के लिए अर्थात् व्यक्ति स्वयं के अधिकारों की रक्षा करने, अपने को सुरक्षित करने, सही क्षतिपूर्ति हेतु तथा दंड प्रदान

करने के लिए आपस से मिलकर पारस्परिक संरक्षणकारी संघ बना सकते हैं या कोई निजी संरक्षणकारी संघ हो सकता है । इस तरह के पारस्परिक संरक्षण असुविधाओं को दूर करने के लिए अर्थात् व्यक्ति स्वयं के अधिकारों की रक्षा करने, अपने को सुरक्षित करने, सही क्षतिपूर्ति हेतु तथा दंड प्रदान करने के लिए आपस में मिलकर पारस्परिक संरक्षणकारी संघ बना सकते हैं या कोई निजी संरक्षणकारी संघ हो सकता है । इस तरह के पारस्परिक संरक्षणकारी संघ की स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति को संरक्षण कार्य के लिए बुलाया जा सकता है तथा प्रत्येक व्यक्ति यह कहते हुए कि उसके अधिकारों का उल्लंघन हो रहा है, अपने संघ को रक्षार्थ बुला सकता है। किन्तु नोज़िक का मानना है कि इस स्थिति में कुछ निम्न लिखित असुविधाएं उत्पन्न होंगी:–

प्रथम, यह उत्तरदायित्व किस पर होगा कि वह अपने नागरिकों को संरक्षण कार्य के लिए बुलाए या नहीं ?

द्वितीय, यह कैसे तय किया जाए कि व्यक्ति के अधिकारों का उल्लंघन इसके द्वारा हो रहा है या नहीं । अगर दोनों संघों के मध्य कोई समाधान नहीं निकल रहा है तो क्या किया जाए ?

तृतीय, एक ही संघ के दो विभिन्न नागरिकों के मध्य आपासी अधिकारों के विवादों का कैसे निपटारा किया जाए ?

ऐसी स्थिति में एक भोगोलिक क्षेत्र में एक ऐसी प्रभुत्त्वकारी समान संरक्षण व्यवस्था की जरूरत होगी जिसमें न्यायाधीश सभी परस्पर प्रतिस्पर्धायुक्त दावों का निपटारा तथा व्यक्ति के अधिकारों को स्वीकार करने के लिए बाध्य कर सकें । नोज़िक का मानना है कि यह प्रभुत्व संरक्षणकारी व्यवस्था लगभग अत्यल्प राज्य के समान है । किन्तु निजी प्रभुत्वकारी संरक्षण संघ अत्यल्प राज्य की अवधारणा से दो तरह से भिन्न हैं जो उसको अत्यल्प राज्य का दर्जा प्रदान नहीं करती हैं:

प्रथम, एक भू–भाग में चाहे एक ही प्रभुत्वकारी संरक्षण एजेंसी क्यों न हो, उसे हम राज्य की संज्ञा नहीं दे सकते हैं, क्योंकि यह उस भू–भाग के सभी नागरिकों को सरक्षण प्रदान नहीं कर पाती है । यह कुछ व्यक्तियों को अपने अधिकारों के प्रयोग की केवल अनुमति प्रदान कर सकती है । अत: ऐसा प्रतीत होता है कि यह अपने क्षेत्राधिकार में सभी व्यक्तियों को संरक्षण प्रदान नहीं करती है ।

'द्वितीय, यह राज्य के लिए आवश्यक शक्ति प्रयोग पर एकाधिकार भी । नहीं रखती है और न ही ऐसा कोई दावा कर सकती हैकि कोई व्यक्ति शक्ति प्रयोग कर सकता है या कोई वर्गा/समूह कोई वैकल्पिक सत्ता की स्थापना कर सकता है ।

अत: नोज़िक का मानना रहा है कि चूंकि प्रभुत्वकारी संरक्षण संघ/ ऐजेसी अपने सभी नागरिकों को संरक्षण प्रदान करती हैं तथा उसका शक्ति प्रयोग पर एकाधिकार नहीं है, अत: उसे राज्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती है । जैसा कि नोज़िक ने लिखा है कि 'प्रतीत होता है कि एक क्षेत्र में प्रभुत्वकारी 'संरक्षण एजेन्सी में न केवल शक्ति प्रयोग पर वांछित एकाधिकार का अभाव है वरन् यह उस भू–भाग में सभी को सुरक्षा प्रदान करने में भी असफल रहती है । अत: प्रभुत्वकारी एजेंसी राज्य की श्रेणी में नहीं आ सकती है । ' नोज़िक का मानना है कि राज्य के

अस्तित्त्व के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है एक भौगोलिक क्षेत्र में शक्तिप्रयोग के एकाधिकार का होना । व्यक्ति के अधिकारों के निजी संरक्षण का प्रावधान इस एकाधिकार की स्थिति के सामने कोई महत्त्व नहीं रखता है । दूसरे शब्दों में, नोज़िक के अनुसार राज्य के लिए दो दशाओं का होना आवश्यक है । प्रथम, एक भू–भाग पर राज्य की शक्ति का एकाधिकार हो तथा कुछ व्यक्तियों को अपने अधिकारों को लागू करने की अनुमति न हो । द्वितीय, यह (राज्य) संरक्षण के लिए मूल्य अदा करने वालों को ही नहीं वरन् अपने क्षेत्र के सभी नागरिकों को संरक्षण प्रदान करे । यहां यह स्पष्ट कर देना वांछनीय होगा कि नोजिक के लिए एकमात्र आवश्यक स्थिती नहीं है । राज्य में माफिया, के.के.के. हड़ताली यूनियनें, आदि कई ऐसे संघ या वर्ग होते हैं जो शक्ति प्रयोग के एकाधिकार का दावा करते हैं किन्तु उन्हें राज्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। अत: नोज़िक का मानना है कि राज्य के अस्तित्त्व के लिए आवश्यक दशाओं को तय. करना बहु त ही मुश्किल है ।

इस तरह नोज़िक का मानना है कि व्यक्ति के अधिकारों वाली व्यवस्था बनी रह सके सामाजिक व्यवस्था कार्य करती रहे एवं व्यक्ति के अधिकारों का उल्लंघन न हो, इस हेतु वह राज्य जैसी प्रभुत्त्वकारी संरक्षण एजेन्सी के उद्भव की अनुमति देता है । जैसा कि डेविड गोर्डन ने लिखा है कि 'व्यक्ति प्राकृतिक अवस्था (लॉक की प्राकृतिक अवस्था न कि हॉब्स की) ' में अपने हित में एक प्रभुत्त्वकारी संरक्षण एजेंसी उद्भव होने की स्वीकृति प्रदान करते हैं । जिसके पास एक निर्धारित भू–भाग में शक्ति पर तथ्य संगत एकाधिकार (de facto monopoly) होता है।' राज्य के पास एक भू–भाग में शक्ति की जो एकाधिकार की स्थिति होती है वह संगत एकाधिकार की स्थिति होती है । नोज़िक का मानना है कि यह स्थिति विधिसंगत एकाधिकार (de jure monopoly) की नहीं होती है । जैसा कि नोज़िक ने लिखा है कि 'यह एकाधिकार विधिसंगत नहीं है क्योंकि यह कुछ व्यक्तियों को अधिकार देने एवं अन्यों को समान विशेषाधिकारों से वंचित करने का परिणाम नहीं है । '

अत: यह स्थिति एक राज्य जैसी इकाई की स्थापना करती है । इसको नोज़िक ने अत्यल्प राज्य की संज्ञा दी है । इस तरह की इकाई, अत्यल्प राज्य की रचना, अगर उपयुक्त तरीके से की जाए तो किसी व्यक्ति के अधिकारों के उल्लंघन की आवश्यकता नहीं होगी । अत: नोज़िक का मानना रहा है कि यह अत्यल्प राज्य नैतिक रूप से न्यायोचित है तथा इसमें किसी भी व्यक्ति के अधिकारों का उल्लंघन होता है । इस अत्यल्प राज्य से व्यापक राज्य को नोज़िक ने व्यक्ति के अधिकारों का अतिक्रमण करने वाला राज्य माना है जैसा कि उसने लिखा है कि' अत्यल्प राज्य इतना व्यापक राज्य होता है कि उसको न्यायोचित ठहराया जा सकता है। इससे कोई भी व्यापक राज्य व्यक्तियों के अधिकारों का उल्लंघन करने वाला होता है । '

नोज़िक का मानना है कि इस अत्यल्प राज्य को व्यक्ति अपने अधिकार, अतिक्रमणकारियों को दंड देने एवं दूसरों से सही क्षतिपूर्ति प्राप्त करने हेतु हस्तांतरित कर देते हैं। किन्तु यह राज्य एक चौकीदारी के कार्य से परे नहीं जा सकता है । राज्य के पास शक्ति, धोखाधड़ी, एवं चोरी या समझौते भंग करने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध लोगों को संरक्षण प्रदान

करने के अतिरिक्त कोई न्यायोचित कार्य नहीं होगे । नोज़िक के अनुसार यह अत्यल्प राज्य के दो रूपों से सामने आता है।

4. अत्यल्प राज्य का रूप–विधान

प्रथम, राज्य अन्य व्यक्तियों की सहायता के लिए कुछ व्यक्तियों से टैक्स लेने में अपनी दमनकारी शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकता है । नोज़िक के अनुसार राज्य व्यक्तियों के कष्टों के निवारण हेतु टैक्स नहीं ले सकता है । राज्य अपने नागरिकों से केवल पुलिस, कानून, न्यायालय तथा सुरक्षा एवं चौकीदारी के कार्यों के संचालन के लिए आवश्यक सशस्त्र सेनाओं हेतु ही टैक्स ले सकता है । गरीबी एवं अभावों के निवारण हेतु, चाहे इसकी कितनी ही आवश्यकता क्यों न हो, या जनशिक्षा जैसे कल्याण के कार्य हेतु टैक्स लेने को नैतिकता के आधार पर उचित नहीं ठहरा सकते हैं । टैक्स लेने की इस स्थिति में नोज़िक ने सरकार को आशिक मालिक एवं जिन व्यक्तियों से टैक्स लिया गया, उन्हें बेगार (forced Labour) की संज्ञा दी है ।

द्वितीय, राज्य व्यक्तियों को उनकी गतिविधियों से नहीं रोक सकता है। चाहे व्यक्तियों की गतिविधियों पर यह रोक उनकी स्वयं की अच्छाई एवं संरक्षण के लिए ही: क्यों न हो। अत्यल्प राज्य में व्यक्ति के स्वरूप का विवेचन करते हुए नोज़िक ने लिखा है ' अत्यल्प राज्य हमें उल्लंघनीय व्यक्ति के रूप में नहीं मानता है । व्यक्ति को कोई अन्यों के साधनों, उपकरणों, यंत्रों या स्रोतों के रूप में प्रयोग नहीं कर सकता है । यह हमें व्यक्ति के रूप में अपने अधिकारों एवं गरिमा से युक्त मानता है । यह हमारे अधिकारों के सम्मान के द्वारा हमारे सम्मान के तरीके से व्यवहार करता है । यह हमें इस बात कीं अनुमति प्रदान करता है की हम जैसे चाहें अपने जीवन को तय कर स कते हैं ।...... समान गरिमा अन्य। की प्रदान की जाती है । इस तरह स्पष्ट है कि राज्य, अन्यों की आवश्यकताओं एवं कष्टों, चाहे वे कितने ही बडे क्यों न हों. के निवारण हेतु कुछ नागरिकों की संपत्ति एवं आय पर कोई बोझा नही लाद सकता है और न ही व्यक्तियों की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगा सकता है ।

साथ ही नोजिक का मानना रहा है कि इस तरह के अत्यल्प राज्य में छल कपटपूर्ण जोड़तोड की कोई संभावना नहीं रहती है । अर्थात कोई व्यक्ति अपनी आर्थिंक स्थिति के प्रभाव के कारण राजनीतिक शक्ति पर प्रभावी स्थिति नहीं बना सकता है । नोज़िक का मानना है कि यह गैर अत्यल्प राज्य मे ही, जहां राज्य की व्यापक संरचना होती है. वहीं संभव हो सकता हैं. अत्यल्प राज्य में नहीं । जैसा कि नोज़िक ने लिखा है कि अत्यल्प राज्य ने शक्ति या आर्थिक लाभ प्राप्त करने वालों द्वारा राज्य के छल कपट तथा नियंत्रण के अवसरों को बहुत ही कम कर दिया है क्योंकि इसमें इस तरह के नियंत्रण एव छल कपट की बहुत कम इच्छा होती है ।'

5. अधिकारों की मान्यता

नोजिक व्यक्ति के अधिकारों की लगभग निरपेक्ष मान्यता को लेकर चलता हैं । उनका मानना है कि व्यक्ति के अधिकार ही नैतिकता का एकमात्र आधार हैं । ये अधिकार 'व्यक्तियों की उल्लंघनता को अभिव्यक्त नहीं करते हैं तथा हमारे पृथक अस्तित्व के तथ्य को प्रकट

करते हैं।' नोज़िक के अनुसार व्यक्ति को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अन्य व्यक्तियों के इसी तरह के अधिकारों का उलंघन न करें, कोई उसको न तो मारे और न' ही अपमान करे । व्यक्ति सभी प्रकार के दमन से एवं स्वतंत्रता पर लगे प्रतिबंध से मुक्त होगा । किसी को भी अधिकार नहीं होगा कि व्यक्ति के द्वारा न्यायोचित रूप से प्राप्त संपत्ति को छीन ले एवं उसके प्रयोग को सीमित कर दे । नोजिक का मानना है कि व्यक्ति को प्राप्त इन प्रमुख अधिकारों के साथ ही उसको कुछ द्वितीय श्रेणी के अधिकार भी प्राप्त हैं 1 नोज़िक के इन द्वितीय श्रेणी के अधिकारों में अधिकारों का अतिक्रमण करने वालों को दंड देने एवं सही क्षतिपूर्ति का अधिकार तथा इस तरह के अतिक्रमण के विरुद्ध स्वयं एवं अन्यों की रक्षा करने जैसे अधिकार सम्मिलित हैं । व्यक्ति को चीजों के निर्माण या प्राप्ति से, हस्तान्तरण से या दूसरों से विरासत में मिलने वाली संपत्ति प्राप्त करने का सकारात्मक अधिकार भी प्राप्त होगा । व्यक्ति को इस तरह के हस्तांतरण एवं बाध्यकारी समझौतों को करने का अधिकार है । नोज़िक के अनुसार कोई कार्य नैतिक दृष्टि से तभी गलत होगा जबकि वह अधिकारों का अतिक्रमण करता हो । जब तक अधिकारों का अतिक्रमण नहीं होता है, नोज़िक के अनुसार हर कार्य नैतिक दृष्टि से उचित है ।

यह सही है कि नोजिक ने अपने अधिकारों, विशेषकर संपत्ति के अधिकार की मान्यता को लॉक की मान्यता पर केन्द्रित किया है क्योंकि उसने लॉक को प्राकृतिक 'अधिकारों के रूप में निजी संपत्ति की अवधारणा का प्रमुख समर्थक के रूप में माना है । किन्तु लॉक एवं नोज़िक की संपत्ति के अधिकार की अवधारणा में कई महत्त्वपूर्ण अन्तर हैं । इन दोनों की मान्यता में प्रमुख अन्तर निम्नलिखित है :

प्रथम, लॉक ने पैसे के उद्भव से पूर्ववर्ती एवं उत्तरवर्ती काल में अन्तर किया है । उनका मानना है कि श्रम द्वारा संपत्ति के अधिकार का सिद्धान्त (Theory of appropriate by labour) केवल प्रथम काल में ही प्रचलन में था । अत : इस युग में संपत्ति को प्राकृतिक अधिकार के रूप में न्यायोचित ठहराया जा सकता है । फिर भी लॉक ने संपत्ति के अधिकार को जीवन के अधिकार के अधीनस्थ एवं उसके द्वारा सीमित माना है जबकि नोज़िक पैसे के उद्भव का पूर्ववर्ती एवं उत्तरवर्ती काल में कोई अन्तर नहीं करता है । नोज़िक का मानना है कि ' श्रम द्वारा संपत्ति का अधिकार ' सभी समयों में लागू रहता है । अत: उसका मानना रहा है कि प्राकृतिक अधिकार ही संपत्ति के लिए एकमात्र औचित्य है । नोज़िक ने संपत्ति के अधिकार की प्रमुखता पर जोर दिया है और अन्य सभी अधिकारों को उसने गौण अधिकारों के रूप मैं माना है । अत: नोज़िक संपत्ति के अधिकार को जीवन के अधिकार के सम्मुख भी सीमित नहीं करता है क्योंकि संपत्ति अधिक मौलिक अधिकार के आगे जीवन का अधिकार द्वितीय श्रेणी का अधिकार है ।

द्वितीय, लॉक के अनुसार पैसे के उद्भव के परिणामस्वरूप उसके पूर्ववर्ती काल की दशाओं में बदलाव आता है । अत: लॉक संपत्ति के अधिकार को प्राकृतिक अधिकार के रूप में नहीं वरन् उसकी उपयोगिता के आधार पर उचित ठहराता है । अत: यहां लॉक के अनुसार लोकहित की वृद्धि में संपत्ति को कानूनों एवं परम्पराओं द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है । इससे पूर्णत: भिन्न मत अपनाते हुए नोज़िक ने संपत्ति के न्यायसंगत वितरण के निर्धारण के

उपयोगितावादी आग्रह की महत्ता को पूर्णत: अस्वीकार कर दिया है । नोज़िक ने सरकार द्वारा की गई लोक कल्याण की हर योजना को अस्वीकार किया है । जैसा कि उल्लेख कियो जा चुका है कि लोक शिक्षा हेतु टैक्स लेने को एवं विरासत में प्राप्त संपत्ति को नियंत्रित करने वाले कानूनों को नोज़िक ने प्राकृतिक अधिकारों के अतिक्रमण के उदाहरण माना है ।

तृतीय, लॉक ने प्राकृतिक अधिकारों को निजी आधिपत्य के अधिकार पर नैतिक प्रतिबंधों के रूप में माना है । उनके अनुसार कानून न केवल हमारे स्व–रक्षण के लिए जरूरी हैं वरन् ये मानव जाति के रक्षण एवं बचाव के लिए भी जरूरी है क्योंकि इनके रहते लोग संघर्ष की स्थिति से बचते हैं तथा नागरिक समाज की स्थापना इन कानूनों की पूर्णता में ही संभव बनती है । जबकि दूसरी तरफ नोज़िक ने प्राकृतिक कानूनों की मान्यता को पूर्णत: अस्वीकार किया है। नोज़िक ने प्राकृतिक कानूनों को पितृसत्तावाद के अवशेषों (vestiges of Paternalism) की संज्ञा दी है ।

अत : स्पष्ट है कि संपत्ति के अधिकार के बारे में नोज़िक की लॉक से काफी समानता होते हुए भी दोनों में तात्विक अन्तर है । जैसा कि एस.बी.डुरूरी ने लिखा है, 'ऐसा लगता है कि संपत्ति की प्रकृति, आधार तथा सीमाओं पर लॉक एवं नोज़िक की विभिन्नताएं भिन्न–भिन्न नैतिक तथा राजनैतिक आधार वाक्यों को इंगित करती है ।'

6. न्याय के प्रचलित सिद्धान्तों का खण्डन

नोज़िक ने न्याय के प्रचलित सिद्धान्त अर्थात् न्याय के वितरणात्मक सिद्धान्त, विशेषकर रॉल्स के न्याय के सिद्धान्त की आलोचना की । जैसा कि पिछले अध्यायों में उल्लेख किया जा चुका है रॉल्स अपने वितरणात्मक न्याय के सिद्धान्त के माध्यम से एक समतावादी समाज की स्थापना का लक्ष्य लेकर चलता है । अगर समाज के कमजोरतर वर्गों के लाभ के लिए कार्य किया जा रहा है तो वस्तुओं के आवंटन की असमानता को रॉल्स स्वीकृति प्रदान करता है । वह (रॉल्स) इस हेतु विभिन्न प्रकार के प्रोत्साहन एवं वस्तुओं के पुन: वितरण की मान्यता को भी स्वीकृति प्रदान करता है । जबकि नोज़िक ने रॉल्स की इस वितरणात्मक सामाजिक न्याय की मान्यता को पूर्णत: अस्वीकार कर दिया है । नोज़िक का मानना है कि वितरणात्मक न्याय के सिद्धान्त के द्वारा एक 'व्यापक राज्य' के उद्भव की संभावना हो जाती है जो नैतिक दृष्टि से अमान्य है क्योंकि इस व्यापक राज्य से व्यक्ति के अधिकारों का उल्लंघन होता है । नोज़िक ने कहा कि रॉल्स व्यापक राज्य की मान्यता को स्वीकृति इसलिए प्रदान करता है कि वह वितरणात्मक न्याय की प्राप्ति के लिए आवश्यक है तथा उसके लिए सबसे अच्छा उपकरण है । स्वयं नोज़िक ने न्याय के नाम पर संपत्ति के वितरण हेतु राज्य या इस जैसे किसी भी निकाय को अस्वीकार किया है । साथ ही वह इस प्रचलित मान्यता को भी स्वीकार नहीं करता है कि वस्तुओं का न्यायोचित वितरण सामाजिक निर्णय प्रक्रिया की देन है । नोज़िक ने सामाजिक निर्णय प्रक्रिया को अस्वीकार कर दिया है । उसके अनुसार सभी निर्णय व्यक्तिगत होते हैं ।

हार्ट द्वारा प्रतिपादित एवं रॉल्स द्वारा विकसित निष्पक्षता के सिद्धान्त (Theory of Fairness) को भी नोज़िक ने अस्वीकार कर दिया है । सामाजिक समझौतों के माध्यम द्वारा

कुछ विशिष्ट अधिकारों एवं दायित्वों को स्वीकार करने की स्थिति को हार्ट एवं रॉल्स ने निष्पक्षता के सिद्धान्त की संज्ञा दी है । निष्पक्षता के सिद्धान्त को अस्वीकार करते हुए नोज़िक ने इसको आपत्तिजनक एवं अस्वीकार्य सिद्धान्त माना है क्योंकि निष्पक्षता का सिद्धान्त दायित्वों के प्रावधानों को जन्म देता है तथा दायित्व व्यक्ति की स्वतंत्रता पर सबसे प्रमुख कुठाराघात है। नोज़िक एक उदाहरण देकर अपनी स्थिति स्पष्ट करता है । अगर व्यक्तियों का एक वर्ग सभी पड़ौसियों के मनोरंजन हेतु एक लोक प्रदर्शन व्यवस्था की स्थापना करता है । यह छोटा वर्ग बिना सभी पड़ौसियों से पूछे पूरे वर्ष की एक सूची तैयार करके व्यक्तियों को उनके द्वारा प्रदर्शन करने का दिन तय कर देता है और उस व्यक्ति से कहा जाता है कि वह उस दिन विभिन्न प्रकार से लोगों का मनोरंजन करे । उस दिन क्या व्यक्ति का यह दायित्व है कि वह प्रदर्शन करे ? नोज़िक इसका उत्तर नकारात्मक देता है । उसके अनुसार व्यक्ति को अपना दायित्व पूरा करना चाहिए । चूंकि व्यक्ति अपनी बारी आने तक उस व्यवस्था से लाभ लेता रहा है, अत: उसे दायित्व पूरा करना चाहिए । नोज़िक ने इस तर्क को अस्वीकार करते हुए कहा है कि चाहे व्यक्ति उस व्यवस्था से निष्क्रिय लाभकर्ता (Passive recipient) के रूप में लाभ लेता रहा हो किन्तु अगर वह मूल कार्य योजना मे भागीदार नहीं है तो उसे अपनी बारी पर दायित्व पूरा करना जरूरी 'नहीं है । साथ ही, नोज़िक के अनुसार यह सिद्धान्त आपत्तिजनक भी है क्योंकि यह भी संभव है कि व्यक्ति के द्वारा लिया गया लाभ उसके देय अंश की कीमत से कम भी हो । अत: नोज़िक ने यह निष्कर्ष निकाला कि दायित्वों, जिनके लिए व्यक्तियों की सहमति नहीं ली जाती है का आरोपण एवं उनका लागू किया जाना व्यक्ति की स्वतंत्रताओं को मुख्य चुनौती है । नोज़िक के अनुसार व्यक्ति की स्वतंत्रता तभी अक्षुण्ण बनी रह सकती है जबकि दायित्वों का प्रावधान बहुत ही कम हो तथा स्वैच्छिक समझौतों एवं विनिमय का व्यापक प्रावधान हो ।

यहां यह उल्लेख करना वांछनीय होगा कि नोज़िक ने यह गलत निष्कर्ष निकाला है कि हार्ट एवं रॉल्स के निष्पक्षता के सिद्धान्त में निश्का लाभ प्राप्त व्यक्ति को भी दायित्व निर्वाह करना चाहिए । हार्ट एवं रॉल्स दोनों में से किसी ने भी अपने सिद्धान्त में निष्क्रिय लाभ प्राप्तकर्ता को अर्थात् जो सहकारी कार्य योजना में सहभागी नहीं है, उसे भी दायित्वों को पूरा करने के लिए नहीं कहा है । रॉल्स का निष्पक्षता का सिद्धान्त उन्हीं लाभ–प्राप्त व्यक्तियों पर लागू होता है जो स्वैच्छिक रूप से तैयार हों । स्वैच्छिक रूप से तैयार होने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति स्वयं अपने आप को उस सामाजिक व्यवहार मे, सक्रिय सहभागी माने । किन्तु जहां तक राज्य का संबंध है, उस पर यह बात हमेशा लागू नहीं होती है । अत: प्रश्न उठता है कि राज्य जैसी गैर–स्वैच्छिक संस्थाओं की आज्ञापालन की नैतिक आवश्यकता क्यों है? रॉल्स कहता है कि इसकी एकमात्र आवश्यकता इसलिए है कि यह संस्था न्यायोचित है । रॉल्स ने न्याय को प्राकृतिक कर्तव्यों की संज्ञा दी है किन्तु साथ ही रॉल्स ने स्पष्ट रूप से कहा है कि इससे यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि सरकार से लाभ लेने वाले व्यक्तियों को सरकार के कानूनों को मानना एक दायित्व है । नोज़िक ने यह गलत निष्कर्ष संभवत: इस कारण निकाला कि रॉल्स ने अपनी पुस्तक ' थ्यूरी ऑफ जस्टिस ' के अनुभाग 52 तथा 18 में कुछ विरोधाभासी

स्थिति को उजागर किया है । किन्तु रॉल्स ने अनुभाग 52 में इस सिद्धान्त का विस्तार से विवेचन किया है । यहां वह निष्क्रिय लाभ प्राप्तकर्ता को दायित्व निर्वाह के लिए नहीं कहता है।

7. न्याय की अधिकृतता का सिद्धान्त :

नोज़िक की न्याय–अवधारणा

नोज़िक ने प्रचलित वितरणात्मक न्याय सिद्धान्त की जगह न्याय के अधिकृतता का सिद्धान्त (Theory of entitlement) प्रस्तुत किया है । नोज़िक का मानना है कि न्याय के अधिकृतता का सिद्धान्त एक प्रक्रियात्मक सिद्धान्त है जो कि 'न्यायोचित स्थिति में न्यायोचित कदमों द्वारा जो कुछ भी प्राप्त होता है, वह अपने आप में न्यायोचित है ।' जन संपत्ति (Holding) के बारे में नोज़िक ने तीन सिद्धान्तों का विवेचन है – प्रथम, संपत्ति के मूल अधिग्रहण में न्याय का सिद्धान्त (Principal of justice in original acquisition of holding) : इसमें नोज़िक उन सभी मुहों को सम्मिलित करता है, जो गैर आधिपत्य की चीजों को आधिपत्य में लेने से संबंधित होते हैं । अर्थात् इसमें वह प्रक्रिया या प्रक्रियाएं आती हैं जिनके द्वारा गैर आधिपत्य की चीजें आधिपत्य में आ सकती हैं । अत: नोज़िक ने संपत्ति के मूल अधिग्रहण में न्याय के सिद्धान्त को अवतरित एवं निहित माना है ।

द्वितीय, संपत्ति के स्थानांतरण में न्याय का सिद्धान्त (Principal of justice in original acquisition of holding) इसमें नोज़िक एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के पास संपत्ति के स्थानांतरण को लेता है । अर्थात् वे कौन सी प्रक्रियाएं हैं जिनके द्वारा एक व्यक्ति से संपत्ति दूसरे व्यक्ति के पास स्थानांतरित होती है? नोज़िक इसमें उन साधनों एवं प्रक्रियाओं को लेता है जिनके माध्यम से व्यक्ति की संपत्ति की अधिकृतता को बदला जा सके एवं वह दूसरे व्यक्ति को दी जा सके । इसमें नोज़िक स्वैचिछक विनिमय तथा उपहार के रूप में स्थानांतरण को लेता है । यहां यह स्पष्ट करना वांछनीय होगा कि नोज़िक ने भी अन्य इच्छास्वतत्रवादी विचारकों की भांति विनिमय (समझौतों) को संपत्ति के स्थानांतरण का प्राथमिक साधन माना है । जबकि वह उपहार को द्विस्रोय श्रेणी में रखता है । नोज़िक के विश्लेषण में मतदान द्वारा सहमति, विचार–विमर्श द्वारा सहमति, सेवाओं के द्वारा, टैक्स, धोखा, छीनना, चोरी आदि द्वारा स्थानांतरण को कोई स्थान प्राप्त नहीं है ।

तृतीय, अन्यायोचित संपत्ति के सं शोधन का सिद्धान्त (Principal of rectification of unjust holding) : नोज़िक के अनुसार अधिकृतता के सिद्धान्त के अंतर्गत व्यक्ति किसी भी वस्तु या संपत्ति के लिए अधिकृत है अगर वह अधिग्रहण संबंधी न्याय तथा स्थानांतरण. संबंधी न्याय के सिद्धान्तों के अनुरूप प्राप्त की गई हो तो । नोज़िक का मानना है कि कई ऐसी परिस्थितियां होती हैं जिनमें संपत्ति की प्राप्ति पहले दो सिद्धान्तों के अनुरूप नहीं हो पाती है । जैसे कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से चीज़ों को चोरी करके प्राप्त कर लेता है, धोखाधड़ी करके छीन सकता है, अधीनस्थ कर सकता है एवं दूसरों को प्रतियोगिता से वंचित कर सकता है । नोज़िक के अनुसार इन तरीकों से ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जिसमें स्वीकृत पद्धति द्वारा संपत्ति का सौदा नहीं हो सकता है । नोज़िक का मानना है कि भूतकाल में अगर अन्यायपूर्ण तरीके से संपत्ति प्राप्त की गई है तो उस अन्याय का संशोधन उसमें सुधार की

आवश्यकता तब पड़ती है जब अधिग्रहण या स्थानांतरण से किसी सिद्धान्त का उल्लंघन होता हो। दूसरे शब्दों में, जब पहले दोनों सिद्धान्तों का उल्लंघन होता है तो तीसरे की जरूरत पड़ती है । इसमें नोज़िक उन दायित्वों एवं क्षतिपूर्तियों का विवेचन करता है जो कि अन्यायपूर्ण तरीके से संपत्ति प्राप्त करने वालों को पीड़ितों के प्रति, जिनसे संपत्ति प्राप्त की गई है, करना चाहिए। इसको नोज़िक ने संपत्ति के अन्यायोचित सं शोधन के सिद्धान्त की संज्ञा दी है । किन्तु रोबर्ट ई .लिटन का मानना है कि नोज़िक के संशोधन विश्लेषण से दो चीजें स्पष्ट नहीं हो पाती हैं. प्रथम, संशोधन के माध्यम से पीड़ित व्यक्ति तथा उसके लोक कल्याण के मध्य कोई संबंध स्थापित हो पाता है या नहीं । द्वितीय, अगर ऐसा होता है तो किस मात्रा में प्रमाण की आवश्यकता होती है ।

इस तरह स्पष्ट है कि नोज़िक 'प्रथम सिद्धान्त द्वारा संपत्ति के उद्भव, द्वितीय द्वारा एक मालिक से दूसरे मालिक को स्थानांतरण तथा तृतीय द्वारा उपचार की दशाएं तय करता है। ' नोज़िक के अनुसार सामाजिक वितरण तभी न्यायसंगत होगा जबकि यह वैधानिक अधिग्रहण तथा स्थानांतरण द्वारा होता हो । संपत्ति का मूल अधिग्रहण तभी न्यायसंगत होगा, जब वह दूसरों के अधिकारों का उल्लंघन न करता हो । उदाहरण के लिए अगर वस्तुओं पर पहले से किसी का दावा या आधिपत्य न हो तथा उनका निजी आधिपत्य का अधिकार किसी अन्यों को बद्तर स्थिति में न धकेलता हो तब ही वह अधिग्रहण न्यायसंगत होगा । दूसरे शब्दों में, अगर अधिग्रहण भविष्य में व्यक्तियों को बद्तर स्थिति में लाता है तो वह मान्य नहीं है । नोज़िक ने बद्तर स्थिति उत्पन्न होने के कारण अधिग्रहण न करने को लॉक के उपबन्ध (Lockean Proviso) की संज्ञा दी है । लॉक के सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए नोज़िक ने कहा है कि मूल संपत्ति को, जब उस पर किसी का दावा न हो, तभी लिया जा सकता है तथा इसके अधिग्रहण के बाद भी अन्यों के लिए वह पर्याप्त मात्रा में बचे । अत: नोज़िक ऐसे किसी भी गैर दावेदार अधिग्रहण के विरुद्ध है जो सीमित है तथा जिसके अधिग्रहण के बाद उसका अन्यों पर बुरा असर पड़ता है । इसी आधार पर माइकल डेविस ने यह निष्कर्ष निकाला है कि नोज़िक ने कोई अधिग्रहण का सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं किया, वरन् उसने लॉक की मान्यता को स्वीकार किया है । उन्हीं के शब्दों में 'नोज़िक अधिग्रहणता का सिद्धान्त प्रदान नहीं करता है, हालांकि वह स्पष्टत: इसकी आवश्यकता महसूस करता है । वह विवेचन के उद्देश्य से लॉक के संपत्ति संबंधी प्रसिद्ध विश्लेषण को स्वीकार करता है ।' साथ ही नोज़िक के अनुसार स्थानांतरण तभी न्यायसंगत होगा, जब वह स्वैच्छिक होगा । अगर वस्तुओं का स्थानांतरण किन्हीं व्यक्तियों को नुकसान नहीं पहुंचाता है तब भी वह न्यायसंगत उस समय तक नहीं होगा जब तक कि वह स्थानांतरण स्वैच्छिक न हो ।

यहां यह स्पष्ट कर देना वांछनीय होगा कि नोज़िक की न्यायसंगत वितरण व्यवस्था की मान्यता में सामाजिकता से प्रेरित न्याय की अवधारणा, राज्य की भूमिका तथा नैतिक दायित्वों का कोई स्थान नहीं है । नोज़िक का आग्रह रहा हे कि वितरणात्मक न्याय के लिए राज्य को अधिकार देना गलत है । अत: नोज़िक का मानना रहा है कि राज्य द्वारा नागरिकों की संपत्ति का पुन: वितरण करना एवं पितृतत्तात्मक विधान बनाना उचित नहीं है । जैसा कि

पीछे उल्लेख किया जा चुका है कि इस मान्यता का यह परिणाम हुआ है कि नोज़िक राज्य को लोक कल्याण, शिक्षा तथा अन्य लोकहित की गतिविधियों के संचालन का अधिकार नहीं देता है। नोज़िक के अनुसार ये गतिविधियां केवल स्वैच्छिक संघों द्वारा ही की जानी चाहिए । प्रगतिशील आयकर लेना अनुचित है । इस दृष्टि से पीटर सिंगर ने उदारवादी व्यवस्था को नोज़िक की इस देन का उल्लेख करते हुए लिखा है कि समानता के लिए संपत्ति के पुन: वितरण का राज्य को अधिकार देने वालों को आगे से इस पर सोचना होगा । उन्हीं के शब्दों में 'बिना किसी तर्क के राजनीतिक दार्शनिक यह माननने लगे थे कि समानता की दशा मे न्याय के लिए संपत्ति के व्यापक पुनावतरण की आवश्यकता है और इस वितरण के लिए राज्य को दमनकारी साधनों, जैसे प्रगतिशील कर लगाने का वैधानिक कार्य प्राप्त है । ये मान्यताएं सही हो सकती हैं, किन्तु Anarchy, Sotate and Utopia के बाद उन्हें इसकी गारन्टी की बजाय अपने सुरक्षात्मक बचाव की आवश्यकता होगी तथा इसके लिए उन्हें तर्क करना होगा । पीटर सिंगर ने नोज़िक के न्याय के अधिकृतता के सिद्धान्त को, विशेषकर इन वर्षो में अधिकांश दार्शनिकों द्वारा विवेचित वितरणात्मक न्याय के सिद्धान्तों से क्रांतिकारी अन्तर की, संज्ञा दी है। यद्यपि नोज़िक ने अपने न्याय के अधिकृतता के सिद्धान्त का अधिकांश भाग रॉल्स की आलोचना के रूप में विकसित किया है, किन्तु ' उसका यह सिद्धान्त उसकी अत्यल्प राज्य की अवधारणा के अनुरूप है । इस तरह स्पष्ट है कि नोज़िक के अनुसार न्याय का प्रचलित सिद्धान्त अत्यल्प राज्य की अपेक्षा अधिक व्यापक राज्य को उचित ठहराता है क्योंकि इसमें यह माना जाता है कि राज्य को वे सभी चीजें करनी चाहिए जो वितरण व्यवस्था को बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं । जबकि दूसरी तरफ अधिकृतता का सिद्धान्त केवल अत्यल्प राज्य को ही उचित ठहराता है क्योंकि वह राज्य को अधिग्रहण एवं स्थानांतरण की प्रक्रियाओं का निरीक्षण करने तक ही सीमित 'करता है । यह सिद्धान्त' राज्य को इस बात के लिए भी प्रतिबंधित करता है कि वह किसी भी दिशा में उन्हें निर्देशित करने का प्रयास न करे ।

8. अत्यल्प राज्य : एक आदर्श राज्य की संरचना

नोज़िक का मानना है कि अत्यल्प राज्य एक आदर्श राज्य है, जो कि हम सभी के लिए सबसे अच्छी व्यवस्था है । नोज़िक के अनुसार नैतिक आधार पर न्यायोचित राज्य की मान्यता एक आदर्श राज्य की कल्पना है क्योंकि एक आदर्श रचना का अंतिम लक्ष्य एक ऐसे समुदाय की रचना करना है जिसमें व्यक्ति अपनी इच्छा से रहे तथा स्वैच्छिक रूप से उसे पसंद करे, अत: इसमें एक ऐसे समुदाय या समाज की रचना होती है जो सभी नागरिकों के लिए सबसे अच्छी व्यवस्था है । नोज़िक का मानना है कि आदर्श राज्य की यह संरचना सभी को स्वीकृत होगी एवं सभी विशिष्ट आदर्शवादी दृष्टियों से किसी अर्थ में यह कम नहीं होगी ।

ऐसा जान पड़ता है कि नोज़िक ने आदर्श राज्य की रचना अपने अत्यल्प राज्य की अपनी अवधारणा की इस संभावित आलोचना से बचने के लिए की है कि उसके अत्यल्प राज्य की अवधारणा में ऐसा कोई तत्व नहीं है जो स्वस्थ रूप सेप्रेरित कर सके । अत: यहां नोज़िक यह दावा करता है कि उसकी अत्यल्प राज्य की अवधारणा वास्तव मे एक प्रेरित करने वाली दृष्टि, स्वतंत्र व्यक्तियों में स्वैच्छिक सहयोग की दृष्टि, दमन का अभाव तथा जब तक दूसरे

व्यक्ति के अधिकारों को सीमित न करते हों, व्यक्तियों को अपने–अपने अधिकारों के निर्वहन का अवसर प्रदान करता हैं । जैसा कि शेल्डन एस.वोलिन ने लिखा है कि 'वह अपने अत्यल्प राज्य का सृजन एक ऐसी संरचना प्रदान करने के लिए करता है जिसमें व्यक्ति जैसा चाहे वैसे स्वतंत्र या अस्वतंत्र वर्गो की स्थापना कर सकते हैं ।'

नोज़िक का मानना है कि अत्यल्प राज्य मे विभिन्न व्यक्ति लघु समुदायों ' की रचना करके अपने अच्छे जीवन की विभिन्नतायुक्त मान्यताओं को आगे बढ़ा सकते हैं क्योंकि अत्यल्प राज्य इसकी अनुमति प्रदान करता है अर्थात् वह आदर्श व्यवस्था हेतु सरचना प्रस्तुत करता है । यद्यपि इन लघु समुदायों में से कोई भी समुदाय किसी एक व्यक्ति विशेष की निजी आदर्शवादी आकांक्षाओं के अनुरूप नहीं होता है किन्तु प्रत्येक व्यक्ति उस समुदाय में रहना पसन्द कर सकता है जो कि उनकी आकांक्षाओं से सबसे ज्यादा नजदीक हो । साथ ही नोजिक का यह भी मानना रहा है कि समुदाय अपने सदस्यों की इच्छानुसार अपना कोई भी स्वरूप तय कर सकता है । नोज़िक इन लघु समुदायों को राज्य से भिन्न दो कार्य करने की अनुमति प्रदान करता है । प्रथम, लघु समुदाय अपने सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वस्तुओं के वितरण का प्रारूप तय कर सकते हैं । द्वितीय. सदस्यों के सहयोग के योगदान का प्रारूप तय कर सकते हैं । स्पष्ट है कि नोज़िक ने दोनों कार्यों के लिए राज्य पर प्रतिबंध लगाया हैं, अर्थात् राज्य को न तो वस्तुओं के वितरण का प्रारूप तय करने का अधिकार दिया है और न वह अपने सदस्यों से किसी सेवा हेतु योगदान ले सकता है ।

जब लघु समुदाय उपर्युक्त दो कार्य करते हैं तो उसके कारण अत्यल्प राज्य की अवधारणा पर कोई नकारात्मक असर नहीं पड़ता है, क्योंकि इन लघु समुदायों की सदस्यता स्वैच्छिक है । यहां यह उल्लेख करना वांछनीय होगा कि नोज़िक का यह मानना रहा है कि अत्यल्प राज्य में व्यक्ति सामुदायिक समुदायों (communist community) मे रहता है । अत: कुछ इच्छारचतत्रवादी व्यक्तियों का गैर सामुदायिक समुदाय नहीं होता है । प्रश्न उठता है कि जब नोज़िक सभी व्यक्तियों को समुदाय में रहने की आवश्यक शर्त लगाता है तो क्या उनका स्वैच्छिक स्थिति का कोई महत्त्व रह जाता है? व्यक्ति के सम्मुख इसके अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रह जाता है कि वह समुदाय में रहे एवं उस समुदाय की जीवन पद्धति के अनुसार अपना जीवन जिये । किन्तु फिर भी नोज़िक दावा करता है कि इस स्थिति में भी व्यक्तियों के अधिकारों का उल्लंघन नहीं होगा क्योंकि ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो उसको समुदाय की जीवन पद्धति अपनाने को बाध्य कर सके । यद्यपि वे अन्यत्र नहीं जा सकते हैं किन्तु वे अपने अधिकारों का निर्वहन बिना किसी व्यवधान से कर सकते हैं । अत: उनकी स्वैच्छिक स्थिति बनी रहती है । जैसा कि नोज़िक ने लिखा है कि ' अक्खड़ व्यक्ति, जो समुदाय को छोड़कर नहीं जा सकता है. उसे समुदाय की जीवन पद्धति के अनुरूप जीवन जीना चाहिए । किन्तु उसको इसके लिए न तो बाध्य किया जा सकता है और न ही उसके अधिकारों का उल्लंघन किया जा सकता है, क्योंकि अक्खड़ व्यक्ति को यह अधिकार नहीं होता है कि अन्य व्यक्ति उसके समुदाय के अनुरूप जीवन न जीने के कार्य को सरल बनाने में सहयोग करें । ' स्पष्ट है कि व्यक्ति के सम्मुख विकल्प सीमित हैं किन्तु उनका चयन स्वैच्छिक है । विकल्पों की इस

सीमितता के कारण ही इमिली आर. मिल ने यह निष्कर्ष निकाला है कि नोज़िक की धारणा का अक्खड़ व्यक्ति बाहरी दमन से तो स्वतंत्र है, किन्तु अपनी पसन्द के अनुरूप जीवन जीने को वह स्वतंत्र नहीं है। गिल के शब्दों में, 'जैसा कि नोज़िक ने परिभाषित किया है, व्यक्ति बाहरी' प्रतिबंधों से तो स्वतंत्र है, किन्तु वे अपनी पसन्द के वातावरण के अन्दर, अनुपलब्ध गतिविधियों हेतु स्वतंत्र नहीं है....... नोज़िक केवल विकल्प की उपलब्धता पर ध्यान केन्द्रित करता है न कि उस विकल्प के क्षेत्र एवं उसकी गुणात्मकता पर । वास्तविकता यह है कि नोज़िक आदर्श राज्य को एक प्रक्रिया के रूप में लेता है न कि इच्छित राज्य के रूप में. यद्यपि आदर्श संरचना के रूप में उसका अत्यल्प राज्य न्यूनतम दमनकारी है किन्तु यह आदर्श बहुत से व्यक्तियों की आकांक्षाओं की पूर्ति की दृष्टि से मुश्किल एवं असंभव लगता है । अत: आदर्श हेतु उसकी संरचना में, जिसको वह लेकर चलता है, बहुत कम व्यापक स्वतंत्रता उपलब्ध है ।'

9. मूल्यांकन एवं निष्कर्ष

नोज़िक की पुस्तक को उदारवादी राजनीतिक चिन्तन में एक प्रमुख क्रान्तिकारी कदम के रूप में माना गया तथा अमेरिका में नोज़िक की मान्यता का काफी स्वागत हुआ तथा इस पुस्तक को निजी उद्यम की समर्थक तथा लोक कल्याणकारी राज्य की प्रभावी आलोचना के रूप में माना गया । इस पुस्तक में नोज़िक ने अत्यल्प या चौकीदार राज्य का सशक्त समर्थन किया है एवं राज्य को शक्ति, चोरी, धोखाधड़ी के विरुद्ध सुरक्षा समझौतों को लागू करवाना जैसे कार्यों तक सीमित कर दिया है । नोज़िक राजनीतिक उदारवाद के एक प्रमुख प्रवक्ता के रूप में उभर कर सामने आया है क्योंकि वह राज्य को न्यूनत्तम कार्य, स्वतंत्र बाजार व्यवस्था एवं व्यक्ति के अउल्लंघनीय अधिकारों की मान्यता को लेकर चलता है । नोज़िक राज्य को केवल स्वतंत्र बाजार व्यवस्था को बनाए रखने तक सीमित कार्यों को करने की अनुमति प्रदान करता है । उसका आग्रह एक तरफ राज्य को वितरण संबंधी कार्य करने से रोकता है तो दूसरी तरफ वह राज्य को टैक्स लेकर सामाजिक उपयोग के एवं सामाजिक कल्याण के कार्यों को भी अस्वीकृति प्रदान करता है । नोज़िक राज्य के क्षेत्राधिकार को चौकीदार कार्य तक ही सीमित रखता है । अत: नोज़िक स्वयं यह दावा करता हैं कि उसकी अत्यल्प राज्य की धारणा राज्य के क्लासिकल उदारवादी सिद्धान्त के बहुत निकट है । साथ ही, नोज़िक अउल्लंघनीय व्यक्ति के अधिकारों की मान्यता को लेकर चलता है । नोज़िक ने अधिक व्यापक राज्य को मात्र इस आधार पर अस्वीकार कर दिया है कि उसमें व्यक्ति के अधिकार अक्षुण्ण नहीं बने रह सकेते हैं। अत: स्पष्ट है कि नोज़िक व्यक्ति की स्वायत्तता की मान्यता लेकर चलता है जो कि उदारवाद का मूल आधर है ।

समसामयिक युग में रोबर्ट नोज़िक उदारवाद का प्रमुख प्रवक्ता होने एवं जॉन रॉल्स के न्याय के सिद्धान्त की उदारवादी दृष्टिकोण से आलोचना करने के कारण पिछले दो दशक से काफी चर्चित राजनीतिक दार्शनिक रहा है । किन्तु नोज़िक को तीव्र आलोचना भी हुई है । नोज़िक के प्रमुख आलोचकों में हम दो विचारकों शेल्डोन एस. वोलिन एवं करेन जॉनसन को लेते हैं । जहां तक शेल्डोन वोलिन का प्रश्न है उनका मानना है कि नोज़िक कीं' पुस्तक का न

केवल सारांश अनुभाग वरन् उनकी पूरी पुस्तक आदर्शवादी है जो कहीं भी संभव नहीं है । साथ ही, नोज़िक की पुस्तक की मूल मान्यताओं में ही विरोधाभास पाया जाता है । यह दो रूपों में प्रकट होता है–। प्रथम, उदाहरण के लिए एक तरफ नोज़िक ने राज्य को शक्ति पर एकाधिकार के रूप में परिभाषित किया है तो दूसरी तरफ वह व्यक्ति को निरपेक्ष अधिकार देता है । यहां यह उल्लेख करना भी वांछनीय होगा कि नोज़िक अपनी पुस्तक का प्रारंभ ही व्यक्ति के अधिकारों के दावे के साथ करता है तथा वह बार– बार यह याद दिलवाता है कि व्यक्ति के पास अधिकार हैं जिनका उल्लंघन नही किया है और न ही वह व्यापक रूप से उनका समर्थन करता है । इस तथ्य को नोज़िक ने स्वयं भी स्वीकार किया है । हालांकि वह यह जरूर कहता है कि वह इस विषय पर भविष्य में लिखेगा । द्वितीय, जब नोज़िक व्यक्ति के अधिकारों का स्पष्ट विवेचन नहीं करता है तो राज्य पर सीमाओं को लागू किए जाने की कल्पना करना निरर्थक है । अगर व्यक्ति के अधिकारों का उल्लंघन होता है तो उसे कैसे बताया जाए, यह स्पष्ट नहीं है । अत: नोज़िक पर आरोप लगाया जाता है कि वह व्यक्ति के अधिकारों, के अतिक्रमण की स्थिति पर पर्याप्त ध्यान नहीं देता है ।

नोज़िक के आलोचकों में दूसरा प्रमुख विचारक करेन जॉनसन है । उन्होंने नोज़िक के दर्शन को राजनीति विरोधी दर्शन की संज्ञा देते हुए नोज़िक पर दो आरोप लगाए हैं, प्रथम, करेन जॉनसन का मानना है कि अत्यल्प राज्य राजनीतिक व्यवस्था नहीं वरन् वाणिज्यिक उपक्रम है। अत: नोज़िक का 'आग्रह राजनीति की अस्वीकृति का रहा है । दूसरे शब्दों में नोज़िक की दृष्टि राजनीति–विरोधी है । उन्हीं के शब्दों में 'नोज़िक का अत्यल्प राज्य राजनीतिक व्यवस्था नहीं वरन् वाणिज्यिक उपक्रम है । यह एक प्रकार की इंश्योरेंस कम्पनी है जो व्यक्तियों को अन्य लोगों द्वारा उनके व्यक्तिगत अधिकारों के अतिक्रमण के विरुद्ध संरक्षण को बेचती है । राजनीति लोक चीजों से जुड़ी होती है, जबकि एक वाणिज्यिक उपक्रम एवं उसके ग्राहकों के संबंधों में लोक चीजों कोई स्थान नहीं रहता है । अत: नोज़िक का अत्यल्प राज्य का समर्थन निजीकरण की प्रस्तावना है और इस तरह संपूर्ण मानव जीवन का वह वस्तुत: गैर राजनीतिकरण करता है । करेन जॉनसन का मानना रहा है कि नोज़िक अपनी मान्यता में जो चार आधार लेकर चलता है, वे चारों ही राजनीतिक परिप्रेक्ष्य के विरुद्ध हैं । नोज़िक की मान्यता का प्रथम एवं सबसे प्रमुख आधार है : व्यक्ति के अधिकारों की अउल्लंघनीयता । नोज़िक व्यक्ति के निरपेक्ष अधिकारों की उस समय तक अनुमति देता है जब तक कि वे अन्य व्यक्तियों के आधिकारों का अतिक्रमण न करें । इस बिन्दु पर करेन जॉनसन का मानना रहा है कि नोज़िक ने राज्य को संघर्षरत एवं उचित दावों के निपटारों का अधिकार प्रदान न करके उसको जन क्षेत्र के स्वरूप से अलग कर दिया है । नोज़िक की मान्यता का दूसरा आधार है समाज की संरचना एवं मूल्यांकन का उचित आधार प्रक्रिया है न कि लक्ष्य । यहां करेन जॉनसन का मानना रहा है कि प्रक्रिया को अच्छे समाज के मूल्यांकन की एकमात्र कसौटी मानने का नोज़िक का आग्रह किसी भी सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति हेतु जनकार्य को अस्वीकार करता है । करेन जॉनसन के अनुसार नोज़िक की मान्यता का तृतीय आधार सामाजिक परमाणुवाद (social Atomism) है अर्थात् सामाजिक वर्ग विभिन्न व्यक्तियों के योग से ज्यादा

नहीं होता है । किन्तु सामाजिक परमाणुवाद का सिद्धान्त जनहित की अवधारणा को अस्वीकार करता है । चौथे आधार—राज्य का एक शक्ति के रूप में मानने का आग्रह – का विवेचन करते हुए जॉनसन ने लिखा है कि अगर राज्य का सार शक्ति है तो स्वाभाविक रूप से सरकारी कार्रवाई का तात्पर्य दमन, व्यक्ति के अधिकारों का अतिक्रमण एवं व्यक्ति के विरुद्ध अतिक्रमण का एकरूप होगा । जबकि माना यह गया है कि राज्य व्यक्तियों का संरक्षण करेगा । अत: करेन जॉनसन ने यह निष्कर्ष निकाला कि नोज़िक के राज्य की अवधारणा में राजनीतिक तत्त्वों का अभाव पाया जाता है । करेन जॉनसन के समान ही पीटर पी. विटोंसकी ने भी यही निष्कर्ष निकाला है । पीटर पी.विटोंसकी ने लिखा है कि 'नोज़िक का अत्यल्प राज्य, राज्य की अपेक्षा स्वतंत्र बाजार ज्यादा है और यह बाजार शक्तियों से अपरिहार्य रूप से जुड़ा हुआ है, उनसे वह इसकी प्रकृति का उल्लंघन किए बिना बच नहीं सकता है । '

द्वितीय, जॉनसन ने नोज़िक के सिद्धान्त की दूसरी कमी को प्रकट करते हुए कहा कि नोज़िक के व्यक्ति के अधिकारों की अवधारणा में असत्यता पाई जाती है । जॉनसन का मानना है कि नोज़िक एक ओर व्यक्ति के अधिकारों का समर्थन करता है तो दूसरी तरफ वह लॉक के उपबन्ध में व्यक्ति के ऊपर नैतिक मर्यादाओं का प्रतिबंध लगाता है । दूसरे शब्दों में, नोज़िक एक तरफ व्यक्तिवाद का समर्थन करता है तो दूसरी तरफ वह सामान्य अच्छाई की धारणा पर जोर देता है जबकि इन दोनों स्थितियों में कोई सामंजस्य नहीं है । निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि समसामयिक युग में व्यक्ति के निरपेक्ष अधिकारों वाले इच्छास्वतंत्रवादी राजनीतिक सिद्धान्त लेकर चलने के कारण नोज़िक शैक्षणिक जगत् में काफी प्रसिद्ध विचारक रहा है किन्तु लोक–कल्याण राज्य की मान्यता को स्वीकार न कर पाने के कारण वह काफी आलोचनाओं एवं विवादों से ग्रसित विचारक भी रहा है ।

10. अभ्यास प्रश्न

1. इच्छास्वतंत्रवाद के प्रमुख लक्षण इंगित कीजिए ।
2. नोज़िक की अत्यल्प राज्य की क्या अवधारणा है? उसको आदर्श राज्य कहा जाना कहां तक प्रासंगिक है?
3. नोज़िक का न्याय की अधिकृतता का सिद्धान्त क्या है? व्याख्या कीजिए ।
4. नोज़िक जॉन रॉल्स के न्याय सिद्धान्त की किन आधारों पर आलोचना करता है? स्पष्ट कीजिए।
5. उदारवादी चिन्तन के विकास एवं प्रसार में जातक के वैचारिक योगदान का मूल्यांकन कीजिए।

11. संदर्भ ग्रंथ सूची

राबर्ट नोज़िक : **अनार्की, स्टे ट एण्ड यूटोपिया (1974) मिलर, कोलमैन**
तथा अन्य द्वारा (सं.) : **दि ब्लैकवेल एनसाइक्लोपीडिया ऑफ पोलिटिकल थॉट (1987)**
एस. बी. डुरूरी : **'लॉक एण्ड नोज़िक ऑन प्रॉपर्टी ' पोलिटिकल स्टडीज (1982)**
रॉबर्ट ई. लिटन : 'ऑन रेक्टिफिकेशन इन नोजिक्स मिनिमल स्टेट,' **पोलिटिकल**

थ्योरी (1977)

लीलाराम गुर्जर : **बीसवीं सदी के राजनीतिक विचारक** (1977)

इकाई – 5 : न्याय की अवधारणा – I
जॉन रॉल्स का न्याय सिद्धान्त

इकाई संरचना

1. उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. रॉल्स : संक्षिप्त जीवन परिचय तथां प्रतिनिधि रचनाएं
4. मूल संकल्पनाएं
5. काण्ट के प्रति आग्रह न्याय के दो सिद्धान्त
6. मूल संरचना की अवधारणा
7. मूल्यांकन तथा निष्कर्ष
8. अभ्यास – प्रश्न
10. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. उद्देश्य

इस इकाई को पढ्ने के उपरान्त आप यह समझ सकेंगे कि

1. रॉल्स का न्याय सिद्धान्त क्या है?
2. रॉल्स के न्याय सिद्धान्त के वैचारिक आधार क्या है?
3. इस न्याय व्यवस्था का पेरिचालन कैसे हो सकता है? तथा
4. राजनीतिक सिद्धान्त की दुनिया में रॉल्स के न्याय सिद्धान्त की क्या उपयोगिता तथा महत्ता व्याप्त है?

2. प्रस्तावना

बीसवीं शताब्दी के आते–आते उदारवाद प्रमुख रूप से विभिन्न आलोचकों का शिकार बन गया । उदारवाद के विरुद्ध इन आलोचकों की मुख्य आपत्ति यह रही कि वह राजनीतिक जीवन हेतु किसी भी प्रकार का कोई नैतिक आधार प्रदान करने की दृष्टि से असफल रहा तथा उसने अपने आपको उपयोगितावादी मान्यता से जोड़े रखा । किन्तु पिछले दो दशकों से विभिन्न राजनैतिक दार्शनिकों, विशेषकर अमेरिकी दार्शनिकों, ने उदारवाद के इन आलोचकों को प्रति उत्तर देना प्रारंभ कर दिया और उन्होंने उदारवाद के इन नैतिक आयामों की खोज करनी शुरू की। इस हेतु इन विचारकों ने अपने चिन्तन के आधार के रूप में काण्ट को चुना । फलत: उन्होंने. 'नैतिक आधारयुक्त उदारवादी मान्यता ' पर जोर देना प्रारंभ कर दिया । इन विचारकों में हम जॉन रोल्स, बर्लिन, रोनाल्ड डवेर्किन फ्रडरिक ए. हायक, रॉबर्ट नोजिक आदि को ले सकते हैं । चूंकि प्रस्तुत अध्याय का आग्रह इस धारा की प्रमुख विशेषताओं तथा सभी विचारकों का समग्र रूप में विवेचन करना नहीं वरन् इस धारा के प्रतिनिधि विचारक, जॉन रॉल्स के चिन्तन का मूल्यांकन करना है, अत: प्रयास यह देखने का रहेगा कि रॉल्स अपने इस उद्देश्य उदारवाद के लिए नैतिक आधार तैयार करने में सफल हो पाया या नहीं? क्या उदारवादी

मान्यता में बढ़ती हुई समानता की धारणा की मांग को वे संतुष्ट कर पाए? आग्रह इस पर रहेगा कि हम देखें कि रॉल्स के 'उदार—समतावादी ' सिद्धान्त के क्या आयाम हैं? क्या रॉल्स के ये आयाम उन्हें क्लासिकल उदारवादियों की मान्यता के घेरे से परे ले जाते हैं?

3. रॉल्स : संक्षिप्त जीवन परिचय तथा प्रतिनिधि रचनाएं

जॉन रॉल्स विख्यात अमेरिकी दार्शनिक तथा राजनीतिक सिद्धान्तशास्त्री हैं । रॉल्स का जन्म मेरीलेण्ड प्रांत के बाल्टीमोर नगर में 21 फरवरी. 1921 को हुआ था । उनकी शिक्षा–दीक्षा अमेरिका के सुविख्यात प्रिन्सटन विश्वद्यालय में हुई। उन्होंने सन् 1950 में डॉक्टरेट की उपाधि अर्जित की । तत्पश्चात् 1950 से 1962 के दौरान वह कॉरनेल विश्वविद्यालय तथा न्यूयार्क इथाको में सहायक आचार्य रहे । 1962 में उनकी प्रोफेसर के पद पर– नियुक्ति हुई 'और तत्पश्चात उनका अमेरिका के हारवर्ड विश्वविद्याल से जौ संबंध स्थापित हुआ वह आज तक प्राय: अटूट सा रहा है ।

रॉल्स की प्रतिनिखि रचनाओं में 1971 में प्रकाशित ए थ्योरी ऑफ जस्टिस प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है । उनके न्याय सिद्धान्त का सुव्यवस्थित प्रतिपादन उनकी इसी कृति में समाहित है । इसके अतिरिक्त उनके द्वारा दिए गए टैनर व्याख्यान भी पर्याप्त चर्चा का विषय बने जो बादम में दि टैनर लैक्चर्स ऑन ह्यूमन वैल्यूज़ के शीर्ष से 1982 में प्रकाशित हुए।

स्वय रॉल्स के न्याय सिद्धान्त पर अनेक शोध व मूल्यपरक ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं । इनमे ब्रायल बैरी, नार्मन डेनियल्स, केनेल्सन तथा आर. शाइनर, रॉबर्ट, पॉल वोल्फ, रेक्स मार्टिन, एमी गरमेन आदि की शोध व मूल्यांकन रचनाएं विशेष उल्लेखनीय है ।

4. मूल संकल्पनाएं

जॉन रॉल्स अपने चिन्तन का प्रारंभ उपयोगितावादी चिन्तन की आलोचना से करते हैं, क्योंकि उनका उद्देश्य 'उपयोगिता का विरोध करने के लिए एक कार्यकारी तथा व्यवस्थात्मक नैतिक अवधारणा प्रदान करना था ।' दूसरे शब्दों में, उपयोगितावाद के विरुद्ध रॉल्स की मुख्य आपत्ति यह रही कि उपयोगितावादी दर्शन में बहुसंख्यक की अच्छाई तथा हित के लिए कुछ व्यक्तियों के हितों के बलिदान को औचित्यपूर्ण ठहराया जाता है । उपयोगितावादियों द्वारा सामाजिक न्याय की अपेक्षा सामाजिक उपयोगिता पर जोर दिया जाता है तथा सामाजिक उपयोगिता को नैतिक प्राथमिकता दी जाती है । दूसरे शब्दों में, रॉल्स का मानना था कि उपयोगितावाद न्याय के सिद्धान्त का उल्लंघन करता है क्योंकि उपयोगितावाद में सम्पूर्ण की खुशी की अधिकता की अपेक्षा अधिकांश व्यक्तियों की खुशी पर ज्यादा जोर दिया जाता है । उपयोगिता की मान्यता के अनुसार एक सुव्यवस्थित तथा न्यायपूर्ण समाज तभी अस्तित्व में आ सकता है जबकि उसकी संस्थाओं को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाए ताकि समाज के सभी सदस्यों की अपेक्षा अधिकतम व्यक्तियों को संतुष्टि प्राप्त हो सके । किन्तु उपयोगिता के सिद्धान्त द्वारा इस पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता कि व्यक्तियों में इस सन्तुष्टि के योग को किस रूप में बांटा जाए । उपयोगितावादी मान्यता के अनुसार वही वितरण व्यवस्था मान्य होगी जिसमें सन्तुष्टियों का बंटवारा इस तरह का हो कि अधिकतम व्यक्तियों की अधिकतम हितपूर्ति

हो सके । इस सम्बन्ध में रॉल्स का मानना है कि बंटवारे का यह आधार न्याय की सामान्य धारणा के विपरीत जाता है क्योंकि सिद्धान्ततः इस बात का कोई कारण नहीं है कि बहुसंख्यक की संतुष्टि की प्राप्ति के बाद बाकी बचे अन्य लोगों का कोई दावा नहीं रह जाता या कुछ व्यक्तियों की स्वतंत्रताओं के उल्लंघन का दावा इस आधार पर नहीं किया जा सकता है कि उससे अधिकांश की अच्छाई होती है । इसी कारण रॉल्स ने उपयोगिता की मान्यता को अतार्किक माना है । रॉल्स का मानना है कि न्याय की सामान्य धारणा का हम आसानी से उल्लंघन नहीं कर सकते क्योंकि ऐसा करना अन्यायपूर्ण तो होगा ही साथ ही सामाजिक दृष्टि से घातक कार्य भी होगा जबकि उपयोगितावादी मानते हैं कि न्याय की सामान्य धारणा को स्वीकार करना त्रुटिपूर्ण होगा । स्पष्ट है कि न्याय की मान्यता में समाज के प्रत्येक सदस्य की समान भूमिका होती है । किसी अन्य के लोक–कल्याण के लिए उसके दावे को भी रह नहीं किया जा सकता तथा बहुसंख्यक की अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्ति में किसी अन्य की स्वतंत्रता का भी हम हनन नहीं कर सकते । रॉल्स के शब्दों में 'उपयोगिता सिद्धान्त इस तथ्य को स्पष्ट करने में असमर्थ रहा है कि एक न्यायपूर्ण समाज में समान नागरिकों की स्वतंत्रताओं की गारन्टी ली जाती है तथा न्याय द्वारा रक्षित अधिकार न तो राजनीतिक सौदेबाजी के विषय होते है और न ही सामाजिक हितों की गणना ।'

रॉल्स का मानना था कि उपयोगितावाद के विरोध में आने वाला बहुलवादी सिद्धान्त भी जिसे वे प्रज्ञावाद की संज्ञा देते हैं, अपना कोई निजी व्यवस्थित विकल्प सुझाने में असमर्थ रहा है। डब्ल्यू॰डी॰ रोज, बेरियन बेरी, निकालेलास रेशर जैसे प्रज्ञावादी सिद्धान्तविद् अपने आप को केवल तदर्थ संशोधनों तक ही सीमित रख पाए तथा उन्होंने उपयोगितावाद को स्वाभाविक नैतिक भावनाओं के साथ निकटता बनाए रखने पर ही जोर दिया । उनका आग्रह इस बात पर रहा कि सामाजिक नीति–निर्माताओं का प्राथमिक कार्य यह है कि वे सामाजिक उपयोगिता में वृद्धि करें, किन्तु कोई भी व्यक्ति इस उद्देश्य को 'गरीबों का दमन करके, निर्दोषों को सजा देकर, इतिहास की गलत व्याख्या द्वारा उचित रूप से आगे नहीं बढ़ा सकता है । ये विचारक उपयोगितावाद के योग सिद्धान्त (Aggregative principal) का तो समर्थन करते हैं किन्तु साथ ही वे इस बात पर जोर देते हैं कि योग–सिद्धान्त के समान 'वैध समतावादी वितरणात्मक सिद्धान्त' को भी लेना चाहिए । दूसरे शब्दों में, ये विचारक उपयोगिता की समानता के सिद्धान्त को महत्त्व देने पर जोर देते हैं । उनका मानना था कि जब कभी उपयोगिता तथा समानता के सिद्धान्त में विरोध उत्पन्न होता है तो तनाव का समाधान करने के लिए किसी उच्च व्यवस्थित कसौटी या विशिष्ट सुधार सिद्धान्त में नहीं उलझना चाहिए, बल्कि हमें इस तनाव का समाधान प्रज्ञा द्वारा साधारण सन्तुलन स्थापित कर लेना चाहिए क्योंकि तनावपूर्ण विचारों के साथ सन्तुलन स्थापित करने में कठोर 'प्राथमिक नियम' नहीं होते हैं । रॉल्स की प्रज्ञावाद के विरुद्ध मुख्य आपत्ति उसकी सौम्यता को लेकर थी । रॉल्स का मानना था कि प्रज्ञावाद ने नैतिकता से जुड़ी कठिन समस्याओं का समाधान करने हेतु कोई तार्किक पद्धति प्रदान करने का प्रयास नहीं किया । अतः समस्या उत्पन्न होती है कि व्यावहारिक रूप में पूर्ण उपयोगिता के साथ सन्तुलन कैसे किया जा सकता है? हालांकि रॉल्स का मानना है कि नि :सन्हेह रूप से योग–वितरणात्मक द्वैधता

(Aggregative Distributive dichotomy) का विचार–आकर्षक है किन्तु यह असंभव सा लगता है । साथ ही रॉल्स का मानना है कि अगर प्रज्ञावादी सिद्धान्त किसी 'प्राथमिक नियम' को मानते हैं को वह अर्ध–सिद्धान्त है । रॉल्स के मतानुसार 'प्राथमिकता के नियम' दो कारणों से जरूरी होते हैं : प्रथम, प्राथमिकता के नियमों के आधार पर व्यक्ति अपने हितों में सन्तुलन स्थापित करने को प्रेरित होते हैं । दूसरे शब्दों में, व्यक्तियों को सन्तुलन स्थापित करने में कोई सीमा या कोई निर्देशन ग्रहण करने के लिए आधार प्रदान करते हैं । द्विवितिय, प्राथमिकता के नियम हमें क्रमबद्धता की व्यवस्था प्रदान करते हैं । किसी भी चीज पर जोर देने के लिए क्रमबद्धता की व्यवस्था की जरूरत पड़ती है जो प्राथमिकता के नियमों द्वारा ही संभव हो सकता है ।

रॉल्स ने अपने सिद्धान्त को समझौतवाद या समझौता सिद्धान्त की संज्ञा दी है तथा वह इसके ऐतिहासिक तत्व लॉक, रूसो तथा कांट में ढूंढता है । क्योंकि उनका मानना है कि उपयोगितावादी सिद्धान्त का सबसे स्वाभाविक विकल्प उसका परम्परागत प्रतिद्वन्द्वि सामाजिक समझौतावादी सिद्धान्त ही है । सामाजिक समझौता सिद्धान्त के संदर्भ में रॉल्स के निम्न विचार–बिन्दु उल्लेखनीय हैं :

प्रथम, रॉल्स का मानना है कि सामाजिक समझौता मुक्त तथा स्वतंत्र व्यक्तियों के मध्य की सहमति होती है । वह सहमति 'समानता की मूल स्थिति' (Original Position) में ली जाती है । मूल स्थिति में समानता का क्या रूप था? इस पर सीधे आने से पूर्व मूल स्थिति की अवधारणा को देख लेना उचित होगा । मूल स्थिति का तात्पर्य उस स्थिति एवं अवस्था से है जिससे स्त्री पुरुष एक सामाजिक समझौता करने के लिए एक साथ मिलते हैं अर्थात् रॉल्स के चिन्तन में मूल स्थिति का वही तात्पर्य है जो हॉब्स, लॉक तथा रूसो के सामाजिक समझौता सिद्धान्त में प्राकृतिक अवस्था का अर्थ था । किन्तु प्राकृतिक अवस्था के व्यक्ति और मूल स्थिति के व्यक्ति की प्रकृति में हम अन्तर पाते हैं । रॉल्स का मानना है कि मूल स्थिति के व्यक्ति जंगली या असभ्य नहीं बल्कि वे विवेकीय हैं तथा समानता के सिद्धान्त पर जीवन संचालित करते हैं । इस स्थिति में न तो कोई व्यक्ति समाज में अपने स्थान, अपनी वर्ग स्थिति तथा सामाजिक प्रतिष्ठा को जानता है और न उसको अपनी क्षमता, बुद्धिमत्ता शक्ति आदि की जानकारी होती है । इस अवस्था में व्यक्तियों का आग्रह निजी हितपूर्ति या स्वार्थसिद्धि की अपेक्षा प्राथमिक सामाजिक वस्तुओं – सम्पत्ति, आय, शक्ति, सत्ता, आत्मसम्मान, तथा स्वतंत्रता–में अपनी हिस्सेदारी पर होता है । रॉल्स का मानना है कि व्यक्ति को निज हितपूर्ति एवं स्वार्थ–सिद्धि से दूर रखने वाला कारण 'अनभिज्ञता का आवरण' (Veil of Ignorance) है । इस अनभिज्ञता के आवरण के फलस्वरूप व्यक्ति न तो परिस्थितियों को अपने पक्ष में मोड़ सकता है और न ही किसी प्रकार की सौदेबाजी कर सकता है । रॉल्स के शब्दों में, 'इस अवस्था की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि कोई व्यक्ति न तो यह जानता है कि समाज में उसकी क्या स्थिति है । न ही उसको प्राकृतिक क्षमताओं और प्रतिभाओं में अपना स्थान मालूम होता है । यह अनभिज्ञता का आवरण प्रत्येक व्यक्ति को उस विशिष्ट सामाजिक वर्ग के अवसरों तथा स्थितियों से लाभान्वित या अलाभान्वित होने से रोकता

है । ' रॉल्स का मानना है कि जब व्यक्ति एक जैसी परिस्थितियों में रहते हैं तथा किसी भी प्रकार की दशाओं को अपने पक्ष में कर पाने में सक्षम नहीं होते तो निश्चित रूप से न्याय के सिद्धान्त निष्पक्ष समझौते के परिणाम होंगे । यह सूचनाओं के अभाव में ही संभव बन पाता है। अगर व्यक्ति को समाज में अपने स्थान, वर्ग–स्थिति या सामाजिक प्रतिष्ठा की जानकारी है तो न्याय का कोई निश्चित सिद्धान्त तय कर पाना संभव नहीं होगा, क्योंकि इन सूचनाओं की उपस्थिति में व्यक्ति का निर्णय पूर्वाग्रहों पर होगा, जहां निष्पक्ष परिणाम की आशा नहीं की जा सकती । साथ ही, सूचनाओं से युक्त व्यक्ति सर्वसम्मति के आधार पर कोई सिद्धान्त तय नहीं कर सकता है । रॉल्स के शब्दों में 'न्याय की विशिष्ट अवधारणा की सर्वसम्मत पसन्दगी को अनभिज्ञता का आवरण ही संभव बनाता है । जानकारी की इन सीमाओं के बिना मूल–स्थिति में सौदेबाजी की समस्या बहुत जटिल बन जाएगी यहां तक कि अगर सैद्धान्तिक रूप से कोई समाधान बचता भी है तो हम इस समय उसको निर्धारित करने में सक्षम नहीं है ।' अत: हम कह सकते हैं कि मूल स्थिति जैसी परिस्थिति में प्रत्येक व्यक्ति का एक दूसरे से पूर्ण समानता का सम्बन्ध होगा तथा उनमें निष्पक्षता की स्थिति होगी ।

द्वितीय, रॉल्स के अनुसार मूल स्थिति की सहमति अर्थात् समझौते का लक्ष्य न्याय के सिद्धान्तों का चयन करना है । दूसरे शब्दों में, जिस तरह हॉब्स, लॉक तथा रूसो के चिन्तन में प्राकृतिक अवस्था में व्यक्ति सिविल सोसाइटी के लिए समझौता करते हैं, उसी तरह रॉल्स की मूल स्थिति के व्यक्ति न्याय के सिद्धान्तों को तय करते हैं । यहां उल्लेख कर देना वांछनीय होगा कि रॉल्स ने समझौते के प्रावधान को काण्ट की भांति परिकल्पनात्मक माना है, अत: कह सकते हैं कि रॉल्स के अनुसार मूल समझौते का लक्ष्य न्याय के सिद्धान्त का विवरण तथा स्पष्टीकरण प्रदान करना था । न्याय के दो सिद्धान्त एक तरफ मूल स्थिति में जो चयन तथा पसन्दगी की समस्या होती है, उसका समाधान करते हैं तो दूसरी तरफ ये उपस्थित विकल्पों में व्यक्ति का हित किस प्रकार सुरक्षित रह सकता है, इसका भी उपयुक्त तरीका प्रदान करते हैं । स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति जो वह चाहता है, प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि दूसरे व्यक्ति की उपस्थिति मात्र उसको इससे रोकती है । अत: प्रत्येक के लिए यह अच्छा होगा कि वे सभी एक दूसरे से मिलकर सभी के लिए अच्छाई की व्यवस्था का निर्धारण करें । रॉल्स का मानना है इस संदर्भ में न्याय के सिद्धान्त विवेकसंगत योजना तथा प्रस्ताव रखते हैं । 'क्योंकि इन सिद्धान्तों के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति दूसरे की मांगों के अनुरूप उत्तर देने में सक्षम हो जाता है ।'

तृतीय, रॉल्स ने मूल स्थिति के व्यक्ति को विवेकीय व्यक्ति माना है । प्रत्येक व्यक्ति सिद्धान्तों के चयन में इस बात का पूर्ण प्रयास करता है कि उसके हितों की प्राप्ति हो । किन्तु साथ ही रॉल्स ने यह भी माना है कि व्यक्ति अपनी अच्छाई की अवधारणा को नहीं जानते हैं अर्थात् व्यक्ति जीवन की कुछ विवेकीय योजना के बारे में तो जानते हैं, किन्तु उनकी इस योजना के ब्यौरे के बारे में, तथा सामान्य लक्ष्यों और हितों के बारे में वे कुछ नहीं जानते हैं । यहां प्रश्न उठता है कि ऐसी स्थिति में न्याय के सिद्धान्तों को कैसे चुन लिया गया? इस संदर्भ में रॉल्स का मानना है कि व्यक्ति कुछ विशिष्ट प्रकार के हितों की ओर कुछ अधिक झुके होते

हैं । उनका आग्रह केवल सम्पत्ति, आय, शक्ति, सत्ता, आत्म–सम्मान तथा स्वतंत्रता जैसी प्राथमिक सामाजिक वस्तुओं में अपनी हिस्सेदारी पर होता है । साथ ही विवेकीय व्यक्ति ईष्या तथा जलन से ग्रसित नहीं होते हैं । ईर्ष्या तथा जलन प्रत्येक व्यक्ति को बदतर स्थिति में ले जाती है जिससे सामूहिक रूप से नुकसान होता है । अत : रॉल्स के अनुसार मूल स्थिति के विवेकीय व्यक्ति की स्थिति ऐसी होती है जिसमें वह अन्य विवेकीय व्यक्तियों के साथ मिलकर संयुक्त रूप से कार्य करता है । समाज के सभी विवेकीय व्यक्ति मिलकर यह तय करते हैं कि उनके लिए क्या सही, क्या गलत है, क्या न्यायपूर्ण है और क्या न्यायपूर्ण नहीं है । अत: कह सकते हैं कि एक व्यक्ति की इच्छाशक्ति सम्पूर्ण समाज के लिए होती हैं क्योंकि उस व्यक्ति की इच्छा सम्पूर्ण समाज की इच्छा होती है ।

5. काण्ट के प्रति आग्रह

जैसा कि कहा जा चुका है, रॉल्स के विश्लेषण का आधार काण्ट का नैतिक दर्शन रहा है । जैसा कि रॉल्स ने लिखा है 'ए थ्यूरि ऑफ जस्टिस में उनका उद्देश्य न्याय की अवधारणा प्रस्तुत करना है जो कि लॉक, रूसो तथा काण्ट में पाए जाने वाले सामाजिक समझौतों के सुपरिचित सिद्धान्त तक ले जाती है ।' काण्ट के दर्शन पर अपनी मान्यताओं को केन्द्रित करके रॉल्स एक तरफ अपनी स्थिति तथा उपयोगितावादी मान्यता में अन्तर कर पाने में सफल होते हैं तो दूसरी तरफ काण्ट से गहन अवधारणात्मक अपनत्व के कारण वह अपनी चिन्तन परिधियों में नैतिक सिद्धान्त को ग्रहण करने का प्रयास करते हैं । रॉल्स मुख्यत: काण्ट के चिन्तन के तीन तत्वों – स्वायत्तता की कल्पना, निरपेक्ष आदेश का विचार (Categorical Imperative) तथा लक्ष्यों के साम्राज्य की अवधारणा पर जोर देता है । स्वायत्तता की अवधारणा के संदर्भ में रॉल्स का मानना है कि काण्ट के नीतिशास्त्र में इसी पर आग्रह रहा है न कि सामान्यता या सर्वव्यापकता पर । काण्ट के मत के अनुसार व्यक्ति स्वायत्तपूर्ण ढंग से तभी कार्य कर सकता है जबकि उसके द्वारा कार्य के सिद्धान्त चुने गए हैं, उनके माध्यम से स्वतंत्र तथा समान विवेकीय प्राणी के रूप में उसकी प्रकृति की अभिव्यक्ति संभव हो । रॉल्स के अनुसार यह ' अनभिज्ञता के परदे ' के कारण संभव बनती है । चूंकि व्यक्ति को सब प्रकार की सूचनाओं से दूर रखा जाता है, अत: स्वाभाविक है कि व्यक्ति स्वायत्ततापूर्वक कार्य करेगा । रॉल्स का मानना है कि अगर व्यक्ति को अपनी स्थिति की जानकारी है तो निश्चित रूप से उसका कार्य पराधीनता द्वारा निर्धारित होगा । साथ ही रॉल्स ने न्याय के सिद्धान्तों को काण्ट के अर्थ में निरपेक्ष आदेश भी माना है । निरपेक्ष आदेश से तात्पर्य व्यवहार के नियमों से है जो ऐसे व्यक्ति पर लागू होते हैं जिनकी प्रकृति स्वतंत्र तथा समान विवेकीय प्राणी की है । यह सिद्धान्त इस बात को नहीं मानता है कि कोई व्यक्ति विशिष्ट लक्ष्य तथा उद्देश्य लेकर चलता है । इसी सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए रॉल्स ने कहा कि न्याय के दो सिद्धान्तों में इस बात को नहीं माना जाता कि समझौता करने वाले व्यक्ति कोई विशिष्ट उद्देश्य लेकर चलते हैं । उनका लक्ष्य केवल कुछ प्राथमिक वस्तुओं तक ही सीमित होतो है । जहां तक पारस्परिक अरुचि की मान्यता का सम्बन्ध है, कह सकते हैं कि इस मान्यता का प्रयोग परिस्थितियों का विवेचन करने तथा व्यक्तियों के विवेक को प्रभावित करने के लिए एक स्पष्ट अवधारणा प्रदान

करने के लिए किया गया । पारस्परिक अरुचि की मान्यता अन्तिम लक्ष्यों की अवस्था–चयन में स्वतंत्रता की स्वीकृति प्रदान करता है । स्वतंत्रता को केवल उन्हीं सिद्धान्तों के द्वारा सीमित किया जा सकता है जो यह मानकर चलते हैं कि इन मान्यताओं पर कोई पूर्व प्रतिबंध नहीं है । रॉल्स का मानना है कि उसने मूल स्थिति में व्यक्तियों की जो सामूहिक अरुचि की मान्यता प्रकट की है वह इस विचार को बनाए रखती है ।

6. न्याय के दो सिद्धान्त

जैसा कि कहा जा चुका है कि मूल स्थिति के विवेकीय व्यक्ति का लक्ष्य न्याय के सिद्धान्तों को चुनना है क्योंकि न्याय के सिद्धान्तों को चुनना व्यक्ति के हित में है न्याय के दो सिद्धान्तों को परिभाषित करते हुए रॉल्स ने लिखा है :

प्रथम, प्रत्येक व्यक्ति को सर्वाधिक मूल स्वतंत्रता प्राप्ति का समान अधिकार हो और यही अधिकार अन्य व्यक्तियों को भी प्राप्त होना चाहिए ।

द्वितीय, सामाजिक तथा आर्थिक असमानताओं को इस रूप में व्यवस्थित करें कि उन दोनों से (अ) न्यूनतम सुविधा प्राप्त व्यक्तियों को सर्वाधिक लाभ मिले और (ब) अवसर की निष्पक्ष समानता के अंतर्गत ही सभी के लिए पद और दर्जे खुले हों ।

न्याय के इन दोनों सिद्धान्तों को स्पष्ट रूप से समझने के लिए यह वांछनीय होगा कि हम इन्हें थोड़े विस्तृत रूप से देखें ।

प्रथम सिद्धान्त. नागरिकों की मूल स्वतंत्रताओं से तात्पर्य राजनीतिक स्वतंत्रता – मत देने का अधिकार, सार्वजनिक पद ग्रहण करने की योग्यता – के साथ भाषण एवं एकत्र होने की स्वतंत्रता, आत्म–चेतना की स्वतंत्रता, व्यक्ति को मनमाने तरीके से गिरफतार न किया जाए, उसे कानून के शासन का संरक्षण प्राप्त हो, आदि स्वतंत्रताओं से है । न्याय के प्रथम सिद्धान्त के बारे में उल्लेखनीय है कि मूल स्वतंत्रताएं समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समान रूप से मिलनी चाहिए । द्वितीय, न्याय के सिद्धान्तों को इस रूप में क्रमबद्ध किया जाए कि प्रथम सिद्धान्त को द्वितीय सिद्धान्त की अपेक्षा प्राथमिकता दी जाए । समान स्वतंत्रताओं की मान्यता के संदर्भ में रॉल्स ने दो बातों पर जोर दिया – (अ) हमें सभी स्वतंत्रताओं को पूर्ण रूप से स्वीकार करना चाहिए । अर्थात् एक स्वतंत्रता की महत्ता सामान्यत: दूसरी स्वतंत्रता से समानता पर ही निर्भर करती है । अत: संविधान निर्माण करते या कानून बनाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए । रॉल्स का आग्रह है कि हमें अधिक स्वतंत्रता देते समय किसी एक विशिष्ट स्वतंत्रता पर जोर देने की अपेक्षा स्वतंत्रताओं की पूर्ण व्यवस्था के रूप में यह आग्रह होना चाहिए । अत: संविधान–निर्मात्री सभाओं के प्रतिनिधियों तथा व्यवस्थापिका के सदस्यों को विभिन्न स्वतंत्रताओं को इस भांति व्यवस्थित करना चाहिए जिससे कि समान स्वतंत्रताओं की सबसे अच्छी पूर्ण व्यवस्था की अभिव्यक्ति संभव हो सके । उन्हें एक स्वतंत्रता का दूसरी स्वतंत्रता के विरुद्ध सन्तुलन स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए । सन्तुलन स्थापित करने के लिए हम स्वतंत्रताओं पर सीमा तथा नियंत्रण भी लगा सकते हैं । रॉल्स का मानना है कि समान स्वतंत्रता का अतिक्रमण नियंत्रण के प्रावधान नहीं वरन् समान स्वतंत्रताओं का उल्लघन दो स्थितियों में होता है. प्रथम, जब व्यक्तियों का एक वर्ग दूसरे वर्ग से अधिक स्वतंत्रताएं

रखता हो, द्वितीय, जितनी विस्तृत स्वतंत्रताएं होनी चाहिए, उससे कम हों, (ब) रॉल्स के अनुसार प्रथम सिद्धान्त (न्याय का प्रथम सिद्धान्त) के अंतर्गत आने वाली मूल स्वतंत्रता को केवल स्वतंत्रता के लिए ही सीमित किया जा सकता है । अर्थात् स्वतंत्रता को केवल तभी सीमित किया जाए जबकि इससे यह निश्चित हो कि समान स्वतंत्रता या दूसरी मूल स्वतंत्रता उचित रूप से सुरक्षित होगी या सबसे अच्छे तरीके से स्वतंत्रताओं की एक व्यवस्था स्थापित होती हो या व्यापक रूप से समान स्वतंत्रता संभव बनती हो । स्वतंत्रता के लिए स्वतंत्रता की सीमा का उदाहरण देते हुए रॉल्स कहता है कि एक बौद्धिक तथा लाभदायक विवेचन एवं वाद–विवाद के कुछ विवेकीय नियमों को स्वीकार किए बिना भाषण की स्वतंत्रता का अपना महत्व खत्म हो जाएगा । यह सही है कि व्यवस्था के नियम हमारी स्वतंत्रता को सीमित बनाते हैं तथा जो हम चाहते हैं वह नहीं बोल सकते । किन्तु ये नियम इस स्वतंत्रता से प्राप्त होने वाले लाभों के लिए आवश्यक है । वाद–विवाद की स्वतंत्रता की महत्ता को बनाए रखने के लिए ये नियम जरूरी हैं । दूसरे शब्दों में, यह व्यवस्था सभी सदस्यों की समान स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए आवश्यक है । नियम–विहीन स्थिति में एक स्वतंत्रता दूसरी स्वतंत्रता से टकराएगी । इससे व्यापक स्वतंत्रताएं मिलने की अपेक्षा उनमें कमी आएगी ।

इस संदर्भ में एक प्रश्न यह पैदा होता है कि रॉल्स ने स्वतंत्रता तथा समानता का कैसे सहअस्तित्व किया, क्योंकि यह स्थिति संदेहास्पद है कि गरीबी, अनभिज्ञता तथा साधनों के अभाव में कोई व्यक्ति समान स्वतंत्रताओं का सह–अस्तित्व मूल संरचना के माध्यम से कर सकता है । इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय होगा कि रॉल्स ने अवधारणात्मक स्तर पर स्वतंत्रता तथा समानता के मूल्यों को अलग–अलग परिभाषित किया है । स्वतंत्रता समान नागरिकों की स्वतंत्रताओं की पूर्ण व्यवस्था द्वारा अभिव्यक्त है जबकि समानता के मूल्य का तात्पर्य व्यक्तियों और वर्गों की उस आनुपातिक क्षमता से है जिससे वे लक्ष्यों को कितना प्राप्त कर पाते हैं । अत: स्वतंत्रता सभी व्यक्तियों के लिए समान होती है तथा समान स्वतंत्रता से कम होने पर उसकी क्षतिपूर्ति का सवाल ही नहीं उठता जबकि तथ्यत: स्वतंत्रता का मूल्य सबके लिए समान नहीं हो सकता । कुछ व्यक्तियों के पास सत्ता तथा सम्पत्ति अधिक है, अत: उनके पास अपने लक्ष्यों की पूर्ति के अधिक साधन भी उपलब्ध हैं । इस कारण स्वतंत्रता की कम–मूल्य प्राप्ति की क्षतिपूर्ति हो सकती है । इसको हम मूल–संरचना के द्वारा पूरा कर सकते हैं । अत: रॉल्स ने यह स्पष्ट करते हुए कहा कि स्वतंत्रता की कम मूल्य–प्राप्ति की क्षतिपूर्ति को असमान स्वतंत्रता के द्वारा नहीं किया जा सकता । रॉल्स के शब्दों में 'स्वतंत्रता की मूल्य–प्राप्ति की कमी क्षतिपूर्ति को असमान स्वतंत्रताओं की व्यवस्था से भ्रमित नहीं करना चाहिए । दो सिद्धान्तों को साथ लेते हुए मूल संरचना को इस तरह से व्यवस्थित किया जाए कि सभी सहभागी समान स्वतंत्रता की पूर्ण योजना के साथ न्यूनतम सुविधा प्राप्त व्यक्तियों को अधिकतम लाभ मिले ।'

अब हम प्राथमिकता के सिद्धान्त पर आते हैं । स्वतंत्रता की प्राथमिकता के सिद्धान्त से रॉल्स का तात्पर्य समान स्वतंत्रता के सिद्धान्त–न्याय का प्रथम सिद्धान्त–को न्याय के दूसरे सिद्धान्त के ऊपर वरीयता दिए जाने से है–अर्थात् न्याय के दो सिद्धान्तों को इस रूप में क्रमबद्ध

तरीके से व्यवस्थित किया जाना चाहिए जिससे स्वतंत्रता के दावे की पहले पूर्णत: संतुष्टि हो जाए । जब तक प्रथम सिद्धान्त की पूर्णत: संतुष्टि हो जाए दूसरे सिद्धान्त के दावे को नहीं लिया जाना चाहिए । अत: हम कह सकते हैं कि प्राथमिकता के सिद्धान्त का उद्देश्य न्याय की विभिन्न मांगों की सही वरीयता एवं क्रम निश्चित करना है । इस क्रम में समान स्वतंत्रता सबसे पहले आती है । समान स्वतंत्रताओं की पूर्ण संतुष्टि के उपरान्त ही हम न्याय के दूसरे सिद्धान्त पर आगे बढ़ सकते हैं । समान स्वतंत्रताओं की पूर्ण संतुष्टि हेतु रॉल्स दो बातों पर जोर देते हैं । प्रथम, समान स्वतंत्रताएं होते हुए भी अगर वे जितनी व्यापक होनी चाहिए उससे कम व्यापक हैं तो प्रतिनिधि नागरिकों को इन्हें व्यापक बनाने हेतु इनमें (स्वतंत्रताओं) संतुलन स्थापित करना चाहिए । द्वितीय, अगर स्वतंत्रताएं असमान हैं तो उनमें ऐसी व्यवस्था हो कि जिन व्यक्तियों को कम स्वतंत्रताएं प्राप्त हैं उन्हें ये उचित रूप से प्राप्त हों । समाज के कम भाग्यशाली व्यक्तियों एवं न्यूनतम सुविधा–प्राप्त व्यक्तियों को इस तरह के दूरवर्ती लाभ मिलें जिससे कालांतर में ऐसी व्यवस्था बन सके जिसमें उनके द्वार। समान स्वतंत्रताओं का पूर्ण उपभोग किया जा सके । रॉल्स का मानना है कि समान स्वतंत्रता को आर्थिक कल्याण में वृद्धि या सम्पत्ति के एक निश्चित स्तर को प्राप्त करने के लिए कम नहीं किया जा सकता । 'समान स्वतंत्रताओं की अस्वीकृति को केवल तभी स्वीकार किया जाएगा जबकि यह सभ्यता के गुणों में वृद्धि करने में आवश्यक हों ताकि समय आने पर सभी. व्यक्ति समान स्वतंत्रताओं का उपभोग कर सकें । रॉल्स का मानना है कि अधिक भौतिक साधनों तथा पद की सुख–सुविधाओं हेतु समान स्वतंत्रता को कम करना अविवेकीय है । समान स्वतंत्रताओं में कमी केवल सभ्यता की दशाओं में वृद्धि करने के लिए ही मान्य हो सकती है । '

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर प्राथमिकता के नियम के साथ न्याय के प्रथम सिद्धान्त को इस प्रकार देख सकते हैं?

प्रथम सिद्धान्त : प्रत्येक व्यक्ति को समान मूल स्वतंत्रताओं की अधिकतम प्राप्ति का समान अधिकार होना चाहिए । स्वतंत्रता की इसी व्यवस्था का अधिकार अन्य सभी को भी मिलना चाहिए ।

प्राथमिकता नियम ' न्याय के सिद्धान्त को क्रमबद्धता में इस प्रकार श्रेणीबद्ध किया जाए कि स्वतंत्रताओं को केवल स्वतंत्रता के लिए ही सीमित किया जाए । ये दशाएं हो सकती हैं, (क) कम विस्तृत स्वतंत्रताओं को सभी व्यक्तियों की सहभागीदारी द्वारा स्वतंत्रता एक पूर्ण व्यवस्था के रूप में मजबूत बनाए रखना चाहिए और (ख) समान से कम स्वतंत्रताओं को जन व्यक्तिओं के लिए स्वीकार किया जाना चाहिए जिनके पास कम स्वतंत्रताएं हैं ।

न्याय का दूसरा सिद्धान्त : न्याय के दूसरे सिद्धान्त का सम्बन्ध आय तथा सम्पत्ति और सत्ता तथा पदों के बंटवारे से है । सम्पत्ति तथा आय का बंटवारा ऐसा हो जिससे न्यूनतम सुविधा–प्राप्त व्यक्तियों को अधिक लाभ मिले । जहां तक सत्ता तथा पदों का सम्बन्ध है, वे सभी व्यक्तियों के लिए खुलें हों तथा सभी व्यक्तियों की उन तक पहुंच भी हो । अत: हम न्याय के द्वितीय सिद्धान्त के भाग (क) को भिन्नता का सिद्धान्त (Difference principal) तथा भाग (ख) को अवसर की निष्पक्ष समानता का सिद्धान्त कह सकते हैं ।

भिन्नता के सिद्धान्त को परिभाषित करते हुए रॉल्स ने लिखा है, 'ऐसी स्थिति को छोड़कर जब वस्तुओं के असमान वितरण से न्यूनतम सुविधा प्राप्त लोगों को लाभ मिलता है, सभी सामाजिक मूल्यों–स्वतंत्रता तथा अवसर आय तथा सम्पत्ति और स्वाभिमान के आधार – का समान वितरण होना चाहिए ।' जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, समाज की मूल संरचना कुछ निश्चित प्राथमिक वस्तुओं के बंटवारे की व्यवस्था करती है । प्रत्येक विवेकीय व्यक्ति कुछ प्राथमिक वस्तुओं का प्रयोग करना चाहता है चाहे उनकी जीवन–योजनाएं कुछ भी क्यों न हों । समाज के अधिकार क्षेत्र में आने वाली प्राथमिक वस्तुओं में हम अधिकारों तथा स्वतंत्रताओं, शक्तियों तथा अवसरों, तथा सम्पत्ति और आत्म–सम्मान को ले सकते हैं । इन सब को हम सामाजिक प्राथमिक वस्तुएं कह सकते हैं । रॉल्स का मलना है कि इन प्राथमिक वस्तुओं के अलावा कुछ अन्य भी प्राथमिक वस्तुएं होती हैं, जैसे स्वास्थ्य, उत्साह, शक्ति, बुद्धि तथा अनुभवशक्ति । इन्हें हम प्राकृतिक प्राथमिक वस्तुओं की संज्ञा दे सकते हैं । हालांकि इन प्राथमिक वस्तुओं को भी मूल संरचना द्वारा प्रभावित किया जा सकता है किन्तु वे प्रत्यक्षत: उनके नियंत्रण में नहीं आती । अत: मूल संरचना द्वारा प्राथमिक वस्तुओं के विवरण का आग्रह सामाजिक प्राथमिक वस्तुओं के वितरण पर ही होना चाहिए । रॉल्स ने कहा कि ऐसी व्यवस्था बनायी जानी चाहिए जिसमें सभी प्राथमिक वस्तुओं का बंटवारा समान हो सके । प्रत्येक को समान अधिकार तथा दायित्व मिलने चाहिए तथा आय और सम्पत्ति में सभी व्यक्तियों की साझेदारी होनी चाहिए । रॉल्स सामाजिक वस्तुओं के समान वितरण पर जोर देता है । प्राथमिक सामाजिक वस्तुओं के बंटवारे के संदर्भ में रॉल्स दो बातों पर जोर देता है । प्रथम, प्राथमिक वस्तुओं की एक दूसरे से अदला बदली नहीं की जा सकती । दूसरे शब्दों में, रॉल्स ने प्राथमिक सामाजिक वस्तुओं की एक दूसरे से विनिमय व्यवस्था को अस्वीकार किया है । इस बात की बहुत संभावना है कि व्यक्ति सामाजिक–आर्थिक लाभ–प्राप्ति हेतु अपनी मौलिक स्वतंत्रताओं को छोड़ने के लिए तैयार हो सकता है किन्तु इस प्रकार के विनिमय को न्याय के सिद्धान्त में अस्वीकार किया गया है । साथ ही प्राथमिकता की क्रमबद्ध व्यवस्था को अपनाया जाना भी मूल स्वतंत्रता तथा सामाजिक–आर्थिक लाभों के विनिमय को स्वीकृति प्रदान नहीं करती है । प्राथमिकता के नियम के माध्यम से प्राथमिक सामाजिक वस्तुओं की वरीयता तय कर दी जाती है जिसमें मूल स्वतंत्रतायें सबसे पहले आती हैं । इस तरह से रॉल्स द्वारा प्राथमिक सामाजिक वस्तुओं में भी भिन्नता (Difference) पैदा कर दी गई है । द्वितीय, रॉल्स का आग्रह है कि इन प्राथमिक सामाजिक वस्तुओं के असमान वितरण को उसी स्थिति में मान्य ठहराया जा सकता है जबकि उस असमान वितरण से समाज के बद्तर वर्ग को लाभ मिलता हो तथा प्रत्येक की स्थिति में इससे सुधार होता हो । चूंकि व्यक्ति में विभिन्न प्रकार की सामाजिक स्थितियां तथा पदों की आकांक्षा इस बात पर निर्भर करती है कि वह सामाजिक रूप से किस स्थान पर है, अत: जब व्यक्ति का सामाजिक स्थान बदलता है तो उसकी आकांक्षाएं भी बदल जाती हैं । अत: प्राथमिक सामाजिक वस्तुओं का – जो कि व्यक्ति के सामाजिक स्थान को तय करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है – असमान बंटवारा करते समय इस बात का पूर्ण ध्यान रखा जाना चाहिए कि इससे प्रत्येक व्यक्ति को लाभ हो । प्रत्येक व्यक्ति के लाभे में रॉल्स का

तात्पर्य ऐसी स्थिति से है जिसमें व्यक्ति अपने जीवन की भावी योजनाओं के संदर्भ में असमानता– विहीन स्थिति की अपेक्षा असमानता–युक्त स्थिति को ज्यादा पसंद करता हो ।

सामान्यत : कहा जाता है कि रॉल्स का भिन्नता का सिद्धान्त कम समतावादी है । किन्तु इस संदर्भ में कह सकते हैं कि रॉल्स ने स्वतंत्रता का प्राकृतिक सिद्धान्त तथा दक्षता का सिद्धान्त दोनों को अस्वीकार किया है, जहां पर आय तथा सम्पत्ति के वितरण का निर्धारण क्षमता तथा प्रतिभा के प्राकृतिक वितरण पर किया जाता है । इन दोनों सिद्धान्तों की जगह रॉल्स ने लोकतांत्रिक समानता का सिद्धान्त प्रस्तुत किया है । 'जहां भिन्नता के सिद्धान्त के साथ अवसर की निष्पक्ष समानता के सिद्धान्त को जोड़ा गया है । यह सिद्धान्त एक विशिष्ट स्थिति – जिसमें मूल संरचना की सामाजिक – आर्थिक असमानता को जांचा जा सकता है–का उल्लेख करके दक्षता सिद्धान्त की निर्धारणता को दूर करता है ।' रॉल्स ने स्वयं यह दावा किया है कि उसका भिन्नता का सिद्धान्त समतावादी है क्योंकि इसमें अगर असमान वितरण सब व्यक्तियों के हित में नहीं है तो समान वितरण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए । अत: रॉल्स इस बात की संभावना को भी निरर्थक बना देते हैं कि समान वितरण का अवसर होने के उपरांत भी यह वितरण उन व्यक्तियों के ज्यादा पक्ष में होगा जो प्रभावशाली हैं या जो अधिक सम्पत्तिशाली हैं क्योंकि यह व्यवस्था कर दी गई है कि अगर असमान वितरण होता है तो उसका लक्ष्य समाज के न्यूनतम सुविधा–प्राप्त व्यक्तियों को सबसे अधिक लाभ होना चाहिए ।

अब हम न्याय के दूसरे सिद्धान्त के भाग (ख) – अवसर की निष्पक्ष समानता का सिद्धान्त–पर आते हैं । अवसर की निष्पक्ष समानता का तात्पर्य विभिन्न प्रकार के पदों तक सभी व्यक्तियों की समान पहुंच से है । रॉल्स के शब्दों में, 'उनको, जिनकी योग्यता तथा क्षमता का समान स्तर है तथा जो पद–प्राप्ति की समान इच्छा रखते हैं, उन्हें यह देखे बिना कि वे किस आर्थिक वर्ग में जन्मे हैं, सफलता के समान अवसर प्राप्त होने चाहिएं ।' रॉल्स का आग्रह है कि हमें अवसर की निष्पक्ष समानता को बुद्धिमान व्यक्तियों को पद–प्राप्ति के विचार से भ्रमित नहीं करना चाहिए । बुद्धिमान व्यक्तियों को पद–प्राप्ति का तात्पर्य 'मेरिटोक्रेटिक' समाज की स्थापना करना होगा जिसमें सम्पूर्ण शक्ति आर्थिक समृद्धता तथा राजनैतिक प्रभुत्व–प्राप्ति होती है । जबकि अवसर की निष्पक्ष समानता में आग्रह इस पर होता है कि व्यक्ति को यह देखे बिना कि समाज में उसका क्या स्थान है, वह किस आर्थिक वर्ग का है, पद–प्राप्ति के लिए उसको समान अवसर मिलने चाहिएं । ' अवसर की समानता का अर्थ व्यक्ति को अपने कम सौभाग्य (Less Fortune) का प्रभाव तथा सामाजिक स्थिति की खोज में पीछे छोड़ने का समान अवसर है ।'

7. मूल संरचना की अवधारणा

रॉल्स का मानना है कि न्याय के सिद्धान्त की अभिव्यक्ति के लिए कुछ निश्चित आवश्यक परिस्थितियों का होना जरूरी है क्योंकि इन आवश्यक पूर्व– शर्तों के अभाव में स्वतंत्रता एवं निष्पक्ष समझौता–न्याय के सिद्धान्त– संभव नहीं हो पाएंगे । इन्हीं आवश्यक परिस्थितियों को रॉल्स ने मूल संरचना (Basic Structure) की संज्ञा दी है । अत: हम कह

सकते हैं कि मूल संरचना का तात्पर्य सामाजिक व्यवस्था की उन मुख्य संस्थाओं और उनकी पारस्परिक व्यवस्था से है जो मिलकर व्यक्तियों के भावी जीवन को प्रभावित करती हैं । मूल संरचना को परिभाषित करते हुए रॉल्स ने लिखा है कि मूल संरचना का तात्पर्य उस तरीके या पद्धति से है जिसमें एक व्यवस्था के अन्तर्गत प्रमुख सामाजिक संस्थाएं एक साथ व्यवस्थित होती हैं तथा व्यक्तियों के मौलिक अधिकार तथा कर्त्तव्य तय किए जाते हैं और लाभों के विभाजन को स्वरूप प्रदान किया जाता है । अत: मूल संरचना में रॉल्स ने राजनीतिक संविधान, न्यायिक व्यवस्था तथा सामाजिक – आर्थिक व्यवस्था से जुड़ी हुई संस्थाओं को लिया है । जो मिलकर एक तरफ न्याय के सिद्धान्त हेतु उपर्युक्त पृष्ठभूमि की शर्तें तैयार करती हैं तो दूसरी तरफ व्यक्ति की उसकी जीवन की भावी योजनाओं को स्पष्ट करते हुए, न्याय के सिद्धान्तों का अनुसरण करने के लिए प्रेरित करती है । इसी कारण रॉल्स ने मूल संरचना को 'न्याय का प्राथमिक विषय ' की संज्ञा दी है । मूल संरचना की भूमिका के बारे में टिप्पणी करते हुए रॉल्स ने लिखा है, 'मूल संरचना की भूमिका न्याय संगत पृष्ठभूमि – दशाओं को सुरक्षित करना है ताकि व्यक्तियों और संघों की गतिविधियां संचालित हो सकें । तब तक यह संरचना पर्याप्त रूप से नियंत्रित एवं संचालित नहीं होती जब तक सामाजिक प्रक्रिया की न्याय–संगतता में कमी रहेगी ।'

न्याय के सिद्धान्त हेतु पृष्ठभूमि–दशाओं का विवेचन करते हुए रॉल्स ने कहा कि एक न्याय–संगत संविधान होना चाहिए ताकि समान नागरिकों को विभिन्न प्रकार की स्वतंत्रताएं प्राप्त हो सकें । न्यायिक व्यवस्था वैधानिकता के सिद्धान्त के अनुरूप संचालित हो तथा आत्म–चेतना और चिन्तन की स्वतंत्रता को गारन्टी प्रदान की जाये । सरकारों के चयन तथा निर्माण में, जहां तक संभव हो सके, राजनीतिक प्रक्रिया को उचित रूप से संचालित होना चाहिए । वितरणात्मक न्याय के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न अर्थों में अवसर की समानता उपलब्ध हो । इस हेतु सरकार को समान शैक्षणिक अवसर जैसी सुविधाएं प्रदान करनी चाहिए चाहे इसके लिए उसको आर्थिक अंशदान प्रदान किया जाये या स्वयं द्वारा पब्लिक स्कूल व्यवस्था का संचालन किया जाये । साथ ही, यह वाणिज्य क्षेत्र तथा पेशे की स्वतंत्र पसन्दगी में भी अवसर की समानता पर जोर देती है । यह विधि निर्धारित व्यापार व्यवहार द्वारा प्रतिबन्ध स्थापित करने से रोके जाने द्वारा तथा इच्छानुसार 'स्थिति तथा बाजारों पर प्रतिबन्धों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है । न्यूनतम सामाजिक आवश्यकताओं को गारन्टी प्रदान की जाये, इसके लिए सरकार को परिवार भत्ता, बेरोजगारी भत्ता, नकारात्मक आयकर आदि की व्यवस्था करनी चाहिए ।

संस्थाओं की इस व्यवस्था को बनाए रखने के लिए सरकार चार शाखायें स्थापित कर सकती हैं । प्रत्येक शाखा में कई प्रकार की एजेन्सिया होंगी जिनका दायित्व कुछ निश्चित सामाजिक–आर्थिक दशाओं को बनाए रखना होगा । ये शाखाएं निम्नलिखित हैं :

प्रथम, आवंटन शाखा : आवंटन शाखा का कार्य प्रतिस्पर्धायुक्त बाजार अर्थव्यवस्था बनाए रखने का है । रॉल्स के अनुसार प्रतिस्पर्धायुक्त एवं प्रतियोगी बाजार तभी बने रह सकते हैं जबकि बाजार में आवश्यकता के अनुरूप निरन्तर रूप से चीजों की अधिकता बनी रहे तथा

उपभोक्ता पसन्दगियों और स्थान के तथ्य को स्वीकार कर लिया जाए । साथ ही आवंटन शाखा कुछ सुधारात्मक कार्य भी संचालित करे, जैसे उपयुक्त कर लगाए जायें तथा जहां आवश्यकता हो वहां सरकारी सहायता प्रदान की जाये ।

द्वितीय, स्थिरीकरण शाखा : इस शाखा का कार्य पूर्ण रोजगार की व्यवस्था बनाए रखना है ताकि उपयोगी साधनों तथा स्रोतों के प्रयोग की असफलता के कारण कोई चीज व्यर्थ न जाए । पेशे की स्वतंत्र पसन्दगी होगी और प्रभावकारी मांग के अनुरूप वित्त की प्राप्ति होगी। रॉल्स का मानना है कि उक्त दोनों शाखाएं, आवंटन शाखा तथा स्थिरीकरण शाखा साथ मिलकर बाजार अर्थव्यवस्था की प्रभावकारिता को बनाए रख सकेंगी ।

तृतीय, हस्तान्तरण शाखा : न्यूनतम सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति का दायित्व हस्तान्तरण शाखा को सौंपा गया है । यहां पर रॉल्स का मुख्य आग्रह इस बात पर रहा है कि हस्तांतरण शाखा अपने कार्य संचालन में आवश्यकताओं को ध्यान में रखें । यहां पर एक विरोधाभास उत्पन्न होता यह दिखाई देता है कि एक तरफ रॉल्स आवंटन शाखा के माध्यम से प्रतियोगी तथा बाजार अर्थ—व्यवस्था पर जोर देते हैं तो दूसरी तरफ हस्तांतरण शाखा के माध्यम से आवश्यकताओं की पूर्ति के सिद्धान्त पर उनका आग्रह रहता है । जबकि स्पष्ट है कि एक बाजार अर्थ व्यवस्था में आवश्यकताओं के प्रश्न को पूर्णत: अनदेखा किया जाता है । अत: सवाल उठता है कि रॉल्स बाजार अर्थव्यवस्था के साथ आवश्यकताओं की पूर्ति के सिद्धान्त का कैसे समन्वय स्थापित करते हैं? इस संदर्भ में रॉल्स का मानना है कि जिस तरह से विभिन्न संस्थाएं विभिन्न सामान्य समस्याओं का समाधान प्रदान करती है, उसी तरह से सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न भागों में श्रम–विभाजन होगा जिसमें सभी अपने– अपने कार्य को पूरा करेंगे । रॉल्स के शब्दों में 'प्रतियोगी बाजार श्रम तथा साधनों के प्रभावकारी आवंटन की समस्या का समाधान करेंगे तथा पारितोषिक और जीविका निर्धारित करने वाले नियमों (इस नियम के आधार पर कि प्रत्येक को उसके कार्य तथा अनुभव या उत्तरदायित्व तथा कार्य के जोखिम के अनुसार मिलना चाहिए) को तय करेंगे, जबकी हस्तांतरण शाखा सामाजिक कल्याण के एक निश्चित स्तर की गारन्टी प्रदान करती है और आवश्यकता के दावे को पूरा करती है । इस तरह स्पष्ट है कि वितरणात्मक हिस्से की सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था सम्यूर्ण आय तथा वेतन – हस्तांतरण को साथ लेते हुए–का बंटवारा कैसे होता है, पर निर्भर करती है ।... अगर हस्तांतरण के माध्यम से उचित न्यूनतम आय प्रदान की जाती है तो पूर्णत: उचित होगा कि सम्पूर्ण आय के अन्य भाग प्रतियोगात्मक दृष्टि से निर्धारित हों ।' रॉल्स का मानना है कि मूल्य–नियंत्रण न्यूनतम मजदूरी आदि सिद्धान्तों के माध्यम से न्यूनतम सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति की आकांक्षा की अपेक्षा प्रतियोगी बाजार अर्थव्यवस्था के साथ हस्तांतरण शाखा द्वारा न्यूनतम सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति की मान्यता ज्यादा प्रभावकारी है क्योंकि इस व्यवस्था के माध्यम से न्यूनतम सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति का काम पृथक शाखा को सौंपा गया है। हस्तान्तरण शाखा का यह दायित्व है कि वह यह देखे कि न्याय के दूसरे की अभिव्यक्ति हो रही है या नहीं । दूसरे शब्दों में, हस्तांतरण शाखा यह देखे कि क्या न्यूनतम सुविधा–प्राप्त व्यक्तियों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति हो रही है या नहीं?

चतुर्थ, वितरणात्मक शाखा : इस शाखा के मुख्यत : दो भाग होंगे । प्रथम भाग द्वारा विरासत से प्राप्त सम्पत्ति तथा उपहार–करों की व्यवस्था को संचालित किया जाएगा । रॉल्स का मानना है कि इन करों का लक्ष्य राजस्व में वृद्धि करना नहीं बल्कि सम्पत्ति के बंटवारे को क्रमिक एवं निरन्तर रूप में उपयुक्त बनाना है । स्वतंत्रता को किसी प्रकार का कोई खतरा पैदा न हो तथा अवसर की समानता बनी रहे, इस हेतु शक्ति–केन्द्रीकरण को रोकना है । हालांकि एफ.फॉन् हायक का समर्थन करते हुए रॉल्स ने कहा है कि यह पूर्णत: सही है कि बौद्धिक असमान विरासत की अपेक्षा संपत्ति की असमान विरासत कम अन्यायसंगत है, किंतु जहां तक संभव हो सके असमानता को उस स्थिति में लागू किया जाना चाहिए, जहां तक उससे 'भित्रता के सिद्धान्त' की सिद्धि होती हो । दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि रॉल्स के अनुसार पैतृक सम्पत्ति की भिन्नता उसी स्थिति में न्यायसंगत तथा उचित मानी जायेगी, जबकि वह न्यूनतम सुविधा–प्राप्त व्यक्तियों के हित में हो तथा अवसर की समानता सहित स्वतंत्रता के अनुरूप हो। यहां रॉल्स अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहते है ' कि इसका यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि इसका तात्पर्य विभित्र वर्गों के मध्य आशाओं की समानता स्थापित करना है । इसका (न्याय के दूसरे सिद्धान्त या भिन्नता का सिद्धान्त) लक्ष्य केवल असमानता तथा विभिन्नताओं को न्यायसंगत बनाना है । मूल संरचना के घेरे में भी उन्होंने इसे अपरिहार्य माना था । अत: वितरण शाखा. के इस भाग द्वारा कर केवल उसी स्थिति में लगाए जाएंगे जबकि लोग असमानता तथा सम्पत्ति के केन्द्रीकरण की निर्धारित निश्चित सीमा को लांघेगे ।

वितरणात्मक शाखा के दूसरे भाग का काम राजस्व–वृद्धि तथा कर योजना निर्धारित करने से संबंधित होगा ताकि जन–उपयोगी वस्तुओं की कीमतों की क्षतिपूर्ति, वेतन का हस्तांतरण आदि किया जा सके । इस दृष्टि से रॉल्स ने आनुपातिक व्यय–कर व्यवस्था को आदर्श न्यायसंगत व्यवस्था के रूप में माना है । आनुपातिक व्यय–कर व्यवस्था के दो आयाम हो सकते हैं : प्रथम, लोगों पर उसी अनुपात में कर लगाए जाने चाहिए जिस अनुपात में वे लोग वस्तुओं का उपयोग करते हैं न कि इस आधार पर कि वे उन वस्तुओं के भंडारण में कितना योगदान देते हैं । द्वितीय, आनुपातिक कर प्रत्येक व्यक्ति पर एक– रूपीय पद्धति के आधार पर लगाए जाएं तथा कुछ वस्तुओं पर प्रगतिशील दरें तभी लगायी जाएं जबकि पूर्णरूप से व्यवस्था की न्यायसंगतता को सुरक्षित बनाना अनिवार्य हो । रॉल्स ने आनुपातिक व्यय–कर की व्यवस्था अपना कर कर की परम्परागत कसौटियों–अदायगी की क्षमता तथा लाभ–प्राप्ति के अंश के आधार पर कर को अस्वीकार कर दिया क्योंकि उनका मानना है कि कर की परम्परागत व्यवस्था न्याय के सिद्धान्त के अनुरूप नहीं है ।

8. मूल्यांकन

बीसवीं सदी के दार्शनिकों में जॉन रॉल्स सबसे महत्त्वपूर्ण विचारक हैं । उनकी पुस्तक 'ए थ्यूरी ऑफ जस्टिस' समसामयिक काल की सबसे महत्त्वपूर्ण चर्चित पुस्तक है । रॉल्स ने क्लासिकल उदारवाद, विशेषकर उपयोगितावादी मान्यताओं को छोड़कर उदारवाद के घेरे में समानता तथा नैतिक आयाम जोड़कर उसे नई दिशा प्रदान की । किन्तु ' क्यूरी ऑफ जस्टिस'

बहुत ही वृहद् तथा अस्पष्ट पुस्तक है । रॉल्स की आलोचना मार्क्सवादी तथा उदारवादी दोनों ही खेमों से की गई है । पहले हम वामपंथी पक्ष द्वारा की गई आलोचनाओं को लेते हैं । यद्यपि उदारवाद की वामपंथी पक्ष द्वारा की गई आलोचनाओं से बचाने के लिए रॉल्स सहित सभी उदार समतावादी विचारकों ने काण्ट को अपने चिन्तन के आधार के रूप में स्वीकार करके व्यक्ति की स्वायत्तता, उसकी विवेकशीलता में विश्वास तथा स्वतंत्रता के प्रति आग्रह आदि के साथ समानता की आकांक्षा का विचार जोड़कर अहस्तक्षेपवादी धारणा से उदारवाद० को मुक्त करने का प्रयास किया, किन्तु फिर भी रॉल्स मार्क्सवादियों की आलोचना से नहीं बच पाये । मार्क्सवादी आलोचकों में हम सबसे प्रमुख विचारक सी.बी.मेकफर्सन को लेते हैं जिन्होने रॉल्स को 'उदार लोकतांत्रिक पूंजीवादी लोककल्याणकारी राज्य' का प्रवक्ता बताया ।' मेकफर्सन रॉल्स को संशोधित उदारवादियों (Revisionist Liberals) की श्रेणी में लेते हैं । मेकफर्सन की आलोचना का मुख्य बिन्दु उदारवाद की असमानताओं को लेकर है । उसका मानना है कि एक निजी स्वामित्व वाली व्यवस्था में सभी व्यक्तियों के समान अधिकार तथा स्वतंत्रताए नहीं बनी रह सकती हैं । कुछ व्यक्तियों के हितों के लिए अधिकांश व्यक्तियों के हितों की बलि चढ़ा दी जाती है ।

मार्क्सवादी खेमे की भांति रॉल्स की उदारवादी खेमे द्वारा भी आलोचना की गई । उदारवादी खेमे द्वारा की गई आलोचनाओं के दो पक्ष रहे हैं । प्रथम, रॉल्स स्वयं की धारा–उदारवादी–धारा–के विचारकों की आलोचना का शिकार हुआ। इन आलोचकों में हम सबसे प्रमुख विचारक रोबर्ट नोजिक को ले सकते हैं । नोजिक ने रॉल्स की आलोचना करते हुए कहा कि रॉल्स ने उदारवादी अधिकारों की मान्यता को अस्वीकार किया है । नोजिक रॉल्स के न्याय सिद्धान्त पर आक्रमण करते हुए कहते हैं कि सामाजिक न्याय के साथ व्यक्तिगत अधिकारों की मान्यता मेल नहीं खाती । नोजिक का मानना रहा है कि रॉल्स अपनी समतावादी मान्यताओं की प्रस्थापनाओं में क्लासिकल उदारवाद की मान्यताओं से बचने के प्रयास में, व्यक्तिगत अधिकारों की भाषा से दूर चला गया है जो कि एक खतरनाक स्थिति है । ऐसा इसलिए क्योंकि वहां सर्वाधिकारवादी शक्ति के बढ़ने की संभावनाएं व्याप्त हो जाती है । द्वितीय, रॉल्स के उदारवादी खेमे के अंतर्गत दूसरी आलोचना सामुदायिक विचारकों द्वारा की गई । इन सामुदायिक विचारकों में अलासदैर मेकण्टायर, चार्ल्स टेलर, माइकल सण्डल तथा वॉल्जर को ले सकते हैं । इन विचारकों का आग्रह रहा है कि उदार समतावादी अपने आपको व्यक्तिवादी मान्यता से अलग नहीं कर पाये हैं । अरस्तु की न्याय की धारणा को स्वीकार करते हुए अलासदैर मेकण्टायर ने कहा कि रॉल्स ने 'योग्यता ' की मान्यता की उपेक्षा की है । इन आलोचकों के उपरान्त भी हम कह सकते हैं कि जॉन रॉल्स वैचारिक रूप से बहुत ही सशक्त विचारक हैं । उन्होंने काण्टवादी मान्यता को स्वीकार करके उदारवाद में नयी जान डालने का प्रयास किया है जो उनका उदारवादी चिन्तन को एक महत्वपूर्ण योगदान है ।

9. अभ्यास प्रश्न

1. जॉन रॉल्स के चिन्तन की मूल संकल्पनाएं क्या हैं? व्याख्या कीजिए ।
2. रॉल्स के चिन्तन पर काण्ट के दर्शन का क्या प्रभाव व्यास है? समीक्षा कीजिए ।

3. 'जॉन रॉल्स का न्याय सिद्धान्त ' विषय पर एक समीक्षात्मक लेख लिखिए ।
4. रॉल्स के न्याय सिद्धान्त का परिचालन कैसे सम्भव है? चर्चा कीजिए ।
5. राजनीतिक सिद्धान्त के क्षेत्र में रॉल्स का क्या योगदान है? स्पष्ट " ।

10. संदर्भ ग्रन्थ सूची

जॉन रॉल्स : **ए थ्योरी ऑफ जस्टिस** (1971)

: **दि टैनर लेक्चर्स ऑन ह्यूमन वैल्यूज** (1982)

नार्मन डेनियल्स : **रीडिंग रॉल्स** (1975)

रॉबर्ट पॉल वोल्फ : **अन्डरस्टेन्डिंग रॉल्स : ए रिकंस्ट्रक्शन एण्ड क्रिटीक ऑफ ए थ्योरी ऑफ जस्टिस** (1971)

लीलाराम गुर्जर : **बीसवीं सदी के राजनीतिक विचारक** (1997)

इकाई 6 – न्याय की अवधारणा – II : माइकल वॉल्जर

इकाई संरचना

1. उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. सामुदायिक चिन्तन के वैचारिक आधार
4. वॉल्कर की न्याय–अवधारणा
    - 4.1 विभित्र वस्तुओं की मान्यता
    - 4.2 वितरणात्मकता के निर्धारित कारक
    - 4.3 वितरण की विभिन्न प्रक्रियाएं
5. समानता तथा वितरणात्मक न्याय
6. प्रभुत्व की स्थिति अन्याय का उद्भव
7. नवकाण्टवादियों के प्रति दृष्टिकोण
8. मूल्यांकन एवं निष्कर्ष
9. अभ्यास प्रश्न
10. संदर्भ गन्ध –सूची

1. उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप यह समझ सकेंगे कि

1. सामुदायिक चिन्तन तथा उसके वैचारिक आधार क्या हैं?
2. सामुदायिक चिन्तन शृंखला में माइकल वॉल्जर का क्या स्थान है?
3. वॉल्जर की न्याय अवधारणा क्या है?
4. वॉल्जर की न्याय अवधारणा तथा समानता किस " परस्पर जुड़ी हुई है?
5. प्रभुत्व किस प्रकार अन्याय का कारक बनता है?
6. सामुदायिकता न्याय की कैसे परिपूरक है?

2. प्रस्तावना

हाल ही के वर्षों में उदारवादी राजनीतिक सिद्धान्त मार्क्सवादी आलोचना से बचने के लिए उपयोगितावादी आग्रह से दूर हट कर ' अधिकारयुक्त उदार मान्यता ' पर जोर देने लगा है। इस हेतु उदारवादी राजनीतिक विचारकों ने काण्ट से अपने चिन्तन के स्रोत प्राप्त किए । इन नवकाण्टवादी विचारकों में हम जॉन रॉल्स, इसैह बर्लिन, डवोर्किन, रोबर्ट नोज़िक आदि को ले सकते हैं । ये विचारक उदारवाद के लिए नैतिक आधार तैयार करने लगे तथा अपनी मान्यता के घेरे में समतावादी दृष्टिकोण पर जोर देने लगे । किन्तु नवकाण्टवादी उदारवाद को आज एक दूसरी दिशा से चुनौती मिलना प्रारंभ हो गई है । यद्‌यपि यह चुनौती किसी भी रूप में मार्क्सवादी घेरे से नहीं मिली, बल्कि यह चुनौती स्वयं उदारवाद के अंतर्गत आने वाले सामुदायिक विचारकों (communitarian thinkers) ने दी । अलासदैर मेकण्टायर (1981), चार्ल्स टेलर (1975), बेंजामिन बारबर (1984), माइकल वॉल्जर (1983) जैसे सामुदायिक

विचारकों ने नवकाण्टवादी उदार मान्यता की आलोचना करते हुए कहा कि यह अपने आप को व्यक्तिवादी मान्यता से अलग नहीं कर पायी । नवकाण्टवादी विचारकों की पद्धति व्यक्तिवादी रही तथा लक्ष्य सामुदायिक किन्तु ये सामुदायिक लक्ष्यों के अनुरूप किसी भी प्रकार की सामुदायिक जीवन–योजना स्पष्ट करने में असफल रहे हैं । फलत : उनकी पद्धति तथा लक्ष्य में खाई पैदा हो गई जिसको पाटने में नवकाण्टवादी विचारक असमर्थ रहे हैं । संक्षेप में, सामुदायिक विचारकों की नवकाण्टवादी उदारवाद के विरुद्ध निम्न आपत्तियां रही हैं : प्रथम, इन विचारकों ने नवकाण्टवादी विचारकों की पद्धतीय व्यक्तिवाद के सिद्धान्त (Principle of Methodological Individualism) को अस्वीकार कर दिया (पद्धतीय व्यक्तिवाद के सिद्धान्त के अंतर्गत माना जाता है कि विवेकशीलता व्यक्ति की गतिविधियों एवं उसके कार्यों में ही अभिव्यक्त होती है ।) इन विचारकों का मानना है कि विवेकशीलता केवल व्यक्तिगत कार्यों एवं गतिविधियों में ही अभिव्यक्त नहीं होती वरन् यह राजनीतिक संस्थाओं तथा राजनीतिक संस्कृति के माध्यम से भी प्रकट होती है क्योंकि व्यक्ति के कार्य तथा उसकी गतिविधियों का स्वरूपण राजनीतिक संस्थाओं तथा संस्कृति द्वारा तय होता है । द्वितीय, अच्छाई को हम केवल व्यक्तिगत अच्छाई या व्यक्तिगत सुख के रूप मे नहीं ले सकते । व्यक्ति की अच्छाई अन्य व्यक्तियों की अच्छाई से निकटता से जुड़ी होती है । 'हम क्या हैं, यह इससे निर्धारित होता है कि समुदाय में हमारी सदस्यता का स्थान क्या है?' समाज पृथक–पृथक व्यक्तियों का जोड़–मात्र नहीं है, जो कि अनभिज्ञता के आवरण (veil of ignorance) (रॉल्स : 1971) के द्वारा एकत्रित होते हैं । वास्तव में समाज तो मानव प्राणियों का एक ऐसा समुदाय है जिसमें उसके हर सदस्य की आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयास किया जाता है । व्यक्ति समाज के अंतर्गत अनभिज्ञता के आवरण के अंतर्गत कार्य नहीं करता बल्कि उसकी भूमिका एक ऐसे व्यक्ति की है, जो समाज में अपने अस्तित्व के प्रति सचेत हैं किन्तु उसके अस्तित्व का स्वरूप समाज द्वारा ही प्रदान किया जाता है ।

3. सामुदायिक चिन्तन के वैचारिक आधार

सामुदायिक विचारकों ने अपने चिन्तन को आधार अरस्तु तथा हीगल को बनाया । अरस्तु तथा हीगल के चिन्तन से स्रोत लेते हुए इन विचारकों ने एक तरफ नवकाण्टवादी मान्यता का विकल्प प्रस्तुत किया तो दूसरी तरफ उन्होंने समसामयिक उदारवाद में, कम से कम सैद्धान्तिक रूप में तो, व्यक्ति तथा समुदाय में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया । जैसा कि गिलेस्पी ने लिखा है, नवकाण्टवादियों की असफलता उदारवाद के लिए एक ऐसा आधार प्रदान करती है, जो सामुदायिकता की अभिव्यक्ति तथा मानव गरिमा को गारन्टी प्रदान करती है । नवकाण्टवादियों की असफलता ने अरस्तु, रूसो और संभवत: सबसे अधिक हीगल जैसे विचारकों पर पुन: विचार की ओर प्रेरित किया । हीगल द्वारा काण्ट की आलोचना के बिन्दुओं को नवकाण्टवादियो की आधुनिक आलोचना में उसी रूप में लिया जा रहा है तथा हीगल की धारणा कम से कम सिद्धान्त में तो व्यक्ति तथा समुदाय का सामंजस्य स्थापित करती है जिसका कि सामयिक उदारवाद में अभाव है । ऐसी स्थिति में हीगल की तरफ पुन: आकर्षित होने में आश्चर्य की कोई बहुत बड़ी बात नहीं है ।' अरस्तु का अनुसरण करते हुए इन

विचारकों ने कहा कि हम सामान्य तथा सामुदायिक लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को ध्यान में रखे बिना राजनीतिक समझौतों तथा सहमतियों को तब तक न्यायसंगत नहीं देख सकते हैं जब तक कि हम सामुदायिक जीवन में एक नागरिक के रूप में हमारी क्या भूमिका रही, इसको नहीं देख लें। काण्ट के विरुद्ध प्रयुक्त हीगल के तर्कों को अपनाते हुए ये विचारक आधुनिक उदरवादी का के ऊपर अधिकारों को प्राथमिकता देने के दावे तथा व्यक्ति की स्वतंत्र पसंदगी की प्रमुखता को चुनौती देने का प्रभाव विशेष रूप से अलासदैर मेकण्टायर' तथा चार्ल्स टैलर पर देख सकते हैं तों हीगल के पुन: उद्भव का प्रयास रोबटो गार तथा माइकल संण्डल ने किया । अलासदैर मेकण्टायर ने अरस्तु की न्याय की धारणा को स्वीकार करते हुए जीन रॉल्स तथा रोबर्ट नोज़िक द्वारा योग्यता की उपेक्षा किए जाने के कारण उनकी आलोचना की । ऐसे समुदाय में निहित होता है जिसमें व्यक्ति रह रहा है । जैसा कि माइकल संण्डल ने मेकण्टायर की सामुदायिकता की अवधारणा पर टिप्पणी करते हुए लिखा है, 'मेरी पहचान मेरे अपने अलग लक्ष्यों एवं उपलब्धियों में नहीं है हालांकि ये उसके अंग जरूर हैं । मैं शुरू से ही उस स्थिति पर टिका हूं जहां इतिहास द्वारा अन्य व्यक्तियों में मेरी स्थिति तय कर दी है । मेरी अच्छाई सामुदायिक अच्छाई में ही निहित है । चार्ल्स टेलर ने व्यक्तिवादी उदारवाद (Atomistic Liberalirm) को आलोचना का केन्द्र बनाया । उनका मानना था कि व्यक्तिवादी उदारवाद समाज की अपेक्षा व्यक्ति तथा उसके अधिकारों को प्राथमिकता देता है । रोबर्टो स्पार तथा चार्ल्स टेलर दोनों ने इतिहास द्वारा नियंत्रित व्यक्ति की हीगलवादी अवधारणा को स्वीकार करते हुए स्वतंत्र तथा विवेकीय प्राणी के रूप में व्यक्ति कई उदारवादी मत को अस्वीकार कर दिया ।' चूंकि प्रस्तुत अध्याय का आगह सामुदायवादी धारा की समग्रता में विवेचन करना नहीं बल्कि समुदायवादी धारा के प्रतिनिधि विचारक माइकल वॉल्जर के राजनीतिक चिन्तन, विशेषकर समानता की बहुलवादी धारणा का मूल्यांकन करना है, इसलिए हमारा प्रयास यह देखने का रहा है कि समुदायवादी धारा के विचारक के रूप में माइकल वॉल्जर उदारवाद के कौन से मुद्दों को आलोचना का शिकार बनाता है तथा व्यक्ति तथा समुदाय में कैसे समन्वय स्थापित करता है? साथ साथ अपने चिन्तन के आधार पर उसने अरस्तु की मान्यताओं का कितना अनुसरण किया?

4. वॉल्जर की न्याय– अवधारणा

माइकल वॉल्जर के चिंतन की शुरुआत हम उसकी न्याय की अवधारणा से करते हैं । न्याय से वॉल्जर का तात्पर्य वितरणात्मक न्याय से है जो अपने स्वरूप में बहुलवादी होता है । वॉल्जर के अनुसार ' एक विशिष्ट समाज में न्याय के सिद्धान्त अपने स्वरूप में बहुलवादी होते हैं विभित्र सामाजिक वस्तुएं विभिन्न प्रक्रियाओं के साथ विभिन्न कारणों के लिए वितरित होनी चाहिए।' वितरणात्मक न्याय में जिन वस्तुओं के संबंध में हम चाहते हैं उन वस्तुओं में हमारी सहभागी समझ अन्तत: जुड़ी होती है । प्राथमिक तथा मूल वस्तुओं का कोई एक समूह नहीं है। वॉल्जर का मानना है कि यहां तक कि भोजन जैसी आवश्यक वस्तु भी विभिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न अर्थ लिए हुए है । साथ ही जो वस्तुएं उपलब्ध हों, उनके बारे में कोई एकमात्र सामान्य कसौटी नहीं हो सकती है और न ही स्वतंत्र विनिमय या योग्यता या आवश्यकता वितरण की सम्पूर्ण व्यवस्था को बदल सकती है । जब किसी विशिष्ट वस्तु का सामाज्यिक

अर्थ इतिहास तथा समय परिवर्तन के साथ बदल जाता है तो सामाजिक जीवन के परिवर्तन की भांति वितरण व्यवस्था भी स्वत: बदल जाएगी । अत: कह सकते हैं कि वॉल्जर की बहुलवादी न्याय की मान्यता में तीन आयाम उभर कर उगते हैं । ये हैं विभिन्न वस्तुओं की मान्यता. वितरणात्मकता के कारक तथा वितरण की विभित्र प्रक्रियाएं । हमारे लिए यह वांछनीय होगा कि हम इन तीनों आयामो को विस्तार से विवेचन करें ।

4.1 विभिन्न वस्तुओं की मान्यता

वस्तुओं के सिद्धान्त के बारे में छ: मान्यताएं प्रतिपादित हैं । प्रथम वालरस का मानना है कि विवरणात्मक न्याय से सम्बन्ध रखने वाली सभी वस्तु सामाजिक वस्तुएं हैं । निजी तथा भावनात्मक कारणों के फलस्वरूप कुछ घरेलू वस्तुएं हों सकती हैं किन्तु इन वस्तुओं से जुड़ी रहने वाली भावनाएं संस्कृति से जुड़ी हुई होती है । अत: व्यक्तिगत वस्तुएं भी सामाजिक वस्तुएं की श्रेणी में आ जाती है । विश्व में वस्तुओं के अर्थ विभित्र लगाए जाते हैं क्योंकि उनका उद्भव तथा दृष्टिकोण सामाजिक प्रक्रिया से जुड़ा होता है । इसी कारण विभिन्न वस्तुएं विभित्र अर्थ रखती हैं । एक चीज का ही मूल्यांकन विभित्र स्थानों पर विभिन्न प्रकार से किया जाता है । कहीं एक विशिष्ट चीज को महत्त्व दिया जाता है तो कहीं उसे गौण समझा जाता है। द्वितीय, सामाजिक वस्तुएं व्यक्तियों को मूर्त स्वरूप प्रदान करती है । वितरण को व्यक्तियों के कार्यों के रूप मे उस समय तक नहीं समझ सकते जब तक कि उनके मानस या हाथ में कोई विशिष्ट वस्तुएं न हो । वास्तव में, व्यक्ति पहले से ही वस्तुओं के समूह के अनुरूप तय होते हैं । दूसरे शब्दों में, सामाजिक वस्तुएं ही समाजों की विभिन्नता का स्वरूप प्रदान करती हैं । तृतीय, प्राथमिक या मूल वस्तुओं का कोई एक समूह नहीं होता है जो कि पूरे विश्व में स्वीकृत हो । यहां तक कि ' आवश्यकता' की सीमा रेखा भी बहुत भिन्नता लिए होती है । उनकी वरीयता का क्रम बहुत नित्र होता है । उदाहरण के लिए, रोटी ' जैसी आवश्यक वस्तु भी विभिन्न थानों पर विभिन्न अर्थ रखती है । एक जगह रोटी व्यक्ति का जीवन है तो दूसरी जगह अनाज को कूड़े के रूप में फैंका जाता है । ऐसी स्थिति में रोटी को हम सर्वमान्य वस्तु की सूची में कैसे ले सकते हैं? चतुर्थ, विवरणात्मक कसौटी तथा व्यवस्था अपने आप में सामाजिक अच्छाई लिए होती है । अगर हम यह समझना चाहते हैं कि यह अच्छाई क्या है? व्यक्तियों के लिए इसका क्या अर्थ है इसको हम कैसे समझ सकते हैं ? तो हमें उन कारकों को देखना होगा जिनके कारण से व्यक्ति वस्तुओं को बांटना चाहते हैं । सभी वितरण व्यवस्थाएं वस्तुएं के सामाजिक अर्थ के अनुरूप ही न्यायसंगत और न्यायसंगत होती हैं । कोई भी वस्तु अगर सामाजिक रूप से स्वीकृत या मान्य है तो वह न्यायसंगत है अनन्यता न्यायसंगत । 'एक निश्चित उपयुक्त कसौटी के अंतर्गत प्रत्येक सामाजिक वस्तु का अपना पृथक वितरण क्षेत्र होता है । वह कसौटी इस पर निर्भर करती है कि उस विशिष्ट वस्तु का हमारे लिए क्या अर्थ है । उसका महत्व हमसे कैसे जुड़ा है । वितरण की न्याय–संगतता और अन्याय–संगतता उस विशिष्ट वस्तु के सामाजिक अर्थ से सापेक्ष रूप से जुड़ी होती है ।' वील्डर का मानना है कि सामाजिक अर्थ में कोई वस्तु न्यायसंगत है तो उसे खरीद– बेच सकते हैं

अन्यथा नहीं । जैसे, वेश्यावृत्ति तथा रिश्वतखोरी सामाजिक अर्थ में मान्य नहीं है, अत: इनका प्रचलन तथा व्यापार भी मान्य नहीं हो सकता । वॉल्जर का मानना है कि हमारे सामने इस बात की बहु त कठिन समस्या है कि हम सामाजिक वस्तु का अर्थ कैसे तय करें क्योंकि आधुनिक समाज के हम लोगों की आदत किसी एक उपभोक्ता वस्तु की नहीं वरन् कई उपभोक्ता वस्तु की होती है । हमारा दृष्टिकोण विभिन्न सामाजिक वस्तुओं के बारे में बंटा होता है । हमारे समाज में सामूहिक समझदारी युक्त सहमति जैसी कोई चीज नहीं है । ट्यूबर के शब्दों में, 'सामूहिक समझदारी इतनी कम है कि हम समान अर्थ के किसी ऐसे विश्व की रचना नहीं कर सकते हैं जो दिशा प्रदान करने में सक्षम हो सके । ' पचंम, सामाजिक अर्थ में वस्तु की न्याय–संगतता या अन्याय संगतता अपने स्वरूप में ऐतिहासिक होती है । दूसरे शब्दों में, वस्तु का सामाजिक अर्थ अर्थात्– उसकी न्याय–– संगतता या अन्याय–संगतता को उस कारण या समय के अंतर्गत लेकर ही देखा जाता है । अत: वितरण की न्याय– संगतता तथा अन्याय संगतता भी समयानुसार बदलती रहती है । हालांकि कुछ वस्तुएं अपने स्वरूप में निरपेक्ष होने के कारण समय और स्थान की सीमा से दूर लेती. है किन्तु अधिकांश ऐतिहासिक स्वरूप से जुडी –होती । छठे, जब वस्तुओं के सामाजिक अर्थ विशिष्ट हैं तो वितरण व्यवस्था को निश्चित रूप में स्वायत्त होना चाहिए । वितरण की स्वायत्तता से तात्पर्य यह है कि वितरण का कोई एक ऐसा सार्वभौमिक प्रतिमान नहीं हो सकता जो सभी समाजों में समान रूप से लागू हो सके। प्रत्येक सामाजिक वस्तु या वस्तुओं का एक समूह वितरणात्मक क्षेत्र को लिए होता है जिसमें कुछ निश्चित प्रकार की कसौटियां तथा व्यवस्थाएं ही उपयुक्त हो सकती हैं । वितरण व्यवस्था वस्तु की प्रकृति, इतिहास तथा स्थान के अनुसार तय होती है । जैसा कि कहा गया है कि वितरण का कोई एक मान्य सिद्धान्त नहीं है । राजनीतिक शक्ति के वितरण के जा नियम हैं वे नियम प्यार, धन तथा अन्य वस्तुओं के वितरण के नहीं हो सकते हैं । ' अत: वे व्यक्ति जो किसी एक वितरण में प्रभुताशाली हैं उनके लिए यह आवश्यक नहीं कि वे ही व्यक्ति किसी अन्य क्षेत्र में भी सफल हो जाएंगे । जहां तक वितरण व्यवस्था का इतिहास तथा स्थान से सम्बन्ध है, हम कह सकते हैं कि मानव संरचना स्थान और समय के अनुसार परिवर्तित होती रहती है तथा उस स्थान व समय के अनुसार तय होने वाले मूल्यों तथा मान्यताओं के अनुसार ही अपना, अर्थ ग्रहण करती है । न्याय का जो अर्थ प्लेटो के लिए था, वह आज हमारे लिए नहीं हो सकता है । सामाजिक जीवन के विभित्र रूप न्याय की अवधारणा के विभिन्न रूप लिए होते है ।

4.2 वितरणात्मकता के निर्धारित कारक

सभी प्रकार के वितरणों के लिए कभी कोई भी एक कसौटी या उनके पारस्परिक सम्बन्धों की कसौटी का कोई एक रूप नहीं रहा है । योग्यता, जन्म और रक्त, मित्रता, आवश्यकता, स्वतंत्र विनिमय, राजनीतिक आस्था, लोकतांत्रिक निर्णय आदि सभी का अपना स्थान विशिष्ट होता है । समान रूप से एक प्रकार की निर्णय व्यवस्था से भी सभी प्रकार की वितरण व्यवस्था को नियंत्रित नहीं किया जा सकता । कोई भी राज्य–शक्ति इतनी व्यापक नहीं हो सकती है कि वह समाज को स्वरूप देने वाली सभी हिस्सेदारी, वितरण व्यवस्था तथा

विनिमय के प्रारूप को नियंत्रित कर सके । चीजें राज्य के नियंत्रण से निकल जाती है । फलत: नए प्रारूप तय होते हैं । दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि राज्य वितरण की सम्पूर्ण व्यवस्था को नियंत्रित नहीं कर सकता है ।

इस तरह वॉल्जर का मानना रहा है कि सामाजिक वस्तुओं की विभिन्नताओं में वितरण की कोई एक प्रामाणिक कसौटी नहीं हो सकती है । फिर भी मुख्यत: तीन कसौटियां ऐसी हैं जिन पर हम वितरण – व्यवस्था को केन्द्रित कर सकते हैं । ये कसौटियां स्वतंत्र विनिमय, योग्यता (Desert) तथा आवश्यकता हो सकती है । वॉल्जर के अनुसार वितरण–व्यवस्था में ये तीनो प्रभावकारी कारक तो हैं किन्तु इनमें से कोई एक कारक भी अपने आप में पूर्ण नहीं है, बल्कि वह पूर्ण का एक भाग है । यहां यह अच्छा होगा कि हम इन तीनों कारकों के बारे में थोड़ा विस्तार से विवेचन करें :

(i) स्वतंत्र विनिमय : स्वतंत्र विनिमय एक ऐसे बाजार का उद्भव करता है जिसमें धन विनिमय का एक साधन होता है । दूसरे शब्दों में, धन के माध्यम द्वारा सभी वस्तुओं को अन्य दूसरी वस्तुओं द्वारा बदला जा सकता है । एक सफल बंटवारे के लिए इस बाजार में दो चीजों का होना जरूरी है । प्रथम, जहां न तो कोई प्रभुत्वकारी वस्तुएं हों और न ही एकाधिपत्य हो तथा, द्वितीय, धन के माध्यम के द्वारा एक वस्तु द्वारा जो दूसरी वस्तु बदली जा रही है, वह स्पष्टत: अपनी सामाजिक दृष्टि से न्यायसंगत वस्तुओं के लिए मान्य हो । किन्तु व्यावहारिक अनुभव से स्पष्ट होता है कि धन व पैसा ऐसी प्रभुत्वकारी वस्तु है जिस पर उन्हीं व्यक्तियों का प्रभुत्व होता है जो कि सौदेबाजी तथा व्यापार की विशेष दक्षता रखते हैं । इसी कारण क्योंकि वॉल्जर का मानना है कि सामाजिक अर्थ अर्थात् न्याय–संगतता कभी व्यक्तिपरक नहीं होती है । ऐसी दशा में आम व्यक्ति द्वारा धन के वितरण की मांग की जाती है । अर्थात् 'साधारण समानता ' स्थापित करने की मांग उठती है और किसी भी तरह इस स्थिति की स्थापना की खोज प्रारंभ होती है ।

(ii) योग्यता : स्वतंत्र विनिमय की भांति योग्यता की मान्यता भी एक तरफ खुली –लक्ष्य युक्त होती है तो दूसरी तरफ वह अपने स्वरूप में बहुलवादी भी दिखाई देती हे । वॉल्जर का मानना है कि प्यार, प्रभाव, पद, कलात्मक कार्य आदि सभी का योग्यता के आधार पर ही वितरण होना चाहिए । कोई भी यह अनुमान लगा सकता है कि एक तटस्थ एजेंसी अगर पुरस्कार या दण्ड को वितरित करती है तो निश्चित रूप से व्यक्ति की योग्यता के सभी रूपों के प्रति वह सजग होती है । ऐसी स्थिति में कोई प्रभुत्वकारी वस्तु नहीं होगी । कोई भी वस्तु को उसके सामाजिक अर्थ को देखे बिना बांट नहीं सकता । किसी व्यक्ति को यह देखे बिना कि वह क्या है, अवधारणात्मक रूप से यह कहना बहुत मुश्किल है कि वह अमुक व्यक्ति उस चीज के लिए योग्य है । व्यक्तियों के सभी प्रकार के वर्ग अपने अनुपात में पुरस्कार प्राप्त करेंगे । फिर यह कहना आसान नहीं है कि व्यवहार में यह कैसे कार्य करेगी । विशिष्ट वस्तुओं और विशिष्ट व्यक्तियों की गहन निकट सम्बन्धता की आवश्यकता होती है । 'योग्यता आवश्यकता की जरूरत नही रखती है तथा यह समान रूप से चीजों को अपने पास भी नहीं रखती है । 'वॉल्जर उदाहरण देकर स्थिति को स्पष्ट करता है । जैसे, केवल कलात्मक दृष्टि से पूर्ण रूप से

विकसित व्यक्ति जो कि तस्वीर रखने के योग्य है, को ही वास्तव में तस्वीरें रखनी चाहिए। राज्य सभी वस्तुओं को खरीद कर बेचने की पहल कर सकता है तथा कलात्मक रूप से विकसित स्त्री –पुरुषों को वह उन्हें बांट सकता है । अच्छी तस्वीरों को और अधिक महत्त्व दिया जा सकता है । राज्य ऐसा उन वस्तुओं के लिए भी कर सकता है जिनकी व्यक्तियों को आवश्यकता है । किन्तु व्यक्ति जिस चीज के लिए योग्य है वहां वह ऐसा नहीं कर सकता है ।

(iii) आवश्यकता : अन्तिम कसौटी आवश्यकता है । 'प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुरूप ' को सामान्यत: मार्क्स की इस प्रसिद्ध उक्ति कि 'हमें समुदाय की सम्पत्ति को इस रूप में बांटना चाहिए ताकि इसके सभी सदस्यों की आवश्यकताएं पूरी हो सकें को अर्धसत्य के रूप में लिया जाता है । वॉल्जर का मानना है कि यह उपयुक्त प्रावधान है किन्तु अपूर्ण है । वास्तव में, इस उक्ति का पहला आधा भाग – समुदाय की सम्पत्ति का वितरण–वितरणात्मक प्रावधान वाला है. किन्तु यह आगे के आधे भाग के नियम के अनुरूप नहीं है क्योंकि प्रश्न उठता है कि आवश्यकता का आधार क्या हो? क्या आवश्यकता का आधार भौतिक चाह या इच्छा है? क्या आवश्यकता का आधार अन्य कोई गैर भौतिक अर्थ में लिया जाए? जबकि, 'प्रत्येक को उसकी क्षमता के अनुसार ' के प्रावधान का मानना है कि नौकरियों का वितरण व्यक्ति की योग्यता के आधार पर किया जाना चाहिए । नौकरियां सीमित हैं तथा योग्य उम्मीदवार बहुतायत में हों और उन योग्य उम्मीदवारों को नौकरियों की आवश्यकता हो तो कौन से उम्मीदवार उन नौकरियों के ज्यादा योग्य हैं? अगर यहां पर उनकी भौतिक आवश्यकताओं को लिया जाए तो उनमें बहुत से ऐसे होंगे जिनको काम की कतई आवश्यकता नहीं है । किन्तु अगर उसे गैर भौतिक अर्थ में लिया जाए तो उन्हें काम की जरूरत है । अत: हमें व्यक्तिगत आधार पर देखने के बजाय सामुदायिक आधार पर देखना चाहिए । वॉल्जर का मानना है कि आवश्यकता का कोई एक आधार नहीं हो सकता है । साथ ही वॉल्जर का यह भी मानना रहा है कि कुछ ऐसी चीजें होती हैं जिनके वितरण में मार्क्स की युक्ति सहायता नहीं करती । जैसे, राजनीतिक शक्ति, सम्मान, प्रसिद्धि, दुर्लभ पुस्तकें, सुन्दर वस्तुएं आदि । इन चीजों के बारे में यह नहीं कह सकते है कि प्रत्येक व्यक्ति को इन चीजों की आवश्यकता होती है । वॉल्जर का मानना है कि हम ' आवश्यकता ' की कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं कर सकते हैं । बहुत सारी ऐसी चीजें हैं जिनकी समान रूप से चाह होते हुए भी उन्हें समान रूप से नहीं बांटा जा सकता क्योंकि कुछ चीजें बहुत सीमित हैं तथा कुछ चीजो को हम उस समय तक अपने आधिपत्य में नहीं रख सकते । जब तक कि अन्य लोग इस आधिपत्य के लिए तैयार न हों । आवश्यकता के स्वरूप के बारे में वॉल्जर ने लिखा है ' आवश्यकता एक विशिष्ट क्षेत्र का उद्भव करती है जिसके अंतर्गत यह स्वयं एक उपयुक्त वितरणात्मक सिद्धान्त है । एक गरीब समाज में सामाजिक सम्पत्ति का एक उद्य भाग ऐसे क्षेत्र के अंतर्गत आएगा । ' किन्तु वॉल्जर का मानना है कि वस्तुओं की विभिन्नता के कारण आवश्यकताओं के साथ वितरण के अन्य सिद्धान्त भी कार्य करते हैं । स्पष्ट है कि एक क्षेत्र में आवश्यकता के आधार पर वितरण का सिद्धान्त उपयुक्त है तो दूसरे में नहीं । स्वयं वॉल्जर ने सुरक्षा तथा लोक कल्याण के क्षेत्र में आवश्यकतानुसार वितरण सिद्धान्त को उपयुक्त माना है । अत: हम कह सकते है कि वॉल्जर

वस्तुओं को ऐसे व्यक्तियों को तो बांटना चाहता है जिनको उसकी आवश्यकता है किन्तु वह इन्हें इस तरह बांटना चाहता है कि उससे उसका सामाजिक स्वरूपण (सदस्यता) बना रहे । अर्थात् आवश्यकता को सामुदायिकता के संदर्भ में तय किया जाना चाहिए । अत: हमें 'प्रत्येक को उसकी क्षमता के अनुसार ' के प्रावधान की अपेक्षा 'प्रत्येक को उसकी – सामाजिक स्वीकृत आवश्यकताओं के अनुरूप मिलना चाहिए के प्रावधान को अपनाना चाहिए ।

4.3 वितरण की विभित्र प्रक्रियाएं

वितरण की विभिन्न प्रक्रियाओं के बारे में पीछे काफी विवेचन कर चुके हैं, अत: यहां अलग से व्याख्या की जरूरत नहीं है । किन्तु इस संदर्भ में हम कह सकते हैं कि वॉल्जर ने नवकाण्टवादी विचारकों, विशेषकर जॉन रॉल्स की वितरणात्मक न्याय की मान्यता को अस्वीकार करते हुए कहा कि इन विचारकों की वितरणात्मक न्याय की मान्यता एक ही वितरणात्मक प्रारूप को लेकर चलती है । उन्हीं के शब्दों में, 'दार्शनिक मूल वस्तुओं की एक सीमित सूची पर जोर देते हैं और जल्दी ही एकमात्र वस्तु तथा एक वितरण कसौटी की तरफ आकर्षित हो जाते हैं.. तथा दार्शनिक स्वयं कम–से–कम प्रतीकात्मक रूप सै तो एकल निर्णय की मान्यता को लिए हुए हैं ।' जबकि वॉल्जर ने दूसरी तरफ बहुल वितरण व्यवस्था पर जोर दिया है जो इतिहास, समय तथा स्थान के अनुसार परिवर्तित होती रहती है ।

5. समानता तथा वितरणात्मक न्याय

वॉल्जर का वितरणात्मक सिद्धान्त न केवल अपने स्वरूप में बहुलवादी है वरन् वह समतावादी भी है । वॉल्जर ने समानता को परिभाषित करते हुए लिखा है, 'समानता व्यक्तियों का जटिल सम्बन्ध है । वस्तुएं व्यक्तियों में मध्यस्थता का काम करती है जिसमें कि व्यक्ति अपनी हिस्सेदारी प्राप्त करते हैं तथा जिन्हें वे आपस में बांटते हैं वह स्वामित्व की परिचायक स्थिति नहीं है । अत: इसमें वितरण कसौटी की बहुलता की जरूरत होती है जो कि वस्तुओं की विभिन्नता को प्रकट करती है । उल्लेखनीय है कि वॉल्जर ने 'साधारण समानता' की अपेक्षा 'जटिल समानता ' पर जोर दिया है । साधारण समानता तथा जटिल समानता का अर्थ स्पष्ट करने से पहले यह वांछनीय होगा कि हम एकाधिकार (Monopoly) तथा प्रभुत्व (Dominance) शब्दों के अर्थ को समझ लें क्योंकि साधारण समानता तथा जटिल समानता का अन्तर इन्हीं दो शब्दों के अन्तर पर टिका हुआ है । व्यक्तियों द्वारा किसी वस्तु का नियंत्रण होता है, तो वहां एकाधिकार होता है जबकि प्रभुत्व की स्थिति वहां होती है जहां किसी पर एकाधिकार के कारण व्यक्ति दूसरी वस्तुओं को भी नियंत्रित करता हो । अत: कह सकते हैं कि प्रभुत्व वस्तुओं की आपसी सम्बन्धता पर निर्भर करता है जहां एक वस्तु का एकाधिकार अन्य वस्तुओं पर नियंत्रण का भी कारक बनता है । उदाहरण के लिए, पैसे को हम प्रभुत्व की श्रेणी में ले सकते हैं क्योंकि कोई व्यक्ति पैसे पर एकाधिकार रखता है तो अन्य वस्तुओं को भी नियंत्रित कर सकता है ।

अब हम साधारण समानता तथा जटिल समानता के अर्थों पर आते हैं । साधारण समानता से तात्पर्य उस आदर्शवादी स्थिति की कल्पना से है जिसमें व्यक्ति बिना किसी पूर्वाग्रह

के जीवन के हर क्षेत्र में समान समझा जाए । किन्तु वॉल्जर का मानना है कि समानता को हम इस अर्थ में स्पष्ट नहीं कर सकते हैं क्योंकि इसका अर्थ परिस्थिति, इतिहास, समय, राजनीतिक व्यवस्था आदि के अनुसार बदलता रहता है । एक स्वेच्छाचारी या वर्गतंत्र राज्य में समानता के अन्तर्गत एक ऐसे समाज की कल्पना की जाती है जहां शक्ति को बांटा जाए तथा प्रत्येक व्यक्ति की उसमें समान हिस्सेदारी हो, किन्तु प्रारंभिक स्थिति में भी समानता की यह मान्यता बनी रह सकती है । कोई अध्यक्ष निर्वाचित हो जाएगा या कोई अपने प्रभावशाली भाषण से हम सभी को इस बात के लिए राजी कर लेगा कि हम उसका नेतृत्व स्वीकार करें । अत: हम फिर असमान स्थिति में आ जाऐंगे । एक पूंजीवादी राज्य में ऐसे समाज की कल्पना की जाती है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के पास समान धन हो किन्तु हम सभी जानते हैं कि समान रूप से वितरित किया गया धन भी कुछ समय बाद फिर असमान स्थिति में में हो जाएगा । कुछ व्यक्ति इसको बचा कर रखेंगे, कुछ इसे खर्च कर देंगे तथा कुछ इसका अन्य चीजों में विनियोग कर देंगे । अगर हम एक सामन्तवादी राज्य में रहते हैं तो वहां हम एक ऐसे समाज की कल्पना करते हैं जहां सभी व्यक्तियों को समान रूप से सम्मान तथा आदर मिले । किन्तु ऐसा हम प्रत्येक व्यक्ति को बहुत कम समय के लिए ही दे सकते हैं । विभिन्न व्यक्तियों को हम उनकी क्षमता, दक्षता, बुद्धि, साहस, दया, उत्साह तथा सद्भावना की भिन्नता के आधार पर भिन्न रूप से आदर तथा सम्मान देंगे । यह भिन्नता ही एक व्यक्ति की दूसरे व्यक्ति से भिन्नता पैदा कर देगी ।

वॉल्जर का मानना है कि अधिकांश वितरणात्मक न्याय की समतावादी दार्शनिक अवधारणाएं प्रभुत्वकारी वस्तुओं के पुन: वितरण पर जोर देती हैं ताकि पहले से ज्यादा व्यक्तियों की उसमें हिस्सेदारी हो सके । इस तरह ये मान्यताएं वस्तुओं के एकाधिपत्य को तो चुनौती देती हैं किन्तु उनकी प्रभुत्वकारी प्रकृति को नहीं । वॉल्जर का मानना है कि साधारण समानता की यह स्थिति बहुत ही अस्थिर होगी तथा जल्दी ही पूर्ववर्ती स्थिति उत्पन्न कर देगी। एक नया वर्ग उभरेगा जिसके पास फिर एकाधिकार होगा । वॉल्जर का मानना है कि साधारण समानता को हम उस समय तक नहीं बनाए रख सकते हैं जब तक कि राज्य अपने निरंतर हस्तक्षेप द्वारा नए एकाधिकारों तथा प्रभुत्व के नए रूपों को न रोके । तथ्यत: ऐसी स्थिति में राज्य का प्रभुत्वकारी रूप उभरेगा । फलत: वह वस्तुओं पर एकाधिकार करेगा । इसके लिए कुछ संवैधानिक प्रावधानों एवं प्रतिबंधों की आवश्यकता होती है । इस संदर्भ में वॉल्जर का मानना है कि अगर राज्य को एकाधिकार करने से रोकने हेतु उसकी शक्ति को व्यापक रूप से विभाजित कर दिया गया तो वह नए पैदा होने वाले एकाधिकार को रोकने में बहुत कमजोर सिद्ध होगा । इस तरह अगर राज्य के हस्तक्षेप को कम कर दिया जाता है तो निजी विशेषाधिकार तो बने रहते हैं किन्तु एकाधिकार की प्रवृत्ति उत्पन्न होकर फिर असमानता पैदा कर देती है । अत: स्पष्ट है कि साधारण समानता की स्थिति में एक विरोधाभास उभर कर आता है । जैसा कि वॉल्जर ने लिखा है, 'साधारण समानता की विडंबना यह है कि निजी विशेषाधिकार का केवल उपचार राज्यवाद है और राज्यवाद से बचने का एकमात्र तरीका निजी विशेषाधिकार है ।'

वॉल्जर का आग्रह रहा है कि हमें एकाधिकार के अन्त के द्वारा साधारण समानता प्राप्ति के प्रयास की अपेक्षा प्रभुत्व के अन्त के द्वारा जटिल समानता को स्थापित करने का

प्रयास करना चाहिए । जटिल समानता की स्थिति में कुल किसी एक क्षेत्र में एकाधिकार की स्थिति हो सकतीं है', किन्तु यह एक क्षेत्र के एकाधिकार की स्थिति अन्य सामाजिक वस्तुओं को नियंत्रण में नहीं कर सकेगी । अत: यह कह सकते हैं कि जटिल समानता के अंतर्गत वॉल्जर प्रभुत्व को खत्म करना चाहते हैं न कि एकाधिकार को ।

6. प्रभुत्व की स्थिति : अन्याय का उद्भव

वॉल्जर के अनुसार अन्याय का उस समय उद्भव होता है जब एक क्षेत्र दूसरे क्षेत्र में हस्तक्षेप करने लगता है । उदाहरण के लिए, जिनके पास धन है, वे आर्थिक प्रभुत्व के द्वारा अपने प्रभाव को बाजार में भी लागू कर दें ताकि अवसर तथा विशेषाधिकार मिल सकें, सम्मान क्रय कर सकें या राजनीतिक पद खरीद सकें । न्याय सामान्यत: इस बात की कोई निश्चितता प्रदान नहीं करता है : कि विशिष्ट वस्तुओं का वितरण केवल उन्हीं व्यक्तियों को किया जाएगा जो कि उन्हें प्राप्त करने की उपयुक्त कसौटी रखते हैं ।

वॉल्जर ने जिस रूप में न्याय को लिया है, वह पास्कल के अत्याचार–तंत्र की परिभाषा से पूर्णत: भिन्न है । जैसा कि पास्कल ने लिखा है: ' अत्याचार–तंत्र की प्रकृति सम्यूर्ण विश्व पर तथा अपने स्वयं के क्षेत्र के बाहर शक्ति–प्राप्ति की इच्छा होती है ।'

इस पर टिप्पणी करते हुए वॉल्जर कहता है कि 'विनम्र तथा सहायता देने वाले. व्यक्तियों – राजनीतिज्ञों –की राजनीतिक शक्ति पर पकड़ होना गलत नहीं है, किन्तु राजनीतिक शक्ति का प्रयोग अन्य वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए करना एक अत्याचारपूर्ण प्रयोग है ।'

वॉल्जर का मानना है कि इस संदर्भ सें अन्य वस्तुओं की अपेक्षा पैसा सब से ज्यादा समस्या उत्पन्न करता है, क्योंकि वह अत्याचारपूर्ण (Tyrant) रूप लिए होता है । दूसरे शब्दों में, पैसा अपने क्षेत्र का उल्लंघन करके दूसरे क्षेत्र—में– भी प्रभुत्व कायम करने लगता है । उदाहरण के लिए, पैसे वाले व्यक्ति अन्य सभी क्षेत्रों में अपना प्रभुत्व कायम कर लेते हैं ।

वॉल्जर का मानना है कि एक सामाजिक वस्तु का वितरण अन्य वस्तुओं के वितरण को प्रभावित करता है । अत: हमें सामाजिक वस्तुओं के वितरण की ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि कोई भी वस्तु प्रभुत्व का साधन न बन सके । प्रभुत्व की इस स्थिति का समाधान करने के लिए वॉल्जर ने 'न्याय के क्षेत्रों में सापेक्ष स्वायत्तता' पर जोर दिया है । वॉल्जर का मानना है कि एक क्षेत्र में एक प्रकार की वितरण व्यवस्था ही उपयुक्त होगी जो दूसरे क्षेत्र में उपयुक्त नहीं हो सकती । अत: हमें विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न वितरण व्यवस्थाओं की खोज पर जोर देना चाहिए । हर क्षेत्र के लिए अलग वितरण व्यवस्था की स्वीकृति को ही वॉल्जर ने सामाजिक वस्तुओं की सापेक्ष स्वायत्तता की संज्ञा दी है जिसमें एक प्रकार की वितरण व्यवस्था दूसरी वस्तुओं की वितरण व्यवस्था को प्रभावित नहीं करेगी । दूसरे शब्दों में, प्रभुत्व की स्थिति प्रकट नहीं होगी । सापेक्ष स्वायत्तता के अंतर्गत समानता कैसे स्थापित हो पाती है, इसका उदाहरण वह

शैक्षणिक तथा बाजार क्षेत्रों की स्वायत्तता के संदर्भ में देता है । शैक्षणिक क्षेत्र की पृथकता विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता की रक्षा करती है जहां धनिक तथा अभिजात्य वर्ग के बच्चे अपने विशेषाधिकार की स्थिति का प्रयोग नहीं कर सकते हैं। बाजार की स्वायत्तता के फलस्वरूप व्यक्ति बिना किसी प्रजाति, देशी या विदेशी आदि के भेदभाव के अपने अवसर तलाश कर सकता है । वॉल्जर का मानना, है कि परिणाम जरूर असमान होगे किन्तु ये परिणाम जातीय पदसोपनीयता को कभी पैदा नहीं कर सकेंगे ।

7. नवकाण्टवादियों के प्रति दृष्टिकोण

नवकाण्टवादीयों उदारवाद की आलोचनात्मक व्याख्या करते हुए वॉल्जर ने इसमें कई कमियों की ओर दृष्टिपात किया है । उदारवाद मुख्यतः दो मान्यताओं – व्यक्तिवाद तथा प्राकृतिक अधिकारों की अवधारणा– को लेकर चलता है । इन्हीं दो मान्यताओं के आधार पर वह व्यक्ति की स्वतंत्र गतिविधियों के प्रति समर्थन व्यक्त करता है । उदारवादी न केवल चिन्तन क्षेत्र वरन् बाजार गतिविधियों में भी पूर्णत : स्वतंत्रता चाहते हैं । व्यक्ति को पूर्णत : मुक्त छोड़ दिए जाने का वे समर्थन करते हैं । चूंकि राज्य व्यक्ति की गतिविधियों में हस्तक्षेप करता है अतः उदारवादियों ने उसकी इस नीति का विरोध किया तथा अहस्तक्षेपवादी नीति पर समर्थन व्यक्त किया । उदारवादी एक स्वतंत्र बाजार की स्थापना करना चाहते हैं किन्तु उनका मानना है कि स्वतंत्र बाजार के लिए एक सकारात्मक संरचना का होना जरूरी है । स्वतंत्र विनिमय की व्यवस्था अपने आप नहीं बनी रह सकती है । इसके लिए संस्थाओं, नियमों तथा कुछ प्रावधानों की जरूरत पड़ती है । दूसरे शब्दों में, स्वतंत्र विनिमय व्यवस्था सफलतापूर्वक चलती रहे, इसके लिए व्यक्ति संस्थाओं को जन्म देता है । उदारवादियों ने माना कि समाज केवलमात्र व्यक्तियों का एक एकत्रीकरण है तथा विभिन्न प्रकार की संस्थाएं–चर्च, स्कूल; बाजार, परिवार आदि– व्यक्तियों के सहमतिपूर्ण समझौते का ही परिणाम है । अत : व्यक्ति जब चाहे अपनी सहमति को वापिस ले सकते हैं । दूसरे शब्दों में, कह सकते हैं कि उदारवादी इन संस्थाओं को कृत्रिम संस्थाओं की श्रेणी में लेते है जिन्हें अपनी आवश्यकतानुरूप वे प्रकट कर सकते हैं तथा खत्म भी कर सकते हैं । व्यक्ति की यह स्वतंत्रता ही उसके अधिकारों का रक्षण करती है । उदाहरण के लिए धार्मिक स्वतंत्रता उसको यह अधिकार प्रदान करती है कि वह अपनी इच्छानुसार धर्म, देवता तथा ईश्वर की पूजा करे, न कि उसका सम्बन्ध विशिष्ट धर्म के संस्थात्मक स्वरूप से है। शैक्षणिक स्वतंत्रता का तात्पर्य सामाजिक आवश्यकता के रूप में विश्वविद्याल की स्थापना, उसकी स्वायत्तता से कतई नहीं वरन् केवल व्यक्ति के पढ़ने–लिखने, बोलने, सुनने का अधिकार है ।

वॉल्जर ने उदारवाद के इस स्वरूप को पूर्णत : अस्वीकार कर दिया है । वॉल्जर की उदारवाद के इस स्वरूप के विरुद्ध सबसे प्रमुख आपत्ति यह है कि इसने व्यक्ति को उसके सामाजिक पक्ष से अलग कर दिया । दूसरे शब्दों में व्यक्ति का समुदाय से सम्बन्ध कट गया तथा प्रत्येक व्यक्ति अन्य दूसरे से पृथक हो गया । उदारवादियों की इस प्रवृत्ति पर टिप्पणी करते हुए वॉल्जर ने लिखा है, वे न तो सामाजिक एकता की समृद्ध तथा यथार्थवादी समझ ही प्रदान कर पाए और न ऐसे जीवन–अधिकारों को कोई अर्थ प्रदान कर पाए जिन्हें व्यक्ति जी

सके तथा जिसका वह उपयोग कर सके । उदारवादी जिस लक्ष्य – पृथकता पैदा करने की कला–को लेकर चलते हैं वास्तव में वह असंभव है ।' वॉल्जर ने उदारवादियों की इस मान्यता को भी अस्वीकार कर दिया कि विभिन्न प्रकार की संस्थाएं कृत्रिम हैं तथा इनका अस्तित्व व्यक्तियों की सहमति पर निर्भर करता है । 'व्यक्ति संस्थाओं तथा उसके संबंधों से पूर्णत : बाहर रहता है तथा इनमें वह तभी प्रवेश करता है जब वह चाहता है । इस तरह के व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं रहता है, और न ही वह इस सामाजिक विश्व में अस्तित्व स्थापित कर सकता है । व्यक्ति इस विश्व में रहता है न कि उसको उद्भव करता है । वॉल्जर का मानना है कि चर्च, स्कूल, बाजार तथा परिवार सामाजिक संस्थाएं हैं तथा उनका अपना विशिष्ट इतिहास होता हे । इन संस्थाओं ने विभिन्न समाजों में विभिन्न स्वरूप ग्रहण कर लिए हैं । यह स्वरूप संबंधित व्यक्तियों की आस्था, समझ तथा सामाजिक दायित्वों द्वारा तय होता है । वॉल्जर का मानना है कि ये संस्थाएं किसी भी रूप में व्यक्तियों के समझौते का परिणाम नहीं है, अत: इन सब पर सर्वमान्य कानून, नियम रीति– रिवाज लागू नहीं होते । इन संस्थाओं का दायरा तथा नियम उस विशिष्ट समाज की प्रकृति पर निर्भर करता है ।

साथ ही वॉल्जर ने नवकाण्टवादियों ने प्राकृतिक अधिकारों की मान्यता को भी अस्वीकार कर दिया? वॉल्जर का मानना है कि प्राकृतिक अधिकार 'प्राकृतिक वस्तुओं की सहभागी समझ' के संदर्भ में हमारी ज्यादा सहायता नहीं करते हैं । साथ ही उसने इस बात पर जोर देकर कहा है कि यह आवश्यक नहीं है कि प्राकृतिक अधिकारों की अवधारणा सामाजिक वस्तुओं के बहु लवादी सिद्धान्त के अंतर्गत प्रभुत्व के विरुद्ध नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करे । वॉल्जर का मानना है कि व्यक्तियों को प्रभुत्व से केवल क्षेत्रों की पृथकता और उनकी सापेक्ष स्वायत्तता के द्वारा ही सुरक्षा प्रदान की जा सकती है न कि प्राकृतिक अधिकारों की अवधारणा के द्वारा । वॉल्जर ने प्राकृतिक अधिकारों के सर्वव्यापकीय स्वरूप को भी चुनौती दी है । उसके अनुसार अधिकार अपने स्वरूप में स्थानीय तथा विशिष्ट होते हैं ।

8. मूल्यांकन एवं निष्कर्ष

इस तरह स्पष्ट है कि वॉल्जर ने आधुनिक सिद्धान्तों, में अभिव्यक्त होने वाली व्यक्तिवादी मान्यता को अस्वीकार कर दिया तथा उन्होंने सामुदायिक जीवन पर जोर दिया । वॉल्जर के अनुसार 'मानव समुदाय एक वितरणात्मक समुदाय है ।' व्यक्ति एक दूसरे से चीजों में अपनी हिस्सेदारी प्राप्त करने, उन्हें बांटने तथा उनका विनिमय करने के लिए मिलते हैं । दूसरे शब्दों में, कह सकते हैं कि 'व्यक्ति अन्य व्यक्तियों से चीजें बांटता है ।' यहां बांटने का अर्थ चीजों को देना, वितरण करना, विनिमय करना आदि है । सामुदायिक जीवन के बारे में वॉल्जर की दो बातें उल्लेखनीय है: प्रथम, सामुदायिक जीवन में व्यक्ति की भूमिका अपभोक्ता या उत्पादक की नहीं वरन् उसे वस्तुओं के प्राप्त करने वाले रूप में लिया गया है । अत : व्यक्ति स्वत : वितरणात्मक सिद्धान्तों के घेरे के अन्दर उग जाता है । 'हमारी अपनी प्रकृति क्या है? हमारे अधिकार क्या हैं । हमारी आवश्यकता क्या है? हम क्या चाहते हैं? किस चीज के लिए योग्य हैं? आदि प्रश्नों के उत्तर वितरणात्मक सिद्धान्तों में परिवर्तित हो जाते हैं जो

वस्तुओं की गतिविधियों को नियंत्रित करते हैं ।' इस संदर्भ में वॉल्जर उदाहरण देते हुए कहते हैं कि अर्थव्यवस्था में मेरा स्थान, राजनीतिक व्यवस्था में मेरी स्थिति साथियों में मेरी प्रतिष्ठा, मेरी भौतिक संपदा आदि सभी चीजें मेरे को अन्य व्यक्तियों से मिलाती हैं । अत : मेरे पास जो भी सही या गलत, न्यायसंगत दे उसे वितरणात्मक सीमाओं तथा सहभागी व्यक्तियों की संख्या पर ही देखा जाना चाहिए । द्वितीय जिन वस्तुओं का वितरण किया जाना है वे सामाजिक वस्तुएँ होती हैं । इसी कारण उस विशिष्ट वस्तु की वितरण व्यवस्था की न्याय–संगतता की कसौटी सामाजिक स्वीकृति पर भी निर्भर करती है । यह सामाजिक स्वीकृति हमारी सहभागी समझ पर निर्भर करती है ।

9. अभ्याय प्रश्न

1. सामुदायिक चिन्तन के वैचारिक आधार क्या हैं? चर्चा कीजिए (250 शब्द)
2. 'वॉल्जर की न्याय–अवधारणा' विषय पर एक लेख लिखिए । (500 शब्द)
3. समानता तथा वितरणात्मक न्याय किस प्रकार परस्पर संलग्न हैं? व्याख्या किजिए (500 शब्द)
4. प्रभुत्व अन्याय कैसे प्रकट करता है? स्पष्ट कीजिए । (250 शब्द)
5. वॉल्जर का नवकाण्टवादियों के प्रति क्या दृष्टिकोण है? समीक्षा कीजिए । (250 शब्द)

10. संदर्भ ग्रन्थ सूची

माइकल वॉल्जर	: स्फिअर्स ऑफ जस्टिस (1983)
- - - - - - - -	**:** वेल्फेअर मेम्बरशिप एण्ड नीड' माइकल सॅण्डल (स), लिबरलिडम एण्ड लिमिट्स ऑफ जस्टिस (1982) में प्रकाशित लेख
- - - - - - - -	: 'लिबरलिज्म एण्ड दि आर्ट ऑफ सेपरेशन,' पोलिटिकल थ्योरी (1984)
लीलाराम गुर्जर	: बीसवीं सदी के राजनीतिक विचारक (1997)

इकाई 7 : समुदाय की अवधारणा– I : चार्ल्स टेलर

इकाई संरचना

1. उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. आधुनिक स्व की प्रकृति
4. आधुनिक पहचान के आयाम सामाजिक अभिधारणा का आधार: हीगल
6. निष्कर्ष एवं मूल्यांकन
7. अभ्यास –प्रश्न
8. संदर्भ ग्रन्थ

1. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढकर आप यह समझ सकेंगे कि–

1. सामुदायिक राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में चार्ल्स टेलर का क्या महत्त्वपूर्ण स्थान है?
2. सामुदायिक चिन्तन के क्या वैचारिक आधार हैं तथा वे चार्ल्स टेलर के चिन्तन में किस प्रकार फलीभूत होते हैं ?
3. टेलर अधिकारों तथा मानवीय संवेदनशीलता को कैसे समायोजित करता है?
4. टेलर के चिन्तन में व्यक्ति—समाज सम्बन्धों का क्या स्वरूप परिलक्षित होता है?
5. आधनिक पहचान के संघटक तत्त्व क्या है? उनकी क्रियाशीलता
6. के क्या आयाम हैं ?
7. टेलर की अवधारणाओं पर हींगल के चिंतन क्या प्रभाव दिखाई देता है? तथाराजनीतिक दर्शन तथा सिद्वान्त को चार्ल्स टेलर की महत्त्वपूर्ण देन हैं?

2. प्रस्तावना

सामुदायिक राजनीतिक विचारकों में चार्ल्स टेलर एक प्रमुख विचारक है । वह व्यक्ति की एक आधुनिक नयी पहचान बनाना चाहता है, जो कि सामाजिक अभिप्रेरणा एवं नैतिकता से युक्त हो । यद्‌यपि उसका मानना है कि यह पहचान भूतकाल विशेषकर ग्रीककाल (प्लेटो एवं अरस्तु) एवं मध्यकाल (आगस्टाइन) की रचनाओं में उपलब्ध थी, किन्तु कालांतर में चलकर के यह पहचान विकृत हो गई । इस विकृति के लिए सबसे ज्यादा उत्तरदायी पुन: जागरण रहा है। चार्ल्स टेलर का मानना है कि पुन: जागरण के फलस्परूप अर्थात् इसके प्रभाव के कारण उभरी तीन प्रवृत्तियों, विशेषकर प्राकृतिकवाद, व्यक्तिवाद एवं उपयोगितावाद के कारण यह पहचान अपना मूल स्वरूप खो बैठी । इन सभी प्रवृत्तियों ने आधुनिक स्व की मान्यता को जन्म दिया और जो एक आधुनिक स्व की मान्यता उभर करके आयी, वह अपनी सामाजिक प्रेरणाओं से मुक्त थी । उसको बिना किसी सामाजिक परिधियों के एक मुक्त स्व के रूप में स्वीकार किया गया । चार्ल्स टेलर ने इस आधुनिक स्व के प्रति बहुत ही आलोचनात्मक रुख अपनाया है । वह आधुनिक स्व की अपेक्षा सामाजिक अभिधारणा की मान्यता को लेकर चलता है । वह इस

आधुनिक प्रभावी स्व की मान्यता के विरुद्ध एक आशा की किरण 'रोमान्टिसिज्म' (Romanticism) के विचारकों के लेखन में पाता है । यहां व्यक्ति एक बार फिर अपनी सामाजिक मान्यता से जुड़ जाता है । किन्तु चार्ल्स टेलर का मानना है कि 'रोमान्टिसिज्म' की प्रवृत्ति में कई ऐसी कमियां रहीं, जिनके कारण वह एक आदर्श आधार नहीं हो सकती है । चार्ल्स टेलर ने अपनी सामाजिक मान्यता की अभिधारणा को प्रस्तुत करने में हीगल को उसके एक आधार के रूप में स्वीकार किया । उसका मानना है कि हीगल एक तरफ व्यक्तिगत स्व एवं समाज की पारस्परिक सम्बन्धता को स्थापित करता है तो दूसरी तरफ वह विभिन्न द्वैधताओं की मान्यताओं, जो कि पुन: जागरण के चिंतन की देन है को अस्वीकार करते हुए सामंजस्ययुक्त चिंतन को लेकर चलता है और इसी के आधार पर चार्ल्स टेलर व्यक्ति की खोई हुई पहचान को दोबारा स्थापित करने का प्रयास करता है । अपनी इस आधुनिक पहचान की विवेचना में चार्ल्स टेलर आधुनिक समसामयिक प्रभावी प्रवृत्तियों, विशेषकर नवकाण्टवाद (जॉन रॉल्स) एवं इच्छास्वतंत्रवादी (रोबर्ट नोजिक) की प्रवृत्तियों से दूर चला जाता है, क्योंकि इन दोनों प्रवृत्तियों में व्यक्ति प्रभावी रहा है । जबकि चार्ल्स टेलर अपने आप को सामुदायिक विचारकों, विशेषकर मेकण्टायर के नजदीक पाता है । जहां व्यक्ति का अपना निजी व्यक्तित्व तो है, किन्तु यह अस्तित्व सामाजिक परिधियों में ही तय होता है ।

3. आधुनिक स्व की प्रकृति

चार्ल्स टेलर ने आधुनिक स्व के प्रति आलोचनात्मक रूख अपनाया है । वह इसकी परमाणुवादी (Atomism) मान्यता, साधनात्मक विवेकशीलता (Instrumental Reasoning) तथा नैतिक आधारों से इसके अलगाव के कारण आलोचना करता है । यहां हम आधुनिक स्व की प्रकृति के इन तीनों पक्षों का विवेचन करते हुए इस पर प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे ।

प्रथम, परमाणुवादी स्व की मान्यता : परमाणुवादी शब्द का प्रयोग सत्रहवीं शताब्दी एवं उसके बाद के सामाजिक समझौता सिद्धान्तों को परिभाषित करने के लिए किया जाता है । यहां यह माना जाता है कि समाज उद्देश्यों की पूर्ति करने वाले व्यक्तियों से बना हुआ है । तदोपरांत इसकी अभिव्यक्ति उपयोगितावादी मान्यता में होती है जहां व्यक्ति एवं उसके हितों को समाज से प्राथमिक माना जाता है तथा समाज के प्रति एकसाधनात्मक मत अपनाया जाता है । जैसा कि जुदिथ एन. शक्लर ने लिखा है कि 'टेलर के मत में उपयोगितावाद एक छलयुक्त एवं असत्य परियोजना है, जो यह मानती है कि परोपकारिता एवं स्व–हित ही सामाजिक सौहार्दता पैदा कर सकते हैं । सामाजिक पर्यावरण को इस तरह व्यवस्थित किया जाता है कि वह उन सभी इच्छाओं की पूर्ति करता है, जिन्हें कि हम वास्तव में खोज सकते हैं तथा प्राप्त कर सकते हैं । वास्तव में ऐसा कोई युक्तिसंगत विवेचन प्रस्तुत नहीं करता है कि प्रत्येक व्यक्ति क्यों इन प्रशंसनीय लक्ष्यों को प्राप्त करना चाहता है । यह अच्छा हो कि चिकित्सा एवं दण्ड नति को अधिक मानवीय बनाया जाए । किन्तु इससे विरक्त एवं उदासीन स्व, जो कि मानव प्राणी की अपेक्षा मशीनी गणक से ज्यादा सदृश है, की क्षतिपूर्ति करना कठिन है । चार्ल्स टेलर ने व्यवस्थाविहीन स्व की किसी भी मान्यता को अस्वीकार कर दिया है । व्यवस्थाविहीन स्व की कल्पना करना निरर्थक है । उन्हीं के शब्दों में, किसी भी व्यवस्था की अनुपस्थिति वाले स्व का

मत ब्रह्माण्डीय व्यवस्था की अज्ञानता एवं असम्बद्धता पूर्णत : अर्थहीन है एवं यह कल्पना अस्पष्टता तथा भ्रम से उद्भव मत है ।'

चार्ल्स टेलर के अनुसार आधुनिक स्व परमाणुवाद की मान्यता व्यक्ति के अधिकारों की प्राथमिकता तथा अकेले व्यक्ति की आत्मनिर्भरता पर आधारित होती है । चूंकि अकेले व्यक्ति की आत्मनिर्भरता की मान्यता पर आगे विवेचन करेंगे । अत : हम यहां पर व्यक्ति के अधिकारों की प्राथमिकता का ही विवेचन करेंगे, अधिकारों की प्राथमिकता की प्रारंभिक अभिव्यक्ति जॉन लॉक के चिंतन में तथा समसामयिक युग में इसकी अभिव्यक्ति रोबर्ट नोजिक के लेखन में होती है । रोबर्ट नोजिक व्यक्ति के अधिकारों की मौलिकता की स्थापना के उपरांत ही उन दशाओं का विवेचन करता है, जिसमें राज्य के आज्ञापालन की न्यायोचित मांग की जा सके । अधिकारों की प्राथमिकता के सिद्धांत का आधुनिक राजनीतिक चेतना पर व्यापक प्रभाव रहा है । परमाणुवाद मानव प्रकृति और मानव दशाओं के बारे में जिस मत को अभिव्यक्त करता है, वह अधिकार की प्राथमिकता के सिद्धांत को संभव बनाता है ।' आज समसामयिक राजनीतिक विश्लेषणकर्ताओं को अधिकारों की प्राथमिकता वाले सिद्धांतों, विशेषकर रोबर्ट नोजिक के तर्कों को उत्तर देने में कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है । नोजिक का आग्रह रहा है कि व्यक्ति के अधिकार अउल्लंघनीय हैं तथा राजनीतिक आज्ञाकारिता इन्हीं के संदर्भ में तय होनी चाहिए । दूसरे शब्दों में राजनीतिक आज्ञाकारिता हमारे समाज की सामान्य मान्यता के बाहर ही तय होती है । आधुनिक स्व के परमाणुवादी सिद्धांतकारों का मानना रहा है कि यह धारणा असंगत है कि मानव क्षमताओं के लिए किन्हीं दशाओं की आवश्यकता है । जब व्यक्तियों को यह देखे बिना कि उनमें इन हेतु क्षमताएं उपलब्ध हैं या नहीं, सभी को अधिकार प्रदान करते हैं तो क्या दशाओं की बात करना सार्थक है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए चार्ल्स टेलर ने लिखा है कि अधिकारों की स्वीकृति मानव क्षमताओं की एक आवश्यक पृष्ठभूमि के रूप में सामने आती है । इसी का परिणाम है कि अधिकारों की स्वीकृति मानव प्राणियों के लिए होती है, न कि पशु, वृक्षों, चट्टानों एवं पर्वतों के लिए । नोजिक जैसे कुछ विचारक पशुओं के लिए भी अधिकारों की स्वीकृति के समर्थक हैं, किन्तु चार्ल्स टेलर का कहना है कि हमें इस प्रश्न पर गंभीरता से विचार करना चाहिए कि अधिकारों की स्वीकृति किन के लिए हो । क्या पशुओं को अधिकार दिए जा सकते हैं? अधिकार उन्हीं को मिलने चाहिएं, जो संवेदनशील प्राणी हों । संवेदनशीलता का तात्पर्य 'जीवन एवं अन्यों की विभिन्न क्षमताओं के आनंद लेने की सक्षमता से लिया जाता है ।... इस अर्थ में संवेदनशीलता स्व अनुभूति की स्व चेतना के रूप में ली जाती है ।' चार्ल्स टेलर का मानना रहा है कि हम व्यक्तियों को अधिकार इसलिए प्रदान करते हैं कि उनमें कुछ मानव क्षमताओं की अभिव्यक्ति होती है, जिनका सम्मान किया जाना चाहिए । अगर पागलों एवं बुरे व्यक्तियों को भी अधिकार प्रदान करने हैं तो इसका यह तात्पर्य नहीं है कि ये क्षमताएं निरर्थक हैं, वरन् इनमें इन क्षमताओं के उपयुक्त विकास को पीछे मोड़ दिया गया है । चार्ल्स टेलर के अनुसार इसका तात्पर्य यह हुआ कि मावन प्राणी को अपनी क्षमताओं की संभावना के द्वारा जाना जाता है और इन्हें खत्म नहीं किया जा सकता है । अगर कोई व्यक्ति पागल है एवं उनमें कुछ मानवीय क्षमताओं का संचरण होता है चाहे इन

मानवीय क्षमताओं का स्वरूप अस्पष्ट ही क्यों न हो कि उसमें जो मानव प्राणी होने की भावना एवं इच्छा होती है उसे कभी खत्म नहीं किया जा सकता है । अत: चार्ल्स टेलर का मानना रहा है कि कुछ क्षमताओं की स्वीकृति के महत्त्व के परिपेक्ष्य के बाहर अधिकारों की स्वीकृति कैसे की जा सकती है । यद्यपि कुछ अतिउदारवादी धारणा के मानने वालों का आग्रह रहा है कि कुछ पूर्ण मानवीय मत हैं, जिनमें व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार जीवन प्रारूप तय करने की स्वतंत्रता को प्रमुखता प्रदान की जाती है । इस धारणा के मानने वाले यह स्वीकार नहीं करते हैं कि अधिकारों की स्वीकृति किन्हीं क्षमताओं के बोध को प्रकट करती है । साथ ही यह भय प्रकट किया जाता है कि किन्हीं दायित्वों की स्वीकृति स्वतंत्रता की परिसीमा का बहाना बन जायेगी ।

द्वितीय, साधनात्मक विवेकशीलता: जैसा की ऊपर विवेचन कर चुके हैं कि आधुनिक स्व के प्रतिपादकों ने समाज के प्रति एक साधनात्मक विवेकशीलता का मत अपनाया है । इनका मानना है कि अकेला व्यक्ति आत्मनिर्भर है एवं समाज एक गौण संस्था है । यह व्यक्तियों के हितों की पूर्ति का साधन मात्र है । यहां यह स्वीकार किया जाता है कि व्यक्ति समाज से बाहर आत्मनिर्भर है तथा उसे नैतिक शक्तियों के संचालन में किसी सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश की आवश्यकता नहीं पड़ती है । जहां तक व्यक्ति की अकेले की आत्मनिर्भरता का प्रश्न है, चार्ल्स टेलर का मानना है कि परमाणुवाद के क्लासिकल सिद्धान्त–सामाजिक समझौता–में भी यह ठीक नहीं जाना पड़ता है । सामाजिक समझौता सिद्धान्त के विचारकों ने प्राकृतिक अवस्था में भी व्यक्ति की आत्मनिर्भरता को उचित नहीं माना है । न केवल हॉब्स ने ही प्राकृतिक अवस्था के व्यक्ति के जीवन को क्षोभकारी, जंगली एवं अल्पकालिक माना है वरन् सभी सामाजिक समझौतावादी सिद्धान्तविदों ने व्यक्तियों के समाज में प्रवेश करने से काफी लाभों का विवेचन किया है । लॉक की प्राकृतिक अवस्था में तो यह बिल्कुल ही नहीं कहा जा सकता है कि व्यक्ति अकेले में आत्मनिर्भर है वरन् इस अवस्था को तो वे विनिमय की अवस्था तथा व्यापक एवं विकसित सामाजिक सम्बन्धों युक्त अवस्था मानते हैं जिसमें केवल राजनीतिक सत्ता का अभाव पाया जाता है । साथ ही चार्ल्स टेलर का मानना रहा है कि मानव अपनी क्षमताओं का विकास केवल समाज में रह करके ही कर सकता है । उन्हीं के शब्दों में, 'व्यक्ति समाज में रह करके ही अपनी मानव क्षमताओं को विकसित कर सकता है । व्यक्ति को अपनी विवेकशीलता के विकास... अपने पूर्ण अर्थ में नैतिक एजेन्ट बनने हेतु या पूर्ण उदारदायी स्वायत्त प्राणी बनने के लिए समाज में रहना आवश्यक शर्त है... समाज से बाहर रह कर हम विशिष्ट मानव क्षमताओं का विकास नहीं कर सकते हैं ।' चार्ल्स टेलर ने अकेले व्यक्ति की मान्यता को अस्वीकार करते हुए सामाजिक अभिधारणा पर जोर दिया, क्योंकि उनका मानना है कि व्यक्ति अपनी क्षमताओं का विकास एक निश्चित सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश के साथ एक समाज में ही कर सकता है । हम समाज में रहते हुए अन्यों के साथ सम्बन्धों एवं अन्त: क्रियाओं के द्वारा ही अपनी क्षमताओं का विकास कर सकते हैं । दूसरे शब्दों में, चार्ल्स टेलर स्व की मान्यता को अस्वीकार करके एक सामाजिक परिप्रेक्ष्य युक्त व्यवस्था के उद्भव पर जोर देता है ।

तृतीय, स्व का नैतिक आधारों से अलगाव : आधुनिक स्व को नैतिक आधारों, दायित्वों एवं अच्छाई–बुराई की मान्यता से दूर कर दिया गया है । स्व नैतिक दायित्वों से मुक्त है, उसकी निती पसन्दगी ही अन्तिम एवं उन्नतिकारक पसन्दगी है । जब हम यह कहते हैं कि हमारे जीवन के प्रारूप को तय करने को स्वतंत्रता का अधिकार है तो उसके साथ ही यह माना जाना चाहिए कि हमारे जीवन का कोई भी रूप स्वतंत्रता के सिद्धान्त के अनुरूप होना चाहिए । इस संदर्भ में किसी भी इच्छा को नैतिक अच्छाई–बुराई के आधार पर तय नहीं किया जा सकता है । इसका तात्पर्य यह हु आ है कि व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार अपनी सम्पत्ति के उपयोग का अधिकार भी होगा । सम्पत्ति के भण्डारण एवं उसको अन्य कार्यों में खर्च न करने को गलत नहीं ठहराया जा सकता है । यह तभी हो सकता है जबकि हम नैतिक मापदण्डों को स्वीकार करें, जबकि इसमें इनको स्वीकार नहीं किया जाता है । अत: अच्छे एवं बुरे का प्रश्न ही नहीं उठता है । किन्तु चार्ल्स टेलर ने इस मान्यता को अस्वीकार कर दिया है । उनका मानना है कि नैतिक दायित्वों से मुक्त करके हम किसी पूर्ण अच्छाई की स्थापना नहीं कर सकते हैं । हम केवल उन्हीं पसन्दगियों को मानव क्षमता के रूप में स्वीकार करते हैं, जो कि उन्नतिकारक पसन्दगी हो । इस आधार पर चार्ल्स टेलर ने यह निष्कर्ष निकाला है कि 'अधिकारों की प्राथमिकता का सिद्धान्त, जिस रूप में मानव प्रकृति एवं मानव दशाओं से स्वतन्त्र नहीं है, जिस रूप में अभिव्यक्त किया गया है, उस रूप में मानव आत्मनिर्भर नहीं है। व्यक्ति समाज से बाहर या समाज के विशेष रूपों से बाहर अपनी विशिष्ट मानवीय क्षमताओं का विकास नहीं कर सकता है ।' जब हम कुष्ठ विशिष्ट क्षमताओं को महत्त्व दिये बिना प्राकृतिक अधिकारों को स्वीकार नही कर सकते हैं, तथा ये क्षमताएं केवल समाज या समाज के एक विशेष रूप के अन्तर्गत ही विकसित होती हैं तो यह अपने आप में स्पष्ट है कि हम समाज से सम्बद्ध होते हैं । इस प्रकार चार्ल्स टेलर एक सामाजिक अभिधारणा को लेकर चलते हैं, जिसमें अधिकारों की प्राथमिकता की स्वीकृति असंभव होती है । चार्ल्स टेलर का मानना है कि सामाजिक अभिधारणा में अधिकार एवं दायित्व एक दूसरे से जुड़े होते हैं तथा दायित्वों के अभाव में अधिकारों की स्वीकृति क्षमताओं की स्वीकृति है तथा सामाजिक अभिधारणा इन क्षमताओं से सम्बन्धित सच्ची रचाभाविकता है । यह हमें इससे जुड़े दायित्वों के प्रति उन्मुख कर देती है । ये (दायित्व) उतने ही मौलिक हैं, जितने अधिकारों का दावा, क्योंकि यह उससे अपृथकनीय है । दायित्वों की अस्वीकृति करके अधिकारों के दावे का प्रयास एक असंगतता भी होगी ।'

चार्ल्स टेलर का मानना रहा है कि यह असंगतता उस समय और भी ज्यादा उभर कर सामने आती है जब सामाजिक अभिधारणा के आवरण के साथ अधिकारों की प्राथमिकता का दावा किया जाता है । व्यक्ति, राजनीति संस्कृति जो कि राजनीतिक सहभागिता की संस्थाओं एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता की गारन्टी द्वारा ही कायम रह पाती है, के बाहर नैतिक स्वायत्तता की पूर्णता अर्थात् स्वतंत्र नैतिक धारणाओं को तय करने की क्षमता का विकास नहीं कर सकते हैं । जब हम किसी व्यक्ति के अपने स्वयं की स्वतंत्र नैतिक धारणाओं का दावा करते हैं तो हमें अधिकारों की प्राथमिकता के दावे की स्वीकृति को समाज से संबद्ध होना हमारा दायित्व

कतई ही नहीं है, के साथ सामाजिक अभिधारणा को लेकर नहीं चल सकते हैं । आज हम समाज की कीमत पर अधिकारों की प्राथमिकता का दावा नहीं कर सकते हैं, क्योंकि अगर दोनों स्थितियों में संघर्ष होता है तो दोनों तरफ ही धकेला जाएगा । अधीनस्थ समाज में अधिकारों का दावा असंभव है तो दूसरी तरफ जहां अधिकारों के दावे को उचित ठहराया जाता है, वहां हमारी अधीनस्थता को उचित नहीं ठहराया जा सकता है, के दावे को उचित ठहराया जाता है, वहां हमारी अधीनस्थता को उचित नहीं । दूसरे शब्दों में, जिन आधारों पर एक को उचित ठहराया जाता है, उन पर दूसरे की आलोचना की जाती है और जिन पर दूसरे को उचित ठहराया जाता है । पहले की निन्दा की जाती है । चार्ल्स टेलर का मानना है कि अधिकारों के दावे का तात्पर्य समाज को खत्म करना है । उन्हीं के शब्दों में, 'अधिकारों के दावे की असंगतता उस समय और भी स्पष्ट हो जाती है, जबकि एक संघर्ष की स्थिति में यह माना जाता है कि समाज को खत्म कर दिया गया है, तो इस क्षमता को जानने की हमारी अपनी भविष्यकालीन योग्यता को अनदेखा किया जाता है । जहाँ मेरे अधिकार का समर्थन किया जाता है तो वहां में अपने आप की इसलिए आलोचना कर रहा हूं क्योंकि मैं जीवन में संक्षिप्त प्रारूप को स्वीकार कर रहा हूं।

अत : चार्ल्स टेलर का मानना रहा है कि व्यक्ति को समाज में रहना चाहिए । व्यक्ति को मानवीय गुणों के विकास के लिए समाज की जरूरत पड़ती है । दूसरे शब्दों में, मानवीय गुणों की अभिव्यक्ति के लिए समाज का होना जरूरी है । यहां चार्ल्स टेलर प्रश्न करता है कि वे कौन से दायित्व हैं, जिनको व्यक्ति को पूरा करना चाहिए । यहां वे तीन प्रकार के दायित्वों की विवेचना करते हैं । एक दायित्व वह है जो अपने माता–पिता के प्रति निभाते हैं । टेलर के अनुसार ये कृतज्ञता का दायित्व है । बच्चों के प्रति दायित्व भी इसी तरह का दायित्व है । उन्हें वे सब चीजें देनी चाहिए, जो हम दे सकते हैं तथा बाकी के लिए शादी, मित्रता, संघ आदि द्वारा जुड़े व्यक्तियों से उधार लेकर व्यवस्था करनी चाहिए । द्वितीय प्रकार के दायित्व गैर स्वैच्छिक संघों जैसे शादी एवं मित्रता से जुड़े होते हैं । इनके प्रति दायित्व निर्वाह करना व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर करता है । यह व्यक्ति का कोई प्राकृतिक दायित्व नहीं है कि इनका निर्वाह करे ही । टेलर के अनुसार तीसरे प्रकार के दायित्व कुछ विशिष्ट प्रकार के व्यक्तियों से सम्बन्धित होते हैं, किन्तु यह जरूरी नहीं है कि ये व्यक्ति के सतत् संघों से जुड़े हों ।

जहां तक राजनीतिक सत्ता एवं राजनीतिक नियमों के पालन करने का प्रश्न है, चार्ल्स टेलर का मानना है कि ये हमारी जीवित सभ्यता का एक अंश होने के कारण, इनको अनदेखा नहीं किया जा सकता है । यद्यपि अराजकतावादी एवं इच्छास्वतंत्रवादी (Libertarians) राजनीतिक सत्ता के अनुकरण को आवश्यक नहीं मानते हैं । अराजकतावादियों की भांति इच्छास्वतंत्रवादियों का भी मानना रहा है कि सभ्यता के विकास के लिए स्वतंत्र व्यक्ति का होना जरूरी है । साथ ही उनका यह भी मानना रहा है कि इस व्यवस्था को बनाए रखने के लिए अत्यल्प राज्य (Minimal State) की स्थापना हो और उसकी आज्ञाओं का हम पालन करें । चार्ल्स टेलर के अनुसार सरकार के दमनकारी रूप के सम्मुख सभ्यता का बना रहना संभव नहीं जान पड़ता है, क्योंकि हम जिस सभ्यता की बात करते हैं वह स्वतंत्र व्यवस्था की एक

आवश्यक दशा होती है जब यह मान लिया जाता है कि एक स्वतंत्र व्यक्ति ही एक विशिष्ट समाज में अपनी निजी पहचान बनाए रख सकता है, तो उसे उस सम्पूर्ण समाज के पूर्ण स्वरूप के बारे में भी सोचना चाहिए । चार्ल्स टेलर ने नोजिक के इच्छास्वतंत्रवादी अराजकतावाद प्रारूप को अस्वीकार करते हुए कहा है कि व्यक्ति केवलमात्र अपनी निजी इच्छाओं से संचालित नहीं हो सकता है । व्यक्ति को इस तथ्य को भी ध्यान में रखना चाहिए कि कुछ गतिविधियां एवं संस्थाएं केवल समाज में ही समृद्ध हो सकती हैं । साथ ही स्वतंत्रता एवं व्यक्तिगत विभित्रता भी केवल उसी समाज में ही संभव हो पाती है, जहां इनके महत्व को स्वीकार किया जाता है । अत: चार्ल्स टेलर का मानना रहा है कि समाज स्वतंत्रता के लिए अनुकूल व्यवस्था है । अत: हमें स्वंतत्रता प्रदान करनी चाहिए । ऐसी स्थिति में राजनीतिक संस्थाओ को स्वीकृति प्रदान करनी चाहिए । ऐसी स्थिति में राजनीतिक संस्थाओं को स्वीकृति प्रदान करना स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में अपनी नीजि पहचान की अभिव्यक्ति है । उन्हीं के शब्दों में, 'अगर यह अनुभव करते हैं कि हमारी स्वतंत्रता जिस समाज एवं संस्कृति में हम रहते हैं, आंशिक रूप से उस पर निर्भर रहती है । ऐसी स्थिति में अगर इस समाज या संस्कृति के स्वरूपण के निर्धारण में योगदान करते हैं तो हम पूर्ण स्वतंत्रता का उपयोग कर सकते हैं और यह केवल हम सामान्य निर्णय के साधनों के द्वारा ही कर सकते हैं । इसका अर्थ जिन राजनीतिक संस्थाओं में हम रहते हैं, वे अपने आप में.. स्वतंत्रता व्यक्तियों के रूप में अपनी पहचान के बोध के लिए आवश्यक है ।'

इस तरह स्पष्ट है कि चार्ल्स टेलर ने आधुनिक स्व की परमाणुवादी मान्यता को अस्वीकार करके सामाजिक अभिधारणा के आग्रह पर जोर दिया है । स्वायत्तता की पहचान तथा आत्मनिर्धारकता के लिए व्यक्ति को एक सामाजिक संरचना की आवश्यकता होती है । दूसरे शबदों में अकेले व्यक्ति की समाज से बाहर कल्पना नहीं कर सकते हैं । यह धारणा परमाणुवादी व्यक्तिवाद की मान्यता में नहीं वरन् सामाजिक अभिधारणा की मान्यता से संभव बन सकती है । चार्ल्स टेलर की सामाजिक अभिधारणा की मान्यता दो धारणाओं पर आधारित है । प्रथम, स्व की अभिव्यक्ति के लिए विकसित स्वतंत्रता का होना आवश्यक है । व्यापक स्वतंत्रता के प्रावधानों के अंतर्गत ही स्व ही स्वायत्तता एवं उसका आत्म–निर्देशन संभव बन पाता है । द्वितीय, स्व की अभिव्यक्ति एवं स्वायत्तता का यह तात्पर्य नहीं है कि हम अपने आप अकेले में रह सकते हैं । हमारी पहचान आंशिक रूप से अन्य व्यक्तियों के संपर्क तथा समाज के द्वारा स्वीकृत सामान्य समझ द्वारा तय होती है । चार्ल्स टेलर के अनुसार स्वायत्तता की पहचान एवं स्व–निर्देशित व्यक्ति को सामाजिक संरचना की जरूरत होती है । आगे हम आधुनिक पहचान के विभिन्न पक्षों का विवेचन करने का प्रयास करेंगे ।

4. आधुनिक पहचान के आयाम

चार्ल्स टेलर का मानना है कि आधुनिक पहचान के तीन पक्ष हैं । ये निम्न हैं:

प्रथम, आभ्यन्तरता (Inwardness)

द्वितीय, सामान्य जीवन दवा स्वीकरण (An affirmation of ordinary life),

तृतीय, प्रकृति की अभिव्यक्तिवादी धारणा (An Expressivist notion of nature)

चार्ल्स टेलर के अनुसार पहचान के ये तीनों पक्ष ही मानव जीवन को स्वरूपण प्रदान करते हैं । जीवन के प्रति एक समग्र समन्वय की नैतिक धारणा को स्वीकृति प्रदान की जाती है। आत्मा एवं शरीर, व्यक्ति एवं समाज, विवेक एवं भावना आदि की द्वैधता को नहीं वरन्, सामंजस्यता को महत्ता प्रदान की जाती है । समग्रता में द्वैधता को नहीं वरन् सामंजस्यता एवं पूर्णता को स्थान मिलता है । स्थूल शरीर का अन्त: करण अभ्यन्तरता से सम्बन्ध जुड़ जाता है । सामान्य जीवन को स्वीकृति प्रदान की जाती है । मानव जीवन में स्वतंत्रता को महत्त्व दिया जाता है, किन्तु यह स्वतंत्रता पुन: जागरण की मान्यता वाली स्वतंत्रता नहीं वरन् उसे अधिकृत स्व अभिव्यक्ति के रूप में देखा जाता है । यहां स्वतंत्रता आत्मानुभूति का रूप ले लेती है । साथ ही प्रकृति के साथ एक निकट सम्बन्धता पर जोर दिया जाता है । पहचान की यह समग्र व्यवस्था एक नैतिक व्यवस्था है । 'यहां सम्बन्धित स्व न तो ज्ञाता होता है और न ही उत्पादक एजेन्ट ही ।' चार्ल्स टेलर ने नैतिकतायुक्त आधुनिक पहचान के आयामों की वंशावली पर प्रकाश डाला है । अत: यहां यह वांछनीय होगा कि हम उस पर संक्षिप्त प्रकाश डालें । साथ ही यह भी देखने का प्रयास करेंगे कि किस तरह से मूल विचार विकृत हुआ, उसके पीछे कौन से प्रेरक कारक थे एवं कौन से ऐसे विचार रहे हैं जो उनके स्वरूप को ठीक कर सकते हैं ।

मानव–जीवन की पहचान की विरासत प्लेटों के चिन्तन में रही है । प्लेटो मानव–आत्मा की व्यवस्था को प्राणी व्यवस्था की विवेकीय दृष्टि से अपृथकनीय मानता है । अरस्तु के अनुसार इस व्यवस्था का चिन्तन ही मानव की सर्वोच्च गतिविधि है । यह मूल मान्यता नवप्लेटोवादी दृष्टि में उपस्थित है जो कि आगस्टाइन के माध्यम से मध्यकालीन चिन्तन का आधार बन जाती है । स्वयं चार्ल्स टेलर ने इस वंशावली का मुखिया सेट आगस्टाइन को माना है । अत: आगस्टाइन के प्रति उसकी व्याख्या को समझना महत्त्वपूर्ण है । चार्ल्स टेलर ने आगस्टाइन को एक नवप्लेटोवादी के रूप में प्रस्तुत किया है, जो कि विवेकीय ब्रह्माण्ड को ईसाइयत के रूप में प्रस्तुत करता है । आन्तरिक देवत्व के रूप में हमें ईश्वरीय प्यार के प्रति अग्रसर कर देता है तथा उसके सम्मुख हम अपने आप को हमारे सृजनकर्ता के रूप में समर्पित कर देते हैं । आन्तरिक ज्योति हमारे चारों तरफ के विश्व एवं हमारी अपनी दशाओं को प्रज्जवलित करती है । यह ऐसी ज्योति है, जिसे ईश्वर ने हमारे अन्दर प्रज्जवलित किया है । यह हमें उन अच्छाइयों से अवगत कराती है जिसे सामान्यत: हम अस्वीकार करते रहते हैं । यद्यपि कुछ लोगों का मानना रहा है कि आगस्टाइन पर विवेचन के समय चार्ल्स टेलर ने केवल आन्तरिक अच्छाइयों का ही विवेचन किया है तथा व्यक्ति में अन्तर्निहित उन प्रभावी बुराइयों का विवेचन करने में वे असफल रहे हैं जिसके कारण आगस्टाइन की पुस्तक 'दि सिटी ऑफ गॉड' काफी महत्त्वपूर्ण रही है । किन्तु यह कहना गलत है कि चार्ल्स टेलर को इसकी जानकारी नहीं थी या उनकी तरफ ध्यान नहीं दिया । इन प्रभावी बुराइयों के तत्त्वों को उसने 'हाइपर आगस्टाइनिज्म' की संज्ञा दी है तथा इन्हें वह आधुनिक यूरोप, विशेषकर जन्सेनिस्ट्स एवं केल्वेनियों की पुनरावर्तक विशेषता के रूप में देखता है । साथ ही चार्ल्स टेलर आगस्टाइन की बुराइयों की विवेचना को भी यूरोपीय स्व की संरचना में उसकी आभ्यन्तरता की खोज उतनी ही महत्तपूर्ण मानता है, किन्तु चार्ल्स टेलर आगस्टाइन से डेस्कार्टस तक के यूरोप के इतिहास

का केवल अच्छा पक्ष ही प्रस्तुत करता है । जैसा कि जुदिथ एन. शक्लर ने लिखा है कि 'टेलर यूरोपियन साहित्यिक संस्कृति के प्रत्येक काल की समीक्षा में गली के केवल उज्ज्वल पक्ष की ही विवेचना करता है । मोन्टैन अवमानना बिना, पोप मानवद्वेष.. रूसो उसकी अवमानना, रोमान्टिसिज्म हिसा बिना, डोस्टोयेबेस्की विषाद एवं रोष के बिना ओर अन्ततः आधुनिक लेखकों को प्रभु प्रकाश में लगे हुए देखता है ।' इस अच्छे पक्ष के प्रस्तुत करने का कारण यह रहा है कि चार्ल्स टेलर ने एक युग विशेष की मानव प्रकृति की समझ एवं जीवन के कुछ प्रधान विचारों पर आधारित मानता है जिन्हें वह 'हाइपर गुड्स' की संज्ञा देता है । यद्यपि कई नकारात्मक एवं बुरे तत्त्व भी उपस्थित रहते हैं, किन्तु जीवन संरचना एवं पहचान को तय करने में उनकी वह भूमिका न्यूनतम होती है ।

चार्ल्स टेलर के अनुसार डेस्कार्टसे के लेखन से एक युगान्तकारी परिवर्तन प्रारंभ होता है। डेस्कार्टस ने नैतिक संरचना को अस्वीकार कर दिया । उसने आन्तरिक स्व एवं विवेकीय विश्व के मध्य सम्बन्ध को खत्म कर दिया । आभ्यन्तरता की भौतिक विश्व से संघर्ष की स्थिति पैदा हो गयी । फलत : एक साधनात्मक विवेकशीलता का जन्म हुआ, जिसका उद्देश्य आन्तरिक विश्व पर नियंत्रण पाना था । चार्ल्स टेलर का मानना रहा है कि डेस्कार्टस से पहले यूरोपीय मान्यता में नैतिक धारणा को, थोड़ा–बहुत अन्तर के साथ, सामान्य स्वीकृति मिली हुई थी । किन्तु डेस्कार्टस ने इस धारणा की स्वीकृति को अमान्य कर दिया । चार्ल्स टेलर के अनुसार प्लेटोवाद आगस्टाइनकारी नैतिकता आधुनिक पहचान को स्वरूप देने में जारी थी, किन्तु जब यह प्रकट होने लगी तो इसको अस्वीकृत कर दिया गया । आधुनिक विचारों ने इसके प्रतिबन्धों से अपने आप को मुक्त कर लिया । हालांकि चार्ल्स टेलर का मानना रहा है कि कुछ उत्तर–कार्टेसियन विचारकों ने पराभौतिक दैववाद एवं धर्मपरायणता की बात की है । इसमें जॉन लॉक सबसे प्रमुख है । लॉक न केवल युवाओं को श्रम की गरिमा की ही शिक्षा देना चाहता था, वरन् साथ ही वह धर्मपरायणता का भी पाठ पढ़ाना चाहता था । किन्तु टेलर का मानना रहा है कि लॉक जैसे आधुनिक ईसाई विचारकों में भय के रूप में सामने आयी एक अविवेकीय धर्मपरायणता दिखाई देती है । लॉक विकृत एवं अशक्त स्व को बढ़ावा देता प्रतीत होता है, क्योंकि वह स्व को अन्य व्यक्तियों एवं विश्व से पृथक एवं अलग देखता है । यह स्व को समाज से अलग कर दिया जाता है तथा समाज को केवलमात्र विश्लेषण एवं प्रबन्ध के बिन्दु के रूप में देखा जाता है ।

पहचान का आभ्यन्तरता का आयाम प्लेटो से शुरू होता है, किन्तु उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति एवं परिणति आगस्टाइन के ईश्वर केन्द्रित आभ्यन्तरता में होती है । लॉक में यह सीमित रूप से सामने आता है किन्तु डेस्कार्टस में यह पूरी तरह समाप्त हो जाता है तथा स्वायत्त स्व की मान्यता का जन्म होता है । स्वयं से प्रश्न करने की मौन्टेने की धारणा में 'साधारण जीवन की अभिव्यक्ति' सामने आती है । यह पुनः जागरण में खत्म हो जाती है, यद्यपि दैववाद तथा शेफ्टस्बुरी एवं हुटचेसन में मनोभावात्मकता पर जोर जरूर दिया । साथ ही थोड़ा–बहुत नैतिक पक्ष भी सामने आया । किन्तु इसकी कोई प्रभावी भूमिका नहीं रही । प्रकृति का अभिव्यक्तकारी पक्ष खत्म हो गया । फलत : प्राकृतिक एव साधनात्मक पथ की ओर बढ़ते

चले गए । आधुनिकतावाद का जन्म हुआ एवं जीवन के नैतिक आयामों को छोड़ दिया गया । आधुनिकता के इस पक्ष के व्याख्याकारों में नित्शे, कीर्कगार्द डोस्टोईस्की, हीडगर एवं हेबरमास प्रमुख रहे हैं । इन सब का परिणाम यह हुआ है कि आधुनिक पहचान तो विकृत हुई ही, साथ ही स्व एवं समाज की पारस्परिक सम्बन्धता को भी खत्म कर दिया गया । चार्ल्स टेलर के शब्दों में 'मूल अन्तर को हम इस तरह देख सकते हैं कि आधुनिक व्यक्ति जहां स्वपरिभाषित हैं वहां पूर्व मत रहा है कि व्यक्ति को ब्रह्माणीय व्यवस्था (Cosmic Order) के साथ सम्बन्ध के रूप में परिभाषित किया जाता है ।' अठारहवीं सदी में यह विपत्ति कई सिद्धान्तों जैसे परमाणुवाद, मशीनीवाद, पदार्थवाद एवं उपयोगितावाद में अभिव्यक्त होने लगी । हेल्वेटियस, होलवॅच, हुम तथा बेंथम इन सिद्धांतों के प्रतिनिधि विचारक रहे हैं । यद्यपि ऐसा नहीं है कि इस–आधुनिक स्व को कोई भूतकालीन विरासत नहीं रही है । प्राचीनकाल में ऐपिक्यूरियन एवं स्पेटिक्स ऐसे रहे हैं, जिनमें हम इस स्व के तत्त्व देख सकते हैं तथा पुन: जागरण में कई विचारकों ने इनसे अपनी सम्बद्धता भी स्थापित करने का प्रयास किया है । किन्तु चार्ल्स टेलर का मानना रहा है कि आधुनिक स्व ने एक नयी विकृति को प्रस्तुत किया है। फलत: आज पहचान के इन तीनों रूपों का अर्थ बदल गया है । 'कहानी के नैतिक पक्ष का सुविचारित विचार किस तरह से भ्रष्ट हो गया है और यहां तक कि सभी अनुपातों एवं सीमाओं से दूर होकर वह किस तरह से स्वयं के विरुद्ध हो गया है... स्व निर्धारणता के रूप में स्वीकृति स्वतंत्रता का विचार आसानी से आत्म प्रशंसा एवं संकीर्णता में पतित हो जाता है तथा अराजकता को स्वीकृति प्रदान कर दी जाती है । साधारण जीवन की उच्चता तुच्छता की ओर अग्रसर कर देती है । स्व–अभिव्यक्ति की प्रशस्ति सभ्रान्ति में होती है, जैसा कि कई महान कलाकारों की स्थिति में हुआ है ।' इस तरह हम देखते हैं कि नैतिक परिधियोंयुक्त आधुनिक पहचान के आयाम विकृत हो गए एवं उनका अर्थ पूर्णत: बदल गया है ।

5. सामाजिक अभिधारणा का आधार: हीगल

चार्ल्स टेलर का मानना रहा है कि पुन: जागरण की प्रवृत्ति के प्रभाव के कारण मानव जीवन की अवधारणा या पहचान खत्म हो गयी हो ऐसा नहीं है । यह हरडर एवं रूसों के माध्यम से जीवित रही एवं आगे बढ़ी । साथ ही विवेकीय स्वायत्तता की काण्ट की धारणा भी व्यक्ति की एक आयामिय उपयोगितावादी मान्यता के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया के रूप में सामने आयी है । काण्ट का मानना है कि यह एक विडम्बना ही थी कि अच्छाई एवं बुराई के अन्तर को, सामान्य रूप से इच्छाओं को, एक व्यापक न्यूनतम संतुष्टि तक सीमित कर दिया गया । काण्ट का आग्रह नैतिक जीवन पर रहा है, किन्तु उनका नैतिक जीवन स्वतंत्रता के समकक्ष है। दूसरे शब्दों में, काण्ट नैतिक इच्छा द्वारा आत्म–निर्धारण पर जोर देता है, जिसे वह स्वायत्तता की संज्ञा देता है । काण्ट का मानना है कि स्वायत्तता एवं परतंत्रता में गुणात्मक अन्तर है, न किसी मात्रा का । काण्ट अपनी स्वतंत्रता की धारणा को अभिरुचि के विरुद्ध मानता है । किन्तु प्रश्न उठता है कि क्या व्यक्ति को अभिरुचि से मुक्त किया जा सकता है? चार्ल्स टेलर के अनुसार काण्ट स्वतंत्रता एवं अभिरुचि की सामंजस्यता का समाधान करने में असफल रहा है ।

रूसो, हरडर एवं काण्ट के नैतिक आग्रह के उपरान्त भी उत्तर–सत्रहवीं शताब्दी के चिन्तन पर पुन: जागरण का व्यापक प्रभाव रहा है । इसमें आधुनिक स्व की जो धारणा विकसित हुई वह सामाजिक एवं नैतिक आग्रह से पूर्णत : मुक्त थी ।

इसके विरुद्ध एक सशक्त प्रतिक्रिया 'रोमान्टिसिज्म' के चिन्तन में रही है । नैतिक आकांक्षा एवं सामाजिक अभिधारणयुक्त परम्परा को जीवित रखने का काम 'रोमान्टिसिज्म' द्वारा किया गया । दूसरे शब्दों में, सामाजिक प्रेरणाओं से शुष्क एक विवेकीय स्व के विरुद्ध रोमान्टिक प्रतिक्रिया को टेलर एक आशा के रूप में देखता है । चार्ल्स के अनुसार डेस्कार्टस द्वारा आधुनिक समझ में पैदा की गयी विकृतियां उसे प्राकृतिकता एवं साधनात्मक पथ की ओर अग्रसर करने के उपरान्त यह सबसे सकारात्मक योगदान है । यहाँ प्रकृति को सभी के अन्दर खोज । जाने लगा तथा यहाँ तक कि शालीनता के अभाव में भी स्व अभिव्यक्ति ने एक नयी अन्त: ज्योति का रूप ले लिया जो कि प्रकृति एवं सृजन की सम्पूर्ण व्यवस्था... के साथ रचनात्मक सृजन के कार्यों द्वारा हम सभी को जोड़ने लगी । जो अभिव्यक्तता स्वीकृति प्रदान करती है, वह प्रकृति का पुन: जीवन संचार, उसकी पुन: घबराहट तथा इस तरह नैतिक स्व के लिए अर्थपूर्ण परिप्रेक्ष्य की पुन: स्थापना है ।' रोमान्टिक विचारकों का आग्रह मानव जीवन की अभिव्यक्तता एवं स्वचलता (Autonomist) धाराओं को जोड़ने पर रहा है । दूसरे शब्दों में ये विचारक अभिव्यक्तता की धारणा को व्यक्तिगत स्वतंत्रता से जोड़ने का प्रयास करते हैं । किन्तु वे इस प्रयास में असफल रहे हैं । अर्थात् रोमान्टिक विचारक ब्रह्माण्डीय भावना एवं सूक्ष्मता के बीच समन्वय करने में असफल रहे हैं । चार्ल्स टेलर के शब्दों में, 'आधुनिक सभ्यता को सामूहिक संरचनाओं के बढ़ते विवेकीकरण एवं नौकरशाहीकरण तथा प्रकृति के खुले शोषण के साथ निजी जीवन एवं पूर्णता के रोमान्टिक मत के विस्तार के रूप में देखा जाने लगा । हम कह सकते हैं कि आधुनिक समाज अपने निजी एवं कल्पनाशील जीवन में रोमान्टिक है तथा लोकजीवन में वह उपयोगितावादी एवं साधनात्मक है ।' अत: चार्ल्स टेलर का मानना रहा है कि रोमान्टिक विचारक अभिव्यक्तता की धारणा को लेकर चलने के उपरान्त भी उनका आग्रह निजी जीवन पर ही रहा है, वे लोक जीवन एवं सामाजिक मुद्दों से विमुख रहे हैं । 'व्यक्तिगत जीवन के सम्बर्द्धन ने रोमान्टिसिज्म को चुन लिया है ।' ये विचारक आत्मपरकता एवं प्रकृति में सामंजस्य आत्मज्ञान एवं अनुमान द्वारा करना चाहते थे । विवेक को उन्होंने फूट हालने वाला, विच्छेद करने वाला एवं विश्लेषण करने वाले प्रभाग के रूप में माना है, जो कि हमें प्रकृति से सम्बन्ध स्थापित करने से दूर ले जाता है । चार्ल्स टेलर का मानना है कि अगर हम केवल अंत: ज्ञान के आधार पर ही व्यक्ति का प्रकृति से सम्बन्ध जोड़ने का प्रयास करेंगे तो 'हम जीवन की एक महत्त्वपूर्ण धारा को खो देंगे तथा यह स्वायत्तता एवं अभिव्यक्ति के मध्य समन्वय नहीं वरन् एक आत्मसमर्पण होगा, जिसमें स्वायत्तता को त्याग देते हैं ।'

अत: चार्ल्स टेलर ने अपने चिन्तन का आधार रोमान्टिसिज्म को नहीं वरन् हीगल को बनाया है । हालांकि चार्ल्स टेलर का मानना है कि हीगल की सत्ता मीमांसा (Ontology) की धारणा की स्वीकृति में कमी आयी है । किन्तु हीगल ने एक समग्रता एवं पूर्णता का मत अपनाया है जिसमें शरीर एवं आत्मा, इच्छा एवं प्रवृत्ति, आत्मा एवं प्रकृति की भिन्नता को

अस्वीकार कर दिया गया है । व्यक्ति का प्रकृति के साथ एक निकट सम्बन्ध होता है तथा इसमें अलगाव की भावना को स्थान नहीं मिल पाता है । हीगल का व्यक्ति समाज एवं प्रकृति दोनों से जुड़ा होता है । चार्ल्स टेलर के शब्दों में 'हीगल का लेखन व्यक्तिपरकता से एक मूर्तरूपता की दृष्टि, जीवनधारा से उद्भव होने वाले चिन्तन एवं स्वतंत्रता को तय करने का एक महत्त्वपूर्ण प्रभावी एवं दूरगामी प्रयास प्रदान करता है । इस दृष्टि एवं चिंतन की अभिव्यक्ति सामाजिक अस्तित्व के रूपों में होती है एवं यह अपनी खोज प्रकृति एवं इतिहास की संबद्धता में करती है ।' चार्ल्स टेलर का मानना है कि हीगल का चिन्तन राजनीतिक दर्शन की दो प्रतिस्पर्धी परम्परा–रोमान्टिक परम्परा एवं पुन: जागरण परम्परा के मध्य सामंजस्य स्थापित करता है । इन प्रतिस्पर्धी परम्पराओं में एक प्रकृति एवं समाज में संबद्धता की रोमान्टिक धारणा पर आधारित है तो दूसरी व्यक्तिगत स्वायत्ता के पुन: जागरण के विचार पर । इस तरह हीगल व्यक्ति एवं समाज दोनों में सामंजस्य स्थापित करता है । चार्ल्स टेलर द्वारा हीगल का जो विवेचन किया गया उसमें वह मुख्यत: तीन बिन्दुओं को लेकर चलता है । प्रथम, हीगल के दार्शनिक नाव शास्त्रीयता की विवेचना करना अर्थात् व्यक्ति के अभिव्यक्तवादी एवं स्वायत्ततावादी मतों पर मानव स्वतंत्रता की अनोखी अवधारणा को विकसित करना । द्वितीय, आधुनिक समाज में हीगल के विश्लेषण को प्रस्तुत करना । तृतीय, हीगल की मान्यता को मार्क्स के साथ तुलना करना एवं इसके समसामयिक महत्त्व को उजागर करना । चूंकि हीगल के बारे में, संक्षेप में चार्ल्स टेलर के विचारों को देख लेना वांछनीय होगा । चार्ल्स टेलर मार्क्सवादी दर्शन के दो गुणों का उल्लेख करता है । यह हैं: प्रथम, विश्लेषण का सिद्धान्त, द्वितीय, मुक्ति का सिद्धान्त । विश्लेषण के सिद्धान्त के रूप में मार्क्सवाद हमें इतिहास में उत्पादन के रूपों एवं सम्बन्धों का विवेचन प्रस्तुत करता है तो मुक्ति के सिद्धान्त द्वारा वह आधुनिक सभ्यता एवं आधुनिक व्यक्ति के उद्भव हेतु संघर्ष करने को प्रेरित करता है । किन्तु राजनीतिक सिद्धान्त के संदर्भ में मार्क्सवाद की कमियों का विवेचन करते हुए चार्ल्स टेलर ने कहा है कि मार्क्सवाद के विश्लेषण के सिद्धान्त के द्वारा रूस एवं चीन में क्रान्ति का होना तथा ब्रिटेन, फ्रांस एवं जर्मनी में क्रान्ति के न होने को स्पष्ट नहीं किया जा सकता है । साथ ही मार्क्सवाद के मुक्ति सिद्धान्त में मानव–मुक्ति का आग्रह किया गया है, किन्तु इसकी व्यावहारिक अभिव्यक्ति लेनिन एवं स्टालिन एवं तानाशाही में हुई । नौकरशाह सर्वाधिकारवाद का उद्भव हुआ । चार्ल्स टेलर के शब्दों में मार्क्सवाद में व्यक्ति एवं ब्रह्माण्ड का पारस्परिक सम्बद्धता का अभाव रहा है ।

हीगल के महत्त्व को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्त करने हेतु चार्ल्स टेलर ने उस पर दो विस्तृत किताबें लिखी हैं । इनमें चार्ल्स टेलर ने हीगल के विचारों की दार्शनिक व्याख्या तो प्रस्तुत की ही है, साथ ही आधुनिक व्यक्ति की स्वायत्तता एवं नागरिक समाज का विश्लेषण भी किया है । हीगल पर पाए जाने वाले लेखन में चार्ल्स टेलर की रचनाएं काफी महत्त्व रखती है । जैसा कि अलान रायन (न्यू स्टेट्समैन में) एवं अर्वेस्ट वोलनर (इनकाउंटर में) ने लिखा है कि अंग्रेजी पाठकों के सम्मुख उपलब्ध लेखन में यह हीगल की सम्पूर्ण व्यवस्था का बहुत ही व्यापक एवं सारगर्भित विवेचन है । बिना किसी कट्टरपन एवं पाण्डित्व के आज के

संदर्भ में हीगल के महत्त्व पर प्रकाश डाला है । हालांकि इस कारण चार्ल्स टेलर पर यह आरोप रहा है कि उसने साधारण एवं सामान्य तरीके से हीगल को प्रस्तुत किया है । किन्तु उन्होंने हीगल के लेखन को इस तरह से प्रस्तुत किया है कि वह बहुत ही मार्मिक बन गया है ।

6. निष्कर्ष एवं मूल्यांकन

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि चार्ल्स टेलर का प्रयास मानव विवेक, कार्य एवं एजेंसी के वैकल्पिक विवेचन को प्रस्तुत करना है एवं न्यायोचित ठहराना है । साधारण शब्दों में कह सकते हैं कि वह जॉन रॉल्स की नवकाण्टवादी मान्यता एवं रोबर्ट नोजिक की इच्छास्वतंत्रवादी धारणा के विकल्प के रूप में सामुदायिक धारणा को प्रस्तुत करता है । चार्ल्स टेलर का आग्रह एक सामाजिक अवधारणा का रहा है, जिसमें एक तरफ व्यक्ति की स्वायत्तता एवं स्वतंत्रता तथा दूसरी तरफ इसकी समाज में सम्बद्धता दोनों के ही सामंजस्ययुक्त आधार का प्रयास किया जाता है । उनके द्वारा प्रस्तुत की गई ब्रह्माण्डीय धारणा में द्वैधता नहीं वरन् सामंजस्यता को स्वीकृति प्रदान की जाती है । चार्ल्स टेलर की ब्रह्माण्डीय धारणा का व्यक्ति नैतिक प्रेरणाओं एवं सामाजिक संवेदनशीलता से युक्त होता है । व्यक्ति में एक स्व आलोचनात्मक समझ होती है, जो एक तरफ उसे साधारण जीवन जीने को प्रेरित करती है तो दूसरी तरफ सामाजिक संवेदना से मुक्त स्व की ओर अग्रसर होने से रोकती है । उन्होंने आधुनिक स्व अर्थात् उत्तर–सत्रहवीं सदी कालीन मानव–मत को अस्वीकार कर दिया । टेलर ने आधुनिक स्व की इस धारणा को, कि व्यक्ति स्वायत्त एवं स्वतंत्र है तथा उसकी अन्यों से किसी तरह की कोई सम्बद्धता नहीं है, को अस्वीकार करते हुए कहा है कि हमारी पहचान जिन मूल्यों को लिए हुए हैं, या जो इच्छाएं होती हैं, उससे संयोजिक या कारणात्मक रूप से जुड़ी हुई नहीं है, वरन् हम तो उन तरीकों से जुड़े हैं जिनमें हम अपने आप को समझ सकते हैं तथा हम अपने एवं दूसरे कार्यों के अर्थ की व्याख्या कर सकते हैं । हीडगर एवं गडामर की भांति चार्ल्स टेलर का मानना रहा है कि मानव विश्व एक अभिव्यक्तकारी है । दूसरे शब्दों में, यह मानव विश्व अभिव्यक्ति, कृत्य तथा क्रिया/व्यवहार का विश्व है, जिसके अर्थ की व्याख्या सहभागी व्यक्तियों द्वारा स्वयं की जानी चाहिए । मानव अन्य प्राणियों से भिन्न स्व व्याख्यित प्राणी (Self interpretating animal) है । किन्तु यह व्याख्या समाज द्वारा प्रयुक्त अवधारणाओं एवं मान्यताओं की भाषा द्वारा तय होती है । टेलर का मानना है कि आज आधुनिक व्यक्ति में नैतिक भाषा दायित्वों तथा कर्तव्यों से अलग एवं उनसे अपने को मुक्त मानने लगा । यह माना जाने लगा कि व्यक्ति अपनी क्षमताओं का विकास समाज से दूर रह कर ही कर सकता है । चार्ल्स टेलर ने आधुनिक स्व की प्रकृति को अस्वीकार कर दिया । उन्होंने स्व की स्वायत्तता एवं स्वतंत्रता पर तो जोर दिया किन्तु उसकी यह स्वायत्तता एवं स्वतंत्रता सामाजिक परिधि में ही हो सकती है ।

चार्ल्स टेलर समसामयिक काल का एक प्रभावशाली दार्शनिक रहा है जो अपने लेखन में मौलिक एवं प्रस्तुतिकरण में सहज एवं सरल है । चार्ल्स टेलर के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए जेरोम ब्रूनर ने लिखा है कि 'निश्चित रूप से इस शताब्दी के अन्तिम चतुर्दशक का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण लेखन रहा है, जिसमें चार्ल्स टेलर हमारी शताब्दी में दर्शन का एक सधा महान

संचालनकर्ता रहा है ।' किन्तु साथ ही चार्ल्स टेलर के लेखन में कुछ कमियां एवं सीमाएं भी रही हैं । चार्ल्स टेलर की प्रथम सीमा यह रही है कि उसने अपनी सम्पूर्ण लेखन की रचना यहूदी–ईसाई मान्यताओं के इर्द–गिर्द की है, जबकि वह एक सार्वभौमिक चिन्तन का दावा करता है । दूसरे शब्दों में, चार्ल्स टेलर का अपने लेखन की सार्वभौमिकता का दावा यहूदी–ईसाई मान्यताओं तक ही सीमित रहा है । अत : सामुदायिक चिन्तन में हर समाज की संस्कृति, इतिहास एवं उसके मूल्यों को महत्त्व दिए जाने का जो दावा किया जाता है, चार्ल्स टेलर के लेखन में उसका अभाव पाया जाता है । चार्ल्स टेलर ने गैर यहूदी एवं ईसाई समाज की मान्यताओं को तो अनदेखा किया ही, साथ ही वह यहूदी एवं ईसाई मान्यताओं तथा प्रोटेस्टेंट मान्यता के विभिन्न रूपों में अन्तर करने में भी असमर्थ रहा है । जुदिथ एन. शक्लर का मानना है कि टेलर का लेखन मुख्यत: कैथोलिक दर्शन का लेखन है ।

द्वितीय, चार्ल्स टेलर के लेखन में राष्ट्रवाद की अवधारणा का अभाव रहा है । राष्ट्रवाद की अवधारणा का अभाव चार्ल्स टेलर के लेखन में असातत्यता को प्रकट करता है, क्योंकि उनका सम्पूर्ण आग्रह एक सामुदायिक चिन्तन मान्यता की तरफ रहा, जहां राष्ट्रवाद का समर्थन एक महत्वपूर्ण विशेषता के रूप में सामने आता है । जबकि चार्ल्स टेलर में इसी मान्यता का अभाव रहा है । उनके चिन्तन का यह विरोधाभास एवं असातत्यता उस समय और भी उभर करके सामने आती है, जबकि एक तरफ वह रोमान्टिसिज्म एवं हीगल के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाता है, तो दूसरी तरफ वह राष्ट्रवाद को अनदेखा करता है । रोमान्टिसिज्म एवं हीगल दोनों में ही राष्ट्रवाद की अवधारणा को महत्त्वपूर्ण स्थान मिलता है, जबकि चार्ल्स टेलर के लेखन में ऐसा नहीं है ।

7. अभ्यास प्रश्न

1. 'व्यक्ति का अपना निजी व्यक्तित्व तो है, किन्तु यह अस्तित्व सामाजिक परिधियों में ही तय होता है' (चार्ल्स टेलर)

इस कथन को टेलरवादी न्यायसंगति प्रदान कीजिए ।

2. टेलर द्वारा प्रतिपादिक आधुनिक स्व की प्रकृति की समीक्षा कीजिए ।
3. टेलर आधुनिक पहचान के क्या आयाम प्रतिपादित करता है? उससे वह मानव जीवन के किन उज्ज्वल पक्षों को प्रस्तुत करता है? व्याख्या कीजिए ।
4. 'चार्ल्स टेलर की सामाजिक अभिधारणा' पर एक लेख लिखिए ।
5. एक विचारक के रूप में चार्ल्स टेलर का मूल्यांकन कीजिए ।

8. संदर्भ ग्रन्थ

चार्ल्स टेलर :**फिलॉसॉफिकल पेपर्स**, वॉ. 2, **फिलॉसफी एण्ड दि ह्यूमन साइंसेज** (केम्ब्रिज, 1985)

———— : **हीगल (केम्ब्रिज,** 1975)

———— : **सोर्सेज ऑफ दि सेल्फ : दि मेकिंग ऑफ दि मॉडर्न आइडेंटिटी** (1989)

लीलाराम गुर्जर : **बीसवीं सदी के राजनीतिक विचारक** (1997)

इकाई 8 : समुदाय की अवधारणा - II: अलासदैर मेकण्टायर

इकाई संरचना

1. उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. नैतिक दर्शन की वर्तमान स्थिति
4. पश्चिमी संस्कृति की विवेचना
5. उदारवाद की आलोचनात्मक व्याख्या
6. सद्गुण आधारित नैतिक जीवन का समर्थन
7. निष्कर्ष एवं मूल्यांकन
8. अभ्यास–प्रश्न
9. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप निम्नलिखित वैचारिक तत्त्वों से अंतरंग हो सकेंगे–

1. समुदायवादी विचारकों में मेकण्टायर के विचारों एवं अवधारणाओं का विशिष्ट स्वरूप
2. मेकण्टायर के समुदायवादी अस्तित्व के सुनिश्चित आधार
3. उसके द्वारा प्रस्तुत पश्चिमी संस्कृति तथा उदारवाद की समालोचना
4. मेकण्टायर की विचार–योजना में नैतिक परिवेश की महत्ता तथा सद्गुण संपन्न जीवन का प्राधान्य; तथा
5. राजनीतिक दर्शन एवं सिद्धांत के क्षेत्र में मेकण्टायर का विशिष्ट अवदान

2. प्रस्तावना

अलासदैर मेकण्टायर का आग्रह समसामयिक नैतिक दर्शन के स्वरूप को प्रकट करना है, जिसने कि अपने बहुलवादी एवं भावात्मक आग्रह के कारण प्रारंभिक समुदायों एवं परंपराओं से पृथकता उत्पन्न कर ली है । मेकण्टायर का मानना रहा है कि आधुनिकता के प्रति रूझान के कारण नैतिक जीवन में विखण्डन शुरू हो गया है । अत: मेकण्टायर का लक्ष्य अरस्तुकालीन परंपरा के उपरांत जहां से कि यह विखण्डन शुरू होता है, उदार व्यक्तिवादी नैतिक एवं राजनीतिक सिद्धांत की कमजोरियों को प्रकट करना रहा है । उन्होंने यह दिखाने का प्रयास किया है कि किस तरह से भावात्मकवाद (Emotivism) का व्यापक सामाजिक यथार्थ तकनीकी विवेकशीलता से जुड़ने का प्रयास करता है । फलत: इससे किस तरह पतन की प्रक्रिया शुरू होती है । अरस्तु को आधार मानते हुए मेकण्टायर ने एक तरफ हमारे सामाजिक एवं नैतिक जीवन में सद्गुण की धारणा का समावेश करने का प्रयास किया तो दूसरी तरफ समसामयिक उदारवादी मान्यता में, विशेषकर जॉन रॉल्स एवं रोबर्ट नोजिक के राजनीतिक सिद्धांत की कमियों को भी दूर करने का प्रयास किया है । मेकण्टायर सामान्यत: अपने चिंतन के चार लक्ष्य लेकर

चलता है । ये लक्ष्य हैं: 1. नैतिक दर्शन की वर्तमान स्थिति का विवेचन प्रस्तुत करना, 2. पश्चिमी संस्कृति का विवेचन प्रस्तुत कराना, 3. समसामयिक चिंतन उदारवाद की आलोचनात्मक व्याख्या करना, 4. सद्‌गुण आधारित जीवन का, विशेषकर नैतिक जीवन की सोद्देश्यात्मक अवधारणा (Teleological conception) का समर्थन करना । आगे इन्हीं मूल बिन्दुओं के आधार पर मेकण्टायर के चिंतन का विवेचन करने का प्रयास करेंगे ।

3. नैतिक दर्शन की वर्तमान स्थिति

मेकण्टायर का मानना है कि आधुनिक विश्व प्राकृतिक विज्ञानों की भाषा की अव्यवस्था में है । इसी तरह की समान अव्यवस्था हमें नैतिकता की भाषा में दिखाई देती है । संपूर्ण अवधारणात्मक परियोजनाएं टुकड़ों में बंट गई हैं एवं टुकड़ों में उन संदर्भों का अभाव पाया जाता है जिनसे वे सार ग्रहण करते हैं । हम नैतिकता की नकल कर रहे हैं एवं बहुत सी महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्तियों का प्रयोग कर रहे हैं । मेकण्टायर का मानना रहा है कि हम अधिकांशत: सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों ही स्तरों पर नैतिकता की धारणा को खो चुके हैं । आज नैतिक–अभिकथन के बारे में व्यापक असहमति पाई जाती है । मेकण्टायर का मानना रहा है कि इस असहमति अर्थात् नैतिक अभिकथन के बारे में जो वाद–विवाद है, उसकी तीन विशेषताएं रही हैं ।

प्रथम, हर मान्यता में विज्ञान के दर्शन की अभिव्यक्ति के अनुसरण का दावा किया जा रहा है । फलत: प्रत्येक यह दावा करता है कि उसकी मान्यता तार्किक रूप से वैध है ।

द्वितीय, प्रत्येक प्रतिस्पर्द्धी मत गैर–वैयक्तिक विवेकीय (Impersonal rationale) तर्क प्रस्तुत करते है ।

तृतीय, प्रत्येक प्रतिस्पर्धी अपने ऐतिहासिक उद्भव का दावा करते हैं । दूसरे शब्दों में, प्रत्येक धारणा के मानने वाले अपनी मान्यता की जड़ें भूतकाल, विशेषकर, भूत के प्रमुख विचारकों से ढूंढते हैं ।

मेकण्टायर का मानना है कि सभी का परिणाम यह हुआ कि हम नैतिक अभिकथन की अव्यवस्था की अवस्था में पहुंच गए हैं । उनका मानना है कि इस अव्यवस्था तक पहुंचने अर्थात् नैतिक पतन के तीन चरण रहे हैं:

1. प्रथम चरण में नैतिक सिद्धांत एवं व्यवहार में विशिष्ट नीतियों, कार्यों एवं निर्णयों के विवेकीय औचित्यता हेतु वस्तुगत एवं गैर–वैयक्तिक कसौटियों को अपनाया जाने लगा जबकि नैतिक सिद्धांत एवं व्यवहार और वस्तुगत एवं गैर–वैयक्तिक कसौटियों की प्रकृति में पूर्ण भिन्नता पाई जाती है ।
2. द्वितीय चरण में नैतिक निर्णयों की वस्तुगतता एवं गैर वैयक्तिकता को बनाए रखने का असफल प्रयास किया गया । इसका परिणाम यह हुआ कि इस काल में नैतिक निर्णयों के मूल्यांकन के जो भी विवेकीय आधारों वाली कसौटियां तय की गई, वे निरंतर रूप से असफल होती रही हैं ।
3. तृतीय चरण में भावात्मक जैसे सिद्धांतों की व्यापक स्वीकृति होने लगी । यह माना जाने लगा कि वस्तुगत एवं गैर–व्यक्तिकता का दावा अच्छा नहीं बना सकता है ।

इसका परिणाम यह हुआ कि हम नीतिशास्त्र में विवेकीय आग्रह को ढूंढने लगे । फलत: हम पूर्णत: नैतिक पतन के युग में आ गए हैं ।

अत: मेकण्टायर का आग्रह रहा है कि हमें इस आधुनिक नैतिक पतन की दशा की ओर देखना चाहिए । यहां यह उल्लेख करना वांछनीय होगा कि मेकण्टायर की पुस्तक 'After Virtue' एवं उसके पूर्ववर्ती लेखन में हमें स्पष्ट रूप से भिन्नता दिखाई देती है । दूसरे शब्दों में, 'After Virtue' में मेकण्टायर अपनी पूर्ववर्ती स्थिति में संशोधन प्रस्तुत करता है । मेकण्टायर ने अपनी प्रारंभिक रचनाओं में आधुनिकता एवं उसकी उदार औचित्यता पर कभी आक्रमण नहीं किया । किन्तु 'After Virtue' में वह सीधे तौर से आधुनिकता एवं उसकी उदार औचित्यता को आलोचना का बिन्दु बनाता है । दूसरे शब्दों में, आधुनिकता की कमियों का विवेचन ही 'After Virtue' की मुख्य विषयवस्तु रही है । यद्यपि उसने अपनी पूर्ववर्ती रचनाओं में आधुनिकता की प्रमुख मान्यताओं– प्रत्यक्षवाद, भावात्मकवाद तथा मनोविश्लेषण के विरुद्ध मत अपनाया है और इनसे बचने के लिए उसने ईसाइयत एवं मार्क्सवाद दोनों को मुक्तिकारी आस्था के रूप में एक विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया । प्रारंभिक रचनाओं में मेकण्टायर का मानना रहा कि कुछ कैथोलिक एवं धर्मनिरपेक्ष संत जैसे तैसे आधुनिकता से जुड़ी बुराइयों से बचने में सक्षम हो गए । किन्तु 'After Virtue' में मेकण्टायर का कहना है कि नैतिक सिद्धांतविद् आधुनिक नैतिक सिद्धांत से पूरी तरह अपना धीरज खो बैठे तथा अपने आप को इस आधुनिकीकृत विश्व की प्रकृति के विरुद्ध कर लिया । जैसा कि बेंजामिन बारबर ने लिखा है कि रूसों की भांति... मेकण्टायर अपने युग की उपलब्धियों एवं कमियों के विरुद्ध हो गया तथा अब मानने लगा कि सभी मुक्तिदाता (जैसे ईसा मसीह, मार्क्स एवं ट्रोस्ट्की) नैतिक बीमारियों से ग्रसित हैं ।

मेकण्टायर का मानना है कि आधुनिकता हमारे जीवन की एक सामान्य प्रवृत्ति बन गई। किन्तु अगर आधुनिकता सद्गुण के बिना चलती है तो यह बढ़ती हुई नौकरशाही के कठोर एवं प्रभावी नियंत्रण से संचालित होगी । 'वेबर के लोहे का जाल हमें कस लेगा तथा हिंसा की छुट–पुट उभार..... अधिक कठोर नियंत्रण करने के अवसर प्रदान कर देगी ।' आज संपूर्ण समसामयिक विश्व वेबर की मान्यता से प्रभावित है । अगर वेबर की मान्यता को स्वीकार कर लिया जाता है तो हमारे ऊपर नौकरशाही का शिकंजा कड़ा हो जाएगा तथा एक ऐसी व्यवस्थापकीय संस्कृति पैदा होगी जिसमें नैतिक प्रस्थापनाएं पीछे छूट जाती हैं । वेबर एक तरफ जोड़–तोड़युक्त और गैर–जोड़–तोड़युक्त सामाजिक संबंधों में अंतर खत्म कर देता है तो दूसरी तरफ वह शक्ति एवं सत्ता के अंतर को खत्म कर देता है । उसका एकमात्र लक्ष्य शक्ति प्राप्त करना है और वह शक्ति के प्रतीक के रूप में नौकरशाही को मानता है । वेबर के अनुसार नौकरशाही की सत्ता ही एकमात्र सफल शक्ति का प्रतीक है । कुछ वामपंथी यह दावा कर सकते हैं कि समसामयिक युग वेबर की धारणा से नहीं वरन् मार्क्सवादी मान्यता से प्रभावित है। किन्तु जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है मेकण्टायर ने अपनी पूर्ववर्ती रचनाओं में मार्क्सवादी मान्यता के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया है । परंतु वह परवर्ती रचना, 'After Virtue' में मार्क्स के प्रति भी आलोचनात्मक रूख अपनाता है ।

मेकण्टायर ने मार्क्सवादी मान्यताओं पर तीन आरोप लगाए हैं । प्रथम, मार्क्सवादी भी शक्ति प्राप्ति की तरफ अग्रसर होते हैं । अत: सार रूप में वे वेबर की मान्यता को ही स्वीकार कर लेते हैं । पोलेण्ड, युगोस्लाविया एवं इटली के उदाहरण इस बात को स्पष्ट सिद्ध करते हैं कि मार्क्सवादी वहां किस हद तक सत्ता के प्रति अग्रसर हुए एवं नौकरशाही का शिकंजा किस हद तक कहा हो गया । द्वितीय, मार्क्सवादी मान्यता एक विचारधारा के सिद्धांत पर जोर देने लगती है, जिसमें समाजविज्ञानों की गलत अभिव्यक्ति होने की संभावना बनी रहती है । तृतीय, मेकण्टायर का आरोप रहा है कि मार्क्सवादी चिंतन एवं आंदोलन में जितने भी नैतिक आग्रह के उदाहरण रहे हैं चाहे वह जर्मन सामाजिक लोकतंत्र में बर्नस्टीन का संशोधन हो या खुश्चेव द्वारा स्टालिन की अस्वीकृति हो या सन् 1956 का हंगरी का विद्रोह हों, उन सभी ने किसी न किसी रूप में काण्टवादी या उपयोगितावादी मान्यताओं को आत्मसात कर लिया है । साथ ही मेकण्टायर ने कहा कि मार्क्स ने अपनी पुस्तक 'केपिटल' में जिस समुदाय का विवेचन किया है, वह स्वतंत्र व्यक्तियों का समुदाय है । इसमें व्यक्ति उत्पादन के सामूहिक स्वामित्व तथा उत्पादन एवं वितरण के विभिन्न नियमों पर स्वतंत्र रूप से सहमत हुए हैं । किन्तु मेकण्टायर का कहना है कि मार्क्स हमें यह नहीं बताता है कि व्यक्ति इस स्वतंत्र संघ के अन्यों के साथ किस आधार को लेकर प्रवेश करता है । परवर्ती मार्क्सवादी विचारकों ने मार्क्स की इस कमी को दूर करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया । मेकण्टायर के शब्दों में 'यह आश्चर्यजनक नहीं होगा कि अमूर्त नैतिक सिद्धांत एवं उपयोगिता ही वास्तव में संघ के सिद्धांत रहे हैं जिसे कि मार्क्सवादियों ने प्रयुक्त किया है तथा मार्क्सवादी अपने व्यवहार में स्पष्ट रूप से नैतिक दृष्टिकोण के आग्रह पर जोर देते हैं ।

मेकण्टायर का मानना है कि इस स्थिति से बचने के लिए हमारे सम्मुख दो ही विकल्प हैं, अर्थात् या तो आधुनिकता में अरस्तु की सद्गुण की मान्यता को स्वीकार कर लें या नित्शे की इच्छा की धारणा को । मेकण्टायर के अनुसार अन्य सभी विकल्प–उदार व्यक्तिवाद, मार्क्सवाद तथा वेबर की मान्यता–विरोधी छोरों से आने वाले दबाव के आगे विफल हो गए हैं । जहां तक अन्य नैतिक दार्शनिकों के नैतिक दर्शन का प्रश्न है, मेकण्टायर ने उसे तीसरा विकल्प मानने से इन्कार कर दिया है । उन्हीं के शब्दों में, 'कोई तीसरा विकल्प नहीं है तथा विशेषकर ह्यूम, काण्ट तथा मिल जैसे विचारकों ने नैतिक दर्शन के समसामयिक परंपरागत पाठ्यक्रम में कोई विकल्प प्रस्तुत नहीं किया है । यह कोई आश्चर्य नहीं है कि नीतिशास्त्र का अध्ययन, जिनको पढ़ाया जा रहा है, उनके मानस पर इसका प्रभाव बहुत विध्वंसात्मक एवं संशयात्मक रहा है ।' अत: हमारे सम्मुख विकल्प केवल अरस्तु या नित्शे ही बचते हैं ।

अरस्तु के उपरांत नित्शे ही ऐसा विचारक हुआ है, जिसने अपने नैतिक दर्शन के माध्यम से प्रचलित आधुनिकता की बुराइयों के विकल्प सुझाए हैं । नित्शे नैतिकता की मान्यता को आंतरिक नैतिक मनोभावों, आत्म–चेतना, काण्ट के निरपेक्ष आदेश (Kantian Categorical Imperative) सर्वव्यापकता (Universality) पर आधारित करके वह पुन: जागरण की वस्तुपरक नैतिकता हेतु विवेकीय प्रस्थापनाओं की खोज की योजना की समस्या का समाधान प्राप्त कर लेता है । नित्शे विवेक का स्थान इच्छा को प्रदान करता है तथा इच्छा का

आग्रह प्राचीन 'आभिजात्य स्वदृढ़ कथनता' पर होता है । पुन: जागरण के दार्शनिकों एवं उसके उत्तराधिकारियों के प्रभाव वाले युग में नित्शे इस प्रश्न को सामने रखना है कि 'अच्छा' क्या है। मेकण्टायर के अनुसार नित्शे को नैतिक दार्शनिक की श्रेणी में लाने के लिए यह पर्याप्त है । यहां यह उल्लेख करना वांछनीय होगा कि नित्शे ने अरस्तु का उल्लेख सौंदर्यबोधी प्रश्नों को छोड़कर शायद ही कहीं किया है । मेकण्टायर के शब्दों में 'हालांकि वह एथिक्स (अरस्तु की पुस्तक) से महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के नाम एवं विचारों को लेता है फिर भी ये उसके सिद्धांत में अरस्तु की धारणा से पूर्णत: भिन्न रूप में आए हैं । किन्तु नैतिकता के इतिहास की उसकी व्याख्या यह स्पष्ट करती है कि नैतिकता एवं राजनीति का अरस्तु का विवेचन, शक्ति के लिए इच्छा के हर्सित छल–कपट के साथ भी नित्शे को प्रतिष्ठा प्रदान करता है ।' नित्शे ने अपने नैतिक दर्शन में अरस्तु के सद्‌गुण की मान्यता को अस्वीकार करके इच्छा की मान्यता पर जोर दिया है । उनका मानना है कि नैतिकता के सिद्धांतों को तय करने में इच्छा को आधार बनाना चाहिए । किन्तु मेकण्टायर किर्कगार्द की भांति नित्शे को भी विखण्डन एवं अर्थहीनता का पथविचीलत विचारक मानता है । 'इच्छा की मुक्ति के रूप में वह सत्ता के संचालन को छुपा लेने का तथा शून्यवाद के उद्भव का प्रयास करता है । वह हीरोईज्म के अपरिचित नए रूपों का अग्रदूत बन जाता है ।' किन्तु मेकण्टायर ने स्वयं अरस्तु की सद्‌गुण की मान्यता को अपनाया है । उनका मानना है कि अगर आधुनिकता को 'स्वेच्छाचारी घेरे (Orbitrary order) तथा शून्यवादी प्रतिरोध (Nihilistic resistance) ' की प्रवृत्तियों से दूर करना है तो इसकी संरचना में पूर्व आधुनिकता को समाहित करना होगा और अगर नैतिक आदर्शों एवं राजनीति का आधुनिकता पूर्व का मत आधुनिकता के विरुद्ध प्रमाणित सिद्ध होता है तो यह अरस्तु की मान्यता के अनुरूप होगा और कुछ नहीं होगा ।' मेकण्टायर के अनुसार अरस्तु की मान्यता में हम व्यक्ति के उद्देश्य (Telos) की अवधारणा को पाते है । यह ईश्वरीय इच्छा की भाति ऊपर से थोपी गई हैं । व्यक्ति के लिए उद्देश्य (Telos) की अवधारणा एक सारभूत लक्ष्य लेकर चलती है । यह लक्ष्य है व्यक्ति की अच्छाई । चूंकि अरस्तु की मान्यता में व्यक्ति वृहद्‌पूर्ण का एक भाग है, अत: व्यक्ति की अच्छाई का तात्पर्य समुदाय की अच्छाई है । अच्छा जीवन सद्‌गुण आधारित जीवन होता है, जो एक नैतिक जीवन है । जैसा कि अरस्तु ने कहा कि 'पोलिस (Polis) जीवन की पूर्णता से जुड़ा होता है, न कि इस या उस अच्छाई से । वह मानव की अच्छाई मात्र से जुड़ा हुआ है ।'

4. पश्चिमी संस्कृति की विवेचना

जब हम कहते हैं हमारी वर्तमान अवधारणाएं अपने ऐतिहासिक पूर्ववर्ती अवधारणाओं के विकृत एवं कमजोर रूप हैं तथा हमारा समसामयिक समाज पूर्णत: भावात्मक है, तो इससे हमारा क्या तात्पर्य है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए मेकण्टायर पश्चिमी संस्कृति के इतिहास की ओर झांकता है । इस संदर्भ में मेकण्टायर सबसे पहले हमारे तात्कालिक पूर्व–नवजागरण–को लेता है । मेकण्टायर का मानना है कि नवजागरण एक युग विभाजन रहा है । इस युग में ग्रीक एवं मध्यकालीन युग के सोद्देश्यपूर्ण मत (Technological View) जो कि

मुख्य रूप से अरस्तु में अभिव्यक्ति होता है, को अस्वीकार कर दिया जाता है । इस अस्वीकृति को ही प्रतिष्ठा माना जाता है । मेकण्टायर का मानना है कि पुन: जागरण के विचारकों की गलती व्यावहारिक एवं वैचारिक दोनों ही रही हैं । केवलमात्र यही नहीं है कि इन्होंने जो रास्ता चुनाव वह रणनीति की दृष्टि से बहुत कमजोर है वरन् वे तो इसे ही समझने में असफल रहे हैं कि नैतिकता क्या है । एक बार मानव के किसी सोद्देश्यात्मक संदर्भ को छोड़ दिया जाता है तो व्यक्ति एक विशिष्ट एवं असत्य कार्य की तरफ अग्रसरित होंगे । ऐसी स्थिति में 'किसी बिन्दु का उल्लेख किए बिना, उस बिन्दु के संदर्भ के द्वारा ही केवलमात्र औचित्यता प्रदान करने का प्रयास किया जाता है ।' अत: मेकण्टायर का मानना है कि पुन: जागरण परियोजना का असफल होना स्वाभाविक था । मेकण्टायर के शब्दों में, 'इस रूप में कोई भी परियोजना असफल' होनी ही थी, क्योंकि एक तरफ नैतिक नियमों एवं अवधारणाओं की अपनी सहभागी मान्यताओं के मध्य तथा दूसरी तरफ मानव प्रकृति की उनकी अवधारणा में सहभागी क्या था, के बारे में अनुन्यूलनीय असंगतता थी । दोनों अवधारणाओं का एक इतिहास है तथा इस इतिहास के प्रकाश में ही उनके संबंध को बौद्धिक बनाया जा सकता है । ' दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि पुनर्जागरण के विचारकों की मान्यता में नैतिक योजना और मानव प्रकृति दोनों के बारे में ही एक असातत्यतापूर्ण मान्यता दिखाई देती हे । मेकण्टायर का मानना है कि नैतिक योजना की मूल संरचना का विवेचन अरस्तु ने अपनी पुस्तक ' Nicomachean Ethics' में किया है । इसके उपरांत यह अपने ग्रीक एवं ईश्वरवादी तत्त्वों के साथ इतिहास में लंबे समय तक प्रभावकारी स्थिति में बनी रही । किन्तु मेकण्टायर का मानना है कि जब से 'विवेक ' की अवधारणा का प्रादुर्भाव हुआ है, तब से इस नैतिक योजना को अस्वीकार कर दिया गा है । जबकि विवेक मानव के सच्चे उद्देश्य की वास्तविक दृष्टि प्रदान नहीं कर सकता है । मेकण्टायर के शब्दों में 'विवेक सार तत्व को व्यापक नहीं करता है या संभवशक्ति को कार्य में रूपांतरित नहीं करता है । ' ... अरस्तु विरोधी विज्ञान विवेक की शक्तियों के लिए सख्त सीमाएं तय करता है । विवेक परिकल्पनीय है । यह तथ्य के सत्यों तथा गणितीय संबंधों को मूल्यांकित कर सकता है । किन्तु इससे अधिक नहीं । अत: व्यवहार के क्षेत्र में यह साधनों के बारे में कह सकता है । लक्ष्यों के बारे में चुप रहता है । सभी मानव प्रकृति के सोद्देश्यात्मक मत को अस्वीकार कर देते हैं ।' मेकण्टायर का मानना है कि नैतिक योजना के ये तीन तत्व होते हैं

(क)अशिक्षित मानव प्रकृति

(ख) मानव जाति की क्षमता को पहचानने संबंधी मानव मान्यता (No–tion of -as–he–could–be–realised–his–telos)

(ग) नैतिक जीवन, जो कि व्यक्ति को एक अवस्था से दूसरा अवस्था मे जाने को सक्षम बनाता है।

किन्तु मेकण्टायर का कहना है कि प्रोटेस्टेंट तथा कैथोलिक दोनों ही मान्यताओं की धर्मनिरपेक्ष अस्वीकृति तथा अरस्तु की मान्यता की वैज्ञानिक दार्शनिक अस्वीकृत ने मानव जाति की क्षमता को पहचानने की किसी भी मानव मान्यता से दूर कर लिया है । इसका परिणाम यह हुआ है कि सोद्देश्यात्मक परिपेक्ष से निकले आदेश एवं अशिक्षित मानव प्रकृति की मान्यता के

मध्य का संबंध बहुत ही अस्पष्ट हो गया है । मेकण्टायर के शब्दों में 'एक तरफ नैतिक आदेशों का समूह तथा दूसरी तरफ मानव प्रकृति की अवधारणा, इस तरह स्वीकृत की गई है कि दोनों में असंगतता पाई जाती है । यह असंगतता मानव प्रकृति की उनकी संशोधित मान्यता के द्वारा दूर नहीं की जा सकती थी । चिंतन एवं कर्म की एक समय की संगत योजना को वे असंगत विखंडित विरासत के रूप में लेते हैं । इसका तात्पर्य यह हुआ कि अपनी विशिष्ट ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक स्थिति को वे स्वीकार नहीं करते हैं । वे अपने रच—निर्धारित कार्य के असंभव एवं अव्यावहारिक स्वरूप को स्वीकार नहीं कर सके ।

मेकण्टायर का मानना है कि आधुनिक नैतिक सिद्धांत की समस्या पुन: जागरण योजना की असफलता के फलस्वरूप सामने आई है । व्यक्ति ने अपने आप को सोद्देश्यात्मक मान्यता से अलग कर लिया तथा वह अपने आप को एक ऐसा सोद्देश्यात्मक मान्यता से अलग कर लिया तथा वह अपने आप को एक ऐसा नैतिक ऐजेन्ट मानने लगा जो अपनी नैतिक सत्ता में स्वायत्त हो । इसका परिणाम यह हुआ कि उपयोगितावाद की महत्ता उभर करके सामने आई । बेंथम ने नैतिक नियमों को नया रूप एवं मुख्य नैतिक अवधारणाओं को नया अर्थ देने का प्रयास किया है । 'उसके मत में परम्परागत नैतिकता अंधविश्वासों से व्याप्त हो गई है । जैसा कि हम समझते हैं कि मानव–कर्म का एकमात्र लक्ष्य सुख का आकर्षण एवं दु:ख के प्रति विकर्षण है, केवल ऐसा ही नहीं है वरन् बौद्धिक नैतिकता के सिद्धान्तों का भी विवेचन किया गया है । इनके अनुसार अधिकतम सुख की प्राप्ति एवं दु:ख का अभाव लक्ष्य (Telos) प्रदान करता है ।' जे.एस.मिल ने बेंथम की मान्यता में कुछ सुधार करने का प्रयास किया । यद्यपि मेकण्टायर यह स्वीकार करता है कि इस संदर्भ में मिल की यह देन रही है कि उसने मनोविज्ञान से नैतिकता को ग्रहण किया । किन्तु इस प्रक्रिया में उसने बेंथम की नई प्राकृतिक सोद्देश्यात्मक (Naturalistic telecology) योजना को विवेकीय आधार प्रदान कर दिया । संक्षेप में, हम कह सकते है कि इस युग में दो अवधारणाएं, उपयोगितावादी अवधारणा नैतिक जीवन की कोई मान्यता लेकर नहीं चलती हैं । संपूर्ण उन्नीसवीं सदी उदारवादी आग्रह से प्रभावित रही एवं उसके बाद ब्रिटेन में क्रमश: प्रज्ञावाद (Intuition–ism) तथा भावात्मक (Pragmatism) का स्पष्ट आग्रह दिखाई देता है । फलत: वस्तुपरकता पर जोर दिया जाने लगा एवं व्यक्ति को एक विवेकीय प्राणी के रूप में स्वीकार किया जाने लगा । नैतिकता के नियमों को विवेकशीलता की मान्यता के संदर्भ में परिभाषित किया जाने लगा । मानव–कार्य को मशीनी रूप में विश्लेषित किए जाने का प्रयास होने लगा । आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त विवेकशीलता की अवधारणा को लेकर चलने लगा, जिसका कि आधार तथ्य/मूल्य विभेदीकरण रहा है । ऐसी स्थिति में एक नैतिक एवं राजनीतिक समुदाय की अवधारणा को लेकर चलना असंभव होता है । 'इसकी अभिव्यक्ति एक ऐसे अनन्त संघर्ष में होती है, जो... समाज को ही रोगग्रसित कर देता है ।'

निष्कर्षत: कह सकते हैं कि मेकण्टायर के अनुसार पुन: जागरण युग में नैतिकता की समस्या उद्भव हुई है । राजनीतिक दार्शनिकों के विश्लेषण में सद्गुण को न्यूनतम स्थान मिलने लगा। समाज की धारणा खत्म हो गई और इसे एक ऐसे समुदाय के रूप में मानने लगे, जो कि

मानव अच्छाई की सहभागी दृष्टि एवं सद्‌गुण के सहभागी व्यवहार से जुड़ा हुआ न हो । ऐसे समाज की मान्यता को लेकर चले जो कि मूलभूत रूप से असमानताओं से ग्रसित है, जिसमें नैतिक दर्शन संघर्ष की अभिव्यक्ति करता है एवं राजनीति में बहुलता की कोई जगह नहीं रह जाती है । व्यक्तिवादी नैतिक विवेचन एवं उसकी संस्कृति एक राजनीतिक समुदाय के लिए आवश्यक विशिष्ट व्यवहार हेतु अपेक्षित सहमति प्रदान करने में असमर्थ रहे हैं । इसका परिणाम यह हुआ कि हमारा जीवन मूल विवादों से ग्रसित हो गया जिन्हें विवेकीय रूप से नहीं सुलझाया जा सकता है । समसामयिक युग में सद्‌गुण की अस्वीकृति स्पष्ट रूप से रॉल्स एवं नोजिक के राजनीतिक सिद्धांतों में दिखाई देती है हम जिसका आगे चलकर विवेचन करेंगे ।

5. उदारवाद की आलोचनात्मक व्याख्या

समसामयिक दार्शनिक एवं राजनीतिक चिंतन, उदारवाद तथा आधुनिकता का राजनीतिक दर्शन रहा है । आधुनिकता को मेकेण्टायर ने पतन के अग्रदूत के रूप में माना है । अत: मेकण्टायर ने उदारवाद के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया है । उनका मानना है कि उदारवाद की प्रवृत्ति समाधानविहीन विवादों को उत्पन्न करने की रही है । उन्होंने उदारवाद को 'गलतियों के परिवार ' की संज्ञा दी है । मेकण्टायर का मानना है कि उदारवाद, चाहे उसका काण्टवादी स्वरूप रहा हो या उपयोगितावादी स्वरूप, वह कुछ दार्शनिक कल्पनाएं, व्यक्ति या समाज के साथ उसके संबंध की पूर्णत: गलत धारणा को लेकर चलता है । इस दृष्टि से मेकण्टायर ने उदारवाद की निम्न आलोचनाएं की है :

प्रथम, मेकण्टायर का मानना है कि अधिकारों की अवधारणा तार्किक रूप से एक सामाजिक अवधारणा है, जिसमें न केवल व्यक्तियों के मध्य सामाजिक संबंधों की जरूरत होती है, वरन् एक सतत् विवेचन की भी आवश्यकता होती है । अत: विवेकीय व्यक्ति एवं उसके अधिकारों के अस्तित्व से संबंधित कोई भी तर्क सफल नहीं हो सकता है । दूसरे शब्दों में, सामाजिक परिप्रेक्ष्य एवं व्यक्तियों के पारस्परिक संबंधों को देखे बिना व्यक्ति के निरपेक्ष अधिकारों की मान्यता को लेकर नहीं चल सकते हैं । साथ ही मेकण्टायर का मानना रहा कि अधिकारों की धारणा अपने स्वरूप में सामाजिक तो होती है, साथ ही वह कुछ विशिष्ट प्रकार की संस्थाओं एवं व्यवहारों को भी लेकर चलती है । इन सामाजिक संस्थाओं एवं व्यवहारों की अनुपस्थिति में अधिकारों की अवधारणा को लेकर आगे नहीं बढ़ सकते हैं ।

द्‌वितीय, रॉल्स एवं नोजिक के राजनीतिक सिद्धान्तों में सद्‌गुण के परित्याग की पूर्णत: स्पष्ट अभिव्यक्ति दिखाई देती है । इन्होंने इस मान्यता को अस्वीकार कर दिया है कि न्याय के किसी भी विवेचन में पात्रता (Desert) केन्द्रीय बिन्दु है । चूंकि पात्रता का संबंध मानव अच्छाई एवं समुदाय की अवधारणा से निकटता से जुड़ा है । अत: पात्रता की मान्यताओं को अस्वीकार करने का तात्पर्य मानव अच्छाई एवं समुदाय की अवधारणा को अस्वीकार करना है । जैसा कि मेकण्टायर ने लिखा है कि 'पात्रता की धारणा एक ऐसी दक्षता है जो केवल समुदाय के परिप्रेक्ष्य में ही होती है, जिसका प्राथमिक बंधन व्यक्ति के लिए अच्छाई एवं समुदाय के लिए अच्छाई, दोनों की ही सहभागी समझ परिदर्शित करना है तथा जहां व्यक्ति, उन अच्छे संदर्भों में, अपने हितों को पहचानते हैं । ' मेकण्टायर का मानना है कि रॉल्स एवं नोजिक दोनों की ही

न्याय की मान्यता में पात्रता की अवधारणा का अभाव रहा है । रॉल्स ने स्पष्ट रूप से माना है कि व्यक्ति के लिए अच्छा जीवन क्या है? इसके बारे में मतभेद होना स्वभाविक है । अत: हमें न्याय के सिद्धान्तों को तय करने में अच्छे जीवन की मान्यता से दूर ही रहना चाहिए । रॉल्स के अनुसार केवल उन वस्तुओं पर हो ध्यान देना चाहिए, जिनमें प्रत्येक रुचि लेता हो । चाहे अच्छे जीवन के बारे में उनका मत कुछ भी हो । यद्यपि सामान्य दृष्टि से रॉल्स की न्याय की मान्यता पात्रता से जुड़ी हुई दिखाई देती है । किन्तु उनका मानना है कि न्याय के नियमों को तय करने से पहले एवं उसके बाद दोनों ही स्थितियों में न्याय के नियम पात्रता से जुड़े हुए नहीं हैं । जब हम न्याय के नियमों को तय नहीं कर लेते हैं तब तक हम यह नहीं जानते हैं कि कौन किसके लिए पात्र है । अत: हम अपनी न्याय की मान्यता को पात्रता पर आधारित नहीं कर सकते हैं तथा न्याय के नियमों को तय करने के उपरांत पात्रता की नहीं वरन् न्यायोचितता की आशा की गई है । अत: रॉल्स का मानना रहा है कि पात्रता के विचार को लागू करने का प्रयास अव्यावहारिक होगा ।

नोजिक की धारणा में भी पात्रता की मान्यता के लिए जरूरी समुदाय की अवधारणा का अभाव पाया जाता है । यह स्पष्ट है कि नोजिक के अधिकृतता (entitlement) के सिद्धान्त पर आधारित न्याय की मान्यता में पात्रता का कोई स्थान नहीं है । यद्यपि नोजिक एक बिन्दु पर अन्याय के संशोधन (rectification) हेतु इस सिद्धान्त की संभावना पर विवेचन करता है, किन्तु मेकण्टायर का मानना है कि इस पर नोजिक ने जो कुछ लिखा है, वह इतना सतही एवं धुंधला है कि उससे यह अंदाज नहीं लगाया जा सकता है कि नोजिक अपनी सामान्य धारणा में किसी प्रकार का कोई संशोधन कर रहा है । अत: मेकण्टायर ने यह निष्कर्ष निकाला है कि समसामयिक उदारवादी विवेचन विशेषकर रॉल्स एवं नोजिक के विश्लेषण में मानव अच्छाई के किसी भी सारभूत सिद्धान्त का अभाव पाया जाता है । साथ ही, किसी भी सामाजिक परिप्रेक्ष्य एवं समुदाय में न्याय के विचार को लेकर चलना असंभव होता है । न्याय, वास्तविक व्यक्तियों का नहीं वरन् कृत्रिम अविभिन्नकृत व्यक्तियों या ऐटमस (Atoms) का अमूर्त संबंध बन जाता है । मेकण्टायर के शब्दों में, 'यह पूर्णत: स्पष्ट है कि रॉल्स एवं नोजिक दोनों के अनुसार समाज व्यक्तियों का एकत्रीकरण मात्र है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने हितों को लिए होता है । तदुपरान्त वे एक साथ आते हैं एवं जीवन के सामान्य नियमों की रचना करते हैं । नोजिक में तो मूल अधिकारों के समूह का अतिरिक्त नकारात्मक दबाव मिलता है । रॉल्स के विवेचन में केवल उन्हीं कारकों का उल्लेख है जो बौद्धिक विवेकशीलता को लागू करते हैं । इस प्रकार दोनों के विवेचन में ही व्यक्ति प्राथमिक हैं, एवं समाज गौण । व्यक्तियों के हितों का अभिज्ञान उनके मध्य के किसी नैतिक एवं सामाजिक बंधन की रचना में उससे पहले है एवं उससे स्वतंत्रता हैं ।'

अत: मेकण्टायर का मानना रहा है कि रॉल्स एवं नोजिक दोनों में ही सहभागी सामाजिक मान्यता का अभाव पाया जाता है । उनकी मान्यताओं में समाज व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है. जिसमें वे एक–दूसरे से हितों के आधार पर जुडे हुए हैं तथा हर एक दूसरे के विरुद्ध हैं । नोजिक व्यक्तियों के निरपेक्ष अधिकारों की मान्यता को लेकर चलता है जिसमें

किसी भी स्थिति में हस्तक्षेप को वह अनुचित मानता है । रॉल्स विवेकीय व्यक्ति की मान्यता को लेकर चलता है । इन्होंने अगर आपसी संबंधों की दृष्टि से कुछ सीमाएं भी तय की हैं, तो वे सीमाएं उनके निजी एवं प्रतिस्पर्धी हितों को ध्यान में रखकर तय की गई हैं । अत: रॉल्स एवं नोजिक दोनों के ही विश्लेषणों में व्यक्ति एवं व्यक्ति के हित प्राथमिक हैं एवं समाज द्वितीय श्रेणी का। रॉल्स एवं नोजिक के अनुसार समाज हितों के लिए संघर्षरत व्यक्तियों का एकत्रीकरण मात्र है जिसमें प्रत्येक अपने हितों की अभिवृद्धि में लगा हुआ है । मेकण्टायर के अनुसार ऐसी स्थिति में परिवार, कॉलेज एवं अन्य वास्तविक समुदायों के बारे में सोचना बहुत कठिन है । उन्हीं के शब्दों में, 'रॉल्स एवं नोजिक का निजी हितों से संचालित विवेकीय व्यक्ति... सामाजिक जीवन में प्रवेश करने से पहले यह पूछता है कि अन्यों के साथ किस प्रकार का सामाजिक समझौता है? क्या वह मेरे लिए उचित है जिसमें मैं प्रवेश करने जा रहा हूं?'

तृतीय, आधुनिक उदार समाज में देशभक्ति रूपी सद्गुण खत्म हो गया है, क्योंकि हममें पूर्ण अर्थ में देशभक्ति की भावना (Patris) का अभाव पाया जाता है । मेकण्टायर का मानना है कि उदारवादियों ने अगर हमेशा नहीं तो अक्सर देशभक्ति के प्रति नकारात्मक और आक्रामक दृष्टिकोण अपनाया है । अत: विकसित समाजों में आज देशभक्ति के रूप में सद्गुण का प्रचलन संभव नहीं रह पाया है । मेकण्टायर के अनुसार 'ऐसे समाज में देशभक्ति संभव नहीं होती है, जिसमें सरकार नागरिकों के नैतिक समुदाय की अभिव्यक्ति एवं प्रतिनिधित्व नहीं करती हैं । वस्तुत: वह (सरकार) समाज पर नौकरशाहीकृत एकता को थोपने के लिए संस्थात्मक व्यवस्थाओं का जाल है, जिसमें वास्तविक नैतिक सहमति का अभाव पाया जाता है तथा राजनीतिक दायित्वों की प्रकृति व्यवस्थात्मक रूप से अस्पष्ट बन जाती है । देशभक्ति एक ऐसा सद्गुण है या था, जो प्राथमिक रूप से राजनीतिक तथा नैतिक समुदाय की सम्बद्धता पर आधारित होता है तथा केवल गौण रूप से उस समुदाय की सरकार से.. जब सरकार के परिवर्तित स्वरूप तथा समाज में नैतिक सहमति के अभाव के कारण नैतिक समुदाय के प्रति सरकार के संबंध में प्रश्न उठने लगता है तो सद्गुण के किसी स्पष्ट, साधारण एवं पठनीय अवधारणा को आगे बनाए रखना बहुत मुश्किल हो जाता है । '

6. सद्गुण आधारित नैतिक जीवन का समर्थन

जैसा कि पीछे के विवेचन में संकेत दिया जा चुका है कि मेकण्टायर ने अरस्तु की मान्यता को आधार के रूप में स्वीकार करके सद्गुण आधारित जीवन, विशेषकर नैतिक जीवन की सोद्देश्यात्मक अवधारणा का समर्थन किया है । दूसरे शब्दों में, मेकण्टायर सद्गुण आधारित नैतिक जीवन की स्थापना पर जोर देता है । मेकण्टायर ने सद्गुण की प्रकृति का विवेचन करते हुए उसके निम्न तीन पक्षों का विवेचन किया है

(क) व्यवहार (Practice): मेकण्टायर ने व्यवहार को सद्गुण का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष माना है । व्यवहार को परिभाषित करते हुए उन्होंने लिखा है कि व्यवहार सामाजिक रूप से स्थापित सहयोगात्मक मानव गतिविधियों का सुसंगत एवं जटिल रूप है जिसके द्वारा वस्तुएं

जो कि गतिविधि के रूप से आंतरिक दृष्टि से जुडी हैं, उत्कृष्टता के उन स्तरों को प्राप्त करने के प्रयास में प्राप्त की जाती है जो कि गतिविधि के उस रूप के अनुरूप हैं । इसका परिणाम यह होता है कि उत्कृष्टता को प्राप्त करने के लिए मानव शक्तियों तथा लक्ष्यों एवं वस्तुओं से संबंधित मानव अवधारणाएं व्यवस्थात्मक रूप से व्यापक की जाती हैं । मेकण्टायर का मानना है कि व्यवहार में इस तरह के स्तर व्यक्तिगत इच्छा द्वारा तय नहीं होते हैं । हालांकि व्यक्ति अपने स्वयं के व्यवहार को तय कर सकता है, किन्तु वह उत्कृष्टता की उन कसौटियों एवं स्तरों को लेकर चलता है, जो व्यक्ति विशेष से बंधे हुए नहीं होते हैं । इसी कारण मेकण्टायर ने सद्गुण को उन मानव गुणों के रूप में परिभाषित किया है जो कि न केवल व्यवहारों को बनाए रखते हैं वरन् उनका विस्तार भी करते हैं । व्यवहार के संदर्भ में सद्गुण को परिभाषित करते हुए मेकण्टायर ने लिखा है, 'सद्गुण' इस तरह प्राप्त किए गए वे मानव गुण हैं जिनको रखना एवं संचालन करना हमें उन वस्तुओं की प्राप्ति में सक्षम बनाता है जो आंतरिक रूप से व्यवहारों से जुड़ी होती हैं तथा इसका अभाव इस तरह की किसी भी वस्तु की प्राप्ति से हमें प्रभावकारी तरीके से रोकता है ।' व्यवहार के संदर्भ में आने वाली दो समस्याओं का मेकण्टायर ने पूर्व में ही आभास दिया है । दूसरे शब्दों में, व्यवहार को सद्गुण से जोड़ने के उपरान्त भी हम आलोचनाओं एवं समस्याओं से नहीं बच सकते हैं । दो समस्याओं का विवेचन करते हुए मेकण्टायर ने लिखा है कि कुछ बुरे व्यवहार हो सकते हैं तथा व्यक्ति के सम्मुख यह दिक्कत आ सकती है कि वह विभिन्न प्रतिस्पर्धी व्यवहारों में से किस को चुने । प्रथम समस्या – बुरे व्यवहार का होना – को मेकण्टायर बड़ी समस्या नहीं मानता है, क्योंकि उनका मानना है कि बुरे व्यवहार सामान्यत: असफल होते हैं । बुरा व्यवहार दीर्घकाल तक बना रहने वाला व्यवहार नहीं होता है । जहां तक द्वितीय समस्या – विभिन्न प्रतिस्पर्धी व्यवहारों में से चुनने की समस्या – का संबंध हैं, मेकण्टायर का मानना है कि इसके लिए विभेदीकरण के व्यापक संदर्भ की जरूरत होती है । इस बिन्दु का हम सद्गुण के द्वितीय पक्ष में विवेचन करेंगे । अत: यहां इतना ही कहना पर्याप्त होगा ।

(ख) जीवन की विवरणात्मक एकता (The Narrative Unit of Life): नैतिक विभेदीकरण की आवश्यकता सद्गुण के द्वितीय पक्ष, व्यक्ति के सोद्देश्यात्मक जीवन, पर लाती है । सोद्देश्यता (Telos) ही व्यक्ति को उसके जीवन के लिए सुसंगत विवरणात्मक अंश प्रदान करता है । यह व्यक्ति को उसके जीवन की प्राथमिकताएं तय करने में एवं वह जिस दिशा में जा रहा हे, उसको स्पष्ट करने में सक्षम बनाता है । मेकण्टायर का मानना है कि जीवन के विवरणात्मक अंशों के साथ सुसंगत पहचान भी जुड़ी होती है । इस तरह मेकण्टायर ने अरस्तु के इस प्रश्न का उत्तर दिया है कि मानव के लिए अच्छा जीवन क्या है? साथ ही, मेकण्टायर मानव जीवन के लिए सोद्देश्यता की मान्यता को एक जटिल मान्यता भी मानता है । मेकण्टायर का मानना है कि ऐसा नहीं है कि पहले सौद्देश्यता की अवधारणा को तय कर लिया जाए एवं तदुपरांत लक्ष्य की तरफ बढ़ा जाए । मेकण्टायर ने उन दार्शनिकों की आलोचना की है जिन्होंने अरस्तु की परभौतिकवादी जीवनशास्त्र की मान्यता को बदलते हुए यह धारणा प्रतिपादित की है कि मानव जीवन की सोद्देश्यता को व्यवहार से पृथक तय किया जा सकता है । इन विचारकों

के अनुसार सद्‌गुणों को उन गुणों के रूप में पर्याप्त रूप से परिभाषित किया जा सकता है जो कि इस तरह से आगे बढ़ने एवं कल्याण की वृद्धि के लिए आवश्यक हैं, जिसकी विषयवस्तु के बारे में हमारा मतभेद हो सकता है । किन्तु हमें विवेकीय रूप से इस पर सहमत होना चाहिए कि क्या सद्‌गुण है एवं क्या दुर्गुण है । मेकण्टायर के अनुसार व्यक्ति के लिए अच्छे जीवन की खोज में जीवन व्यतीत करना ही व्यक्ति के लिए अच्छा जीवन है । किन्तु इस संदर्भ में दो समस्याएं हमारे सामने आती हैं । प्रथम, जब तक कि हम अच्छाई क्या है? के बारे में कुछ स्वतंत्र अवधारणाएं नहीं रखेंगे, तब तक हम यह कहने में असमर्थ रहेंगे कि क्या कोई व्यक्ति वास्तव में इसकी खोज कर सकता है? दूसरे शब्दों में, अच्छाई क्या है? इसके बारे में एक आम सहमति होनी चाहिए । द्‌वितीय, यहां तक कि उन स्थानों पर भी जहां इस सिद्धांत को लागू करने में दिक्कतें नहीं है, यह स्पष्ट नहीं है कि क्या हम इस अवधारणा के लागू करने के बारे में कुछ सावधानियां रखेंगे । मेकण्टायर का मानना है कि मानव जीवन की अच्छाई की यह खोज अलगाव में नहीं की जा सकती है । व्यक्ति की नैतिक मान्यताएं, समस्याएं एवं दिक्कतें व्यापक संदर्भ में ही तय की जा सकती है । जैसा कि मेकेण्टायर ने लिखा है कि 'एक विशिष्ट सद्‌गुण को हमेशा सामाजिक एवं नैतिक जीवन को विशिष्ट विशेषताओं के कुछ पूर्व उल्लेख की जरूरत पड़ती है जिसके संदर्भ में इसे परिभाषित किया जा सकता है । ' इस व्यापक संदर्भ की आवश्यकता हमें सद्‌गुण के तीसरे पक्ष पर ले आती है ।

(ग) नैतिक परम्परा : नैतिक परम्परा ही व्यक्तियों को वह प्रारंभिक बिन्दु प्रदान करती है जिनसे चलकर हम अपनी जीवन संरचना को तय कर सकते हैं । हमें अपने जीवन को एक संरचनाकृत पूर्ण मानना चाहिए जिसमें हम भूत से निकटता से जुड़े होते हैं तथा जिसमें भविष्य की हमारी सबसे प्रमुख नैतिक 'आकांक्षाएं प्रतिबिम्बित होती हैं । नैतिक परंपरा का संदर्भ ही अच्छे की खोज में विभिन्न एवं प्रतिस्पर्धी वस्तुओं के विवेचन एवं मूल्यांकन को संभव बनाता है । अगर एकीकृत नैतिक परंपरा का अभाव है तो सदगुण का हमारे जीवन पर से प्रभाव कम जाएगा ।

मेकण्टायर का मानना रहा है कि एक जीवित परम्परा ऐतिहासिक रूप से लम्बी एवं सामाजिक दृष्टि से तार्किक होती है । इसके तर्क उन अच्छाइयों को लिए होते हैं जिनसे मिलकर परंपरा बनती है । एक परंपरा में अच्छाइयों की खोज कई पीढ़ियों तक चलती रहती है। मेकण्टायर का मानना है कि परंपरा में व्यक्ति अपनी अच्छाइयां उस विशिष्ट परंपरा द्‌वारा जिसका कि व्यक्ति एक भाग है, तय किए गए संदर्भ के अंदर ढूंढने का प्रयास करता है। उनका मानना रहा है कि परंपरा सामाजिक स्वरूप लिए होती है । मेकण्टायर ने मुख्यत: चार परंपराओं का विवेचन किया है । ये हैं: 1. अरस्तु की मान्यता वाली परंपरा, 2. एक्वीनास का अरस्तुवाद एवं आगस्टाइन ईसाइत्व का सम्मिश्रण, 3. सत्रहवीं एवं अट्ठारहवीं सदीय स्कोटिस परंपरा, 4. उदारवाव । चूंकि इन परंपराओं के बारे में पीछे विवेचन किया जा चुका है, अत: पुनरावृत्ति से बचने के लिए वांछनीय होगा कि इनके बारे में बहुत संक्षेप में ही उल्लेख किया जाए । मेकण्टायर के अनुसार किसी परम्परा की सामाजिक जीवन के विभिन्न रूपों में अभिव्यक्ति होती है । उदाहरण के लिए, अरस्तुवादी परम्परा प्राचीन नगर राज्यों (Polis) के जीवन में,

एक्वीनास की परम्परा धार्मिक एवं धर्मनिरपेक्ष तत्त्वों के सहअस्तित्वयुक्त एकीकृत समुदाय में, स्कोटिस परम्परा धर्मतांत्रिक केल्विनवाद, विशिष्ट स्कोटिश सांस्कृतिक अस्मिता एवं राष्ट्रीय परम्परा में तथा उदारवादी परम्परा स्वतंत्र बाजार एवं उपभोक्ता बाजार के रूप में अभिव्यक्त होती है । मेकण्टायर का मानना रहा है कि एक परम्परा का चलते रहना या उसका पतन, विखंडन एवं अन्तत: समाप्ति इस बात पर निर्भर करती है कि वह अपने संबंधित सद्‌गुणों को बनाए रखती है या नहीं । न्याय, अच्छाई, साहस एवं सम्बन्धित बौद्धिक सद्‌गुणों का अभाव परम्परा को भ्रष्ट कर देता है । मेकण्टायर ने स्पष्ट किया है कि यहां सद्‌गुण का तात्पर्य रूढ़िवादी पुरातत्त्व विषयकता (Antiquarianism) से नहीं है । मेकण्टायर ने उन लोगों की आलोचना की है, जिन्होंने परम्परा की अभिसामयिक रूढ़िवादी भूमिका को स्वीकार किया है । उनके अनुसार परम्परा में भूतकाल को लिए वह वर्तमान होता है जिसमें भविष्य की संभावनाएं छुपी रहती हैं ।

मेकण्टायर के सद्‌गुण के स्वरूप की विवेचना से स्पष्ट है कि सद्‌गुण को न तो उपयोगितावादियों की भांति बाहरी अच्छाइयों के रूप में परिभाषित कर सकते हैं और न ही काण्ट की भांति विवेकीय इच्छा के लिए भावनाओं के दमन के रूप में परिभाषिक किया जा सकता है । मेकण्टायर की सद्‌गुण की मान्यता उपयोगितावादियों एवं काण्ट की मान्यता के अनुरूप नहीं वरन् ओकशॉट के ज्यादा नजदीक है । ओकशॉट ने भी मेकण्टायर की भांति सद्‌गुण को व्यवहार की समुचित दक्षता से संबन्धित माना है किन्तु मेकण्टायर की सद्‌गुण की मान्यता ओकशॉट की मान्यता से ज्यादा व्यापक है । मेकण्टायर के अनुसार सद्‌गुण को व्यवहार की समुचित दक्षता से जुड़े होने के साथ ही जीवन के उद्देश्यों की सामंजस्यता के साथ जीवन के तरीकों से भी जुड़े होते हैं ।मेकण्टायर व्यवहार में लक्ष्यों को इस तरह जोड़कर चलता है, जो कि ओकशॉट के लिए दूर की चीज है ।

अत: हम कह सकते हैं कि मेकण्टायर अरस्तु की मान्यता के आधार पर एक ऐसे समुदाय की अवधारणा लेकर चलता है जिसमें व्यक्ति 'नैतिक अच्छाई' व 'नैतिक एकता' से जुड़े होते हैं । मेकण्टायर ने स्पष्ट रूप से कहा है कि आधुनिक उदार व्यक्तिवादी विश्व में राजनीतिक समुदाय की मान्यता की कल्पना निरर्थक है क्योंकि यहां समाज व्यक्ति के एक ऐसे एकत्रीकरण मात्र से ज्यादा नहीं है जहां व्यक्ति सामूहिक हितों एवं सामूहिक सुरक्षा हेतु मिलते हैं । अत: ऐसी स्थिति में समुदाय के किसी भी रूप की कल्पना करना व्यर्थ होगा । हमें अगर एक समुदाय की मान्यता को लेकर चलना है तो उसके लिए ' अरस्तुवादी नैतिक एकता ' की मान्यता को लेकर चलना होगा जिसमें व्यक्ति एक दूसरे के हितों के आधार पर नहीं वरन् सामुदायिक अच्छाई के आधार पर जुड़े होंगे । व्यक्ति की पहचान उसकी सामाजिक सम्बद्धता से ही होती है । मेकण्टायर ने लिखा है कि 'हम अपनी विशिष्ट स्थिति को एक सामाजिक पहचान के रूप में लेते हैं । मैं किसी का बेटा या बेटी हूं । किसी का चचेरा भाई या चाचा हूं । मैं इस या उस शहर का नागरिक हूं । मैं इस या उस गिल्ड या व्यवस्था का सदस्य हूं । मैं इस गोत्र, उस जाति, इस राष्ट्र से सम्बद्ध हूं । अत: जो मेरे लिए अच्छा होगा, वह उसके लिए भी अच्छा होगा जिससे मैं ये भूमिकाएं लेता हूं । ये भूमिकाएं मैं मेरे परिवार, मेरे शहर, मेरी जाति, मेरे

राष्ट्र, विभित्र ऋणों, बपौती, सभी आशाएं तथा दायित्वों की भूतकालीन विरासत से प्राप्त करता हूं । ये ही मेरा जीवन एवं नैतिक प्रारंभ का बिन्दु तय करती हैं ।' अत: मेकण्टायर ने स्पष्ट रूप से कहा है कि व्यक्ति की भूमिकाएं, वह जिस समुदाय का सदस्य होता है, उसकी परिधि में ही तय होती है । मेकण्टायर के अनुसार 'मेरे जीवन की कहानी हमेशा उन समुदाय से सम्बद्ध होती है, जिनसे कि मैं अपनी पहचान ग्रहण करता हूं किन्तु साथ ही मेकण्टायर ने व्यक्ति की अस्मिता एवं निजी पहचान को भी प्रमुखता दी है । उसके अनुसार सामुदायिक परम्परा एवं व्यवहार से नैतिक पहचान ग्रहण करने का यह तात्पर्य नहीं है कि व्यक्ति को समुदाय की उस विशिष्ट स्वरूप की नैतिक सीमाओं को स्वीकार ही करना होगा । अच्छा जीवन अच्छे जीवन की खोज में ही व्यतीत हो सकता है और इस खोज में व्यक्ति अपनी किसी भूमिका या पहचान को अस्वीकार भी कर सकता है । मेकण्टायर के अनुसार पहचान के विरुद्ध विद्रोह भी अभिव्यक्ति का एक संभव तरीका है । यद्यपि इस बिन्दु को लेकर आलोचकों ने मेकण्टायर की आलोचना करते हुए कहा है कि व्याके को समुदाय से विद्रोह का अधिकार देकर मेकण्टायर व्यक्ति की स्वायत्तता पर जोर देता है तथा उसकी सामाजिक संबद्धता को स्वीकार करता है जो उसके सामुदायिक चिन्तन के विरुद्ध है । इसी कारण किमलिका ने मेकण्टायर की रचना ' आफ्टर वच्र्यु ' को अस्पष्टता ग्रसित रचना एवं उसको 'सन्निहित–स्व ' (embedded self) लेकर चलने वाले विचारक के रूप में माना है । तथ्यत: मेकण्टायर पर यह आरोप सही सिद्ध नहीं होता है क्योंकि वह व्यक्ति से एक तरफ सही अपेक्षाओं एवं दायित्वों की आशा करता है तो दूसरी तरफ वह विद्रोह को भी अच्छे जीवन की खोज का ही एक प्रयास मानता है ।

7. मूल्यांकन

समसामयिक नैतिक दार्शनिकों में मेकण्टायर एक ऐसा महत्वपूर्ण विचारक है जिसने एक तरफ आधुनिकता की अवधारणा के आग्रह के कारण उत्पन्न नैतिक संकट का स्पष्ट विवेचन किया तो दूसरी तरफ अरस्तु की सद्‌गुण की मान्यता को आधार मान कर जीवन में नैतिक मूल्यों की पुन: स्थापना भी की है । मेकण्टायर ने समसामयिक उदारवादी राजनीतिक सिद्धान्त, विशेषकर जॉन रॉल्स एवं रोबर्ट नोजिक की न्याय की मान्यताओं की सामुदायिक धारणा न लेकर चलने के कारण आलोचना की तथा इनके विकल्प के रूप में सामुदायिक चिन्तन की धारा को आगे बढ़ाया । मेकण्टायर स्वायत्त व्यक्ति की अपेक्षा व्यक्ति एवं समुदाय के सहअस्तित्व की धारणा को लेकर चलता है जिनके आपसी संबंधों का आधार स्वार्थ एवं निजी हित नहीं वरन् नैतिक मूल्य हैं । स्टेवन एल. रोज ने मेकण्टायर की रचना को एक उत्कृष्ट रचना मानते हुए उसके निम्न तीन उल्लेखनीय योगदानों की चर्चा की है :

प्रथम, मेकण्टायर नैतिक दर्शन की विषयवस्तु में व्यापक सुधार करने का प्रयास करता है । उसका मानना है कि नैतिक दर्शन की स्थिति में ऐतिहासिक एवं सामाजिक तत्त्वों के अलावा अन्य तत्त्वों का उल्लेखनीय योगदान होता है । दूसरे शब्दों में, नैतिक दर्शन ऐतिहासिक एवं सामाजिक तत्त्वों से निकटता से जुड़ा होता है । अत: ऐसा विश्लेषण जिसमें ऐतिहासिक एवं सामाजिक तत्त्वों का अभाव हो, नैतिक दर्शन की विषयवस्तु को स्पष्ट करने में असमर्थ होगा ।

द्वितीय, मेकण्टायर ने प्रचलित नैतिक दर्शन से पृथकता का मार्ग अपनाते हुए एक सशक्त विकल्पनात्मक मार्ग प्रशस्त करने का प्रयास किया है । तृतीय, दूसरे बिन्दु से काफी निकटता से जुड़ा हुआ यह बिन्दु है, जिसका उल्लेख करते हुए स्टेवन रोज ने लिखा है कि मेकण्टायर की रचना 'आफ्टर वच्र्यु' एक ऐसी स्वघोषित उपचारात्मक रचना है जिसका लक्ष्य वर्तमान युग की व्याप्त अस्वास्थ्यकारी प्रवृत्तियों को ठीक करना है । इस प्रक्रिया में मेकण्टायर इस बात का व्यापक रूप से विवेचन करता है कि भूतकाल में किस रूप में गलतियां हुईं और किन परिस्थितियों के कारण हम आधुनिक युग के नैतिक संकट के युग में पहुंच गए । साथ ही, मेकण्टायर उन कदमों का भी विवेचन करता है जिनका अनुकरण करके हम नई व्यवस्था की रचना कर सकते हैं । यह सही है कि आधुनिकता के प्रति आग्रह के कारण हमारी नैतिक मान्यताओं एवं समाज के प्रति हमारे दृष्टिकोण में कुछ विकृतियां आई हैं, किन्तु साथ ही आधुनिकता की कुछ देन भी रही है जिनकी मेकण्टायर अनदेखी करता है । स्वतंत्रता, समानता, व्यक्ति की गरिमा आदि भी आधुनिकता की अवधारणा की ही देन हैं । बेंजामिन बारबर के शब्दों में ' आफ्टर वच्र्यु ' ईडन उपरान्त भी है किन्तु साथ ही, यह पदसोपानियता उपरान्त, दासता उपरान्त, निरपेक्षता उपरान्त तथा अज्ञानता उपरान्त भी है । आधुनिकता की छुपी कीमत को... उसकी प्राप्त वास्तविक उपलब्धियों के सामने देखकर मापना चाहिए ।' यद्यपि बेंजामिन बारबर ने तो मेकण्टायर पर वह आरोप लगाया है कि उसकी आधुनिकता के आलोचनात्मक विवेचन में कट्टर रूढ़िवाद और कई बार तो प्रतिक्रियावाद की संभावना दिखाई देती है । बेंजामिन बारबर के शब्दों में ' आधुनिक युग पर मेकण्टायर के बहुत ही प्रभावी आक्रमण में कट्टर रूढ़िवाद और यहां तक कि प्रतिक्रियावादी मत को आत्मसात करने का खतरा विद्यमान है । आधुनिकता की उपलब्धियों की अस्वीकृति के द्वारा, वह इसकी राक्षसी एवं अप्रतिकारीय बुराइयों को प्रस्तुत करता है ।' किन्तु मेकण्टायर पर रूढ़िवादी या प्रतिक्रियावादी होने का आरोप लगाना गलत है । उन्होंने स्वयं कहा है कि सद्गुण परम्परा के आग्रह का तात्पर्य कभी भी 'रूढ़िवादी पुरातत्त्वता ' नहीं है । मेकण्टायर ने स्वयं उन लोगों की आलोचना की है जिन्होंने परम्परा की आलोचना की है ।

8. अभ्यास प्रश्न :

1. 'आधुनिक विश्व प्राकृतिक विज्ञानों की भाषा की व्यवस्था में (विद्यमान) है । इसी तरह की समान अव्यवस्था हमें नैतिकता की भाषा में (भी) दिखाई देती है । व्याख्या कीजिए ।
2. मेकण्टायर के विचार जगत में आधुनिकता का क्या परिदृश्य प्रकट होता है? विवेचना कीजिए ।
3. मेकण्टायर ने पश्चिमी संस्कृति की कैसी विवेचना की है? स्पष्ट कीजिए ।
4. उदारवाद की प्रवृत्ति समाधानविहीन विवादों को उत्पन्न करने की रही है...(उदारवाद) 'गलतियों का परिवार ' है? क्या आप उदारवाद विषयक मेकण्टायर इस के आकलन से सहमत हैं? सकारण स्पष्ट कीजिए ।

5. 'मेकण्टायर तथा सद्‌गुण आधारित नैतिक जीवन ' विषय पर एक लेख लिखिए ।

6. मेकण्टायर के समुदायवादी चिंतन का मूल्यांकन कीजिए ।

9. संदर्भ गन्ध सूची

मेकण्टायर. आफ्ट वच्र्यु	:	**ए स्टडी इन मॉरल थ्योरी** (1981)
- - - - - - - - - - - - - -	:	**मार्क्सिज़्म एण्ड क्रिश्चिएनिटि** (1968)
- - - - - - - - - - - - - -		**अगेन्स्ट दि सेल्फ इमेजेज एसेस ऑन ऑफ दि एज: आइडियोलॉजी एण्ड फिलॉसफी** (1971)
लीलाराम गुर्जर	:	**बीसवीं सदी के राजनीतिक विचारक** (1997)

इकाई 9 –परम्परा, इतिहास तथा राजनीति I : माइकल ऑकशॉट का राजनीतिक चिन्तन

इकाई संरचना

1. उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. दर्शन की अवधारणा
4. विधि– अन्वेषण की कसौटी
5. मानव प्रकृति तथा अनुभव का ऐतिहासिक संदर्भ
6. ऑकशॉट के चिन्तन में इच्छा तथा मानव व्यवहार का संगठन पक्ष
7. स्वतंत्रता तथा सत्ता का नैकट्य
8. ऑकशॉट के रुढ़िवादी आग्रह
9. मूल्यांकन एवं निष्कर्ष
10. अभ्यास प्रश्न
11. संदर्भ गन्ध सूची

1. उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप यह समझ सकेंगे कि–

1. माइकल ऑकशॉट के राजनीतिक चिन्तन के प्रमुख वैचारिक आधार क्या हैं?
2. उसमें मानव प्रकृति व अनुभव तथा स्वतंत्रता व सत्ता का क्या और कैसा मेल स्थापित है?
3. ऑकशॉट के रूढ़िवादी आग्रह क्या थे?
4. उसके राजनीतिक चिन्तन में इतिहास का क्या स्थान था? तथा
5. राजनीति सिद्धान्त में ऑकशॉट के चिन्तन का क्या महत्व है?

2. प्रस्तावना

माइकल ओंकशॉट आधुनिक ब्रिटिश राजनीतिक चिन्तन का सबसे प्रमुख विचारक है । ऑकशॉट ने हेराल्ड लास्की एवं ग्राहम वालास के उत्तराधिकारी के रूप में लंदन स्कूल आफ इकोनामिक्स के अध्यक्ष का पद संभाला । ऑकशॉट ने राजनीति में विवेकवाद की आलोचना एवं रूढ़िवाद विशेषकर आदर्शवाद को महत्ता प्रदान करके तत्कालीन ब्रिटिश चिन्तन परंपरा को एक नया आयाम देने का प्रयास किया । ऑकशॉट के इस रूढ़िवादी आग्रह के कारण ही उसे कई बार नवरूढ़िवाद आंदोलन एवं ब्रिटिश टोरी दल का प्रवक्ता भी माना गया है । प्रस्तुत अध्याय में हम ऑकशॉटं के चिन्तन की सामान्य रूपरेखा प्रस्तुत करने के साथ दर्शन, विशेषकर राजनीति दर्शन, उसके रूढ़िवादी आग्रह एवं विवेकवाद की आलोचना आदि मुद्दों का विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे ।

3. दर्शन की अवधारणा

ऑकशॉट ने दर्शन की अवधारणा को व्यवस्थित रूप से पहली बार अपनी पुस्तक ' Experience and Its Mode (1933) ' में रखा । उनकी दर्शन की मान्यता पर आदर्शवादी धारणा का काफी प्रभाव था । आदर्शवादी विचारकों की भांति उन्होंने भी मन एवं बाह्य विश्व की अनुभावनात्मक द्वैधता को अस्वीकार कर दिया । उनका मानना है कि अगर हम व्यक्तिपरकता एवं वस्तुपरकता को एक–दूसरे से अलग करते हैं तो एक अमूर्तता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । व्यक्तिपरक से अलग वस्तुपरक नहीं होता एवं वस्तुपरक से स्वतंत्र व्यक्तिपरक नहीं हो सकता है । ऑकशॉट का मानना है कि अनुभव ही एकमात्र यथार्थ है जिसमें अनुभव किया जा रहा व्यक्तिपरक एवं अनुभव किया जा चुका वस्तुपरक दोनों ही समाहित होते हैं । ऑकशॉट का मानना रहा है कि जब अनुभव ही एकमात्र यथार्थ है तो सभी बौद्धिक खोज इसी के किसी पक्ष से जुडी होती है । उसमें अंतर केवल इस आधार पर होता है कि वह ज्ञान के किस रूप की खोज कर रही है । जहां तक दर्शन का प्रश्न है, इसका संबंध अनुभव की निश्चित, गैरशर्तयुक्त एवं पूर्ण समझ से होता है । उनका मानना रहा है कि दर्शन अनुभव की अवधारणा एवं उसकी परिधि से बाह्य किसी रहस्यमयमूर्त को लेकर नहीं चलता है। वरन् यह मानव अनुभव की समग्रता का एक निश्चित एवं पूर्ण सुसंगत विवेचन प्रस्तुत करता है। ऑकशॉट के अनुसार दर्शन के मूलत: दो लक्ष्य होते हैं अनुभव की पूर्णता को समझना एवं अनुभव को एक पूर्ण के रूप में समझना । जहां तक प्रथम लक्ष्य – अनुभव की पूर्णता का संबंध है, ऑकशॉट का मानना है कि अनुभव का प्रत्येक पक्ष अन्य पक्षों से काफी निकटता से जुड़ा होता है तथा उस व्यापक पूर्णता के बिना इसे पूरी तरह समझा नहीं जा सकता है । अगर इसको पूर्ण से अलग किया जाता है तो इसको अपने स्वरूप से वंचित एवं विकृत करना होगा । अत: अगर हम अनुभव के किसी पक्ष को देखना चाहते हैं तो उसके लिए हमें अनुभव की समग्रता को देखना होगा । ऑकशॉट के अनुसार दर्शन अनुभव की इसी समग्रता को लेकर चलता है । दर्शन का द्वितीय लक्ष्य न केवल अनुभव पूर्णता का समझना है, वरन् 'अनुभव के रूप में उसे समझना है । अर्थात दर्शन का लक्ष्य पूर्ण के दृष्टिकोण के अनुभव को समझना है न किसी विशिष्ट भाग या पक्ष से । ऑकशॉट के अनुसार प्रत्येक सीमित दृष्टिकोण अनुभव को विकृत करता है।

अत: स्पष्ट है कि ऑकशॉट के अनुसार दर्शन का लक्ष्य अनुभव की समग्रता का विवेचन करना है, जो कि गैरशर्तयुक्त, निश्चित एवं पूर्ण होता है । अनुभव के प्रति अपनाया जाने वाला कोई भी सीमित दृष्टिकोणों इसके स्वरूप को विकृत करता है । ऐसे दृष्टिकोणों को ऑकशॉट ने विधियां/ रीतियां (modes) की संज्ञा दी है । ये विधियां अनुभव की समग्रता के किसी एक विशिष्ट पक्ष को लेकर चलती है । दूसरे शब्दों में, ये विधियां अनुभव की समग्रता के आंशिक एवं सीमित बिंदु का विवेचन करती हैं । ऑकशॉट ने ऐसी तीन विधियों – व्यवहार, इतिहास एवं विज्ञान को लिया है । कालान्तर में चलकर वे इनमें कविता को और जोड़ देते हैं । ऑकशॉट का मानना है कि प्रत्येक विधि विचारों की अपनी एक विशिष्ट प्रकार के यथार्थ की कसौटी, अन्वेषण की पद्धति. विवेचन का तरीका एवं निष्कर्ष पर पहुंचे के रास्ते को लेकर चलती

है । यह अनुभव की समग्रता का अपने स्वयं की परिभाषाओं के अनुरूप विवेचन करती है । अत: यह वांछनीय होगा कि हम संक्षेप में यह देखें कि प्रत्येक विधि की अपनी अन्वेषण की कसौटी एवं उसकी अनुभव के संदर्भ में क्या सीमायें हैं ।

4. विधि अन्वेषण की कसौटी

प्रथम, व्यावहारिक विधि अनुभव को इच्छा के संदर्भ में लेती है । इसके, अनुसार व्यक्ति अपने आंप में अन्तर्विष्ट होता है एवं इसको अन्य विश्व तथा अन्य स्वों से आसानी से अलग किया जा सकता है । इस दृष्टिकोण के अनुसार मनुष्य आवश्यक रूप से इच्छाओं एवं आवश्यकताओं का प्राणी है । यह विधि मनुष्य की समग्रता को 'स्व ', अन्य परिवर्तन, इच्छा, अच्छा, बुरा. चाहिये, खुशी एवं दु :ख की अवधारणाओं के संदर्भ में समझने का प्रयास करती है।

द्वितीय इतिहास, अनुभव की समग्रता को भूत के संदर्भ में परिभाषित करता है । यह विधि उन सिद्धान्तों पर आधारित होती है, जिनका मानना है कि परिवर्तन वास्तविक है । प्रत्येक घटना कुछ अन्य घटनाओं से जुड़ी होती है । अत : एक घटना को अन्य घटनाओं से अलग नहीं किया जा सकता है । जैसा कि ऑकशॉट ने लिखा है कि ' 'एक इतिहासकार का कार्य भूतकालीन व्यवहार को समझना है । उसका यह दृष्टिकोण होता है कि अब जो घटनायें घट रही है, उसे आज के संदर्भ में नहीं समझ सकते है । इतिहासकार का काम, कर्म एवं घटना के व्यावहारिक मुहावरे को ऐतिहासिक मुहावरे में बदलना है ।''

तृतीय, वैज्ञानिक विधि अनुभव को संख्यात्मकता के संदर्भ में परिभाषित करती है । इसके अनुसार अनुभव को न तो इच्छाओं एवं आवश्यकताओं के संबंध में और न ही घटनाओं की अस्थिरता एवं विशिष्टता के संदर्भ में देखा जा सकता है । ' विज्ञान का लक्ष्य ज्ञान का एक निरपेक्ष, स्थिर एवं संचारणीय सिद्धान्त विकसित करना है । अत : यह आवश्यक रूप से अनुभव की समग्रता को गणित की दृष्टि से व्याख्या किये जाने वालो नियमों में एवं सांख्यिकीय सामान्यीकरण तक सीमित कर देती है ।' ज्ञान की इस प्रकार की खोज अपनी स्वयं की संरचनात्मक अवधारणाएं एवं विश्लेषण की पद्धतियां विकसित कर लेती है ।

चतुर्थ, ऑकशॉट ने उपर्युक्त तीन विधियों के अलावा एक अन्य विधि कविता को माना है । कविता का संबंध मननशीलता एवं आनन्दप्रदता से है । अत : कविता का कार्य विभिन्न प्रकार के बिम्बों के निर्माण से जो कि मुख्यत : सौदर्न्य बोध से जुड़े होते हैं । ऑकशॉट का मानना है कि कविता के इन बिम्बों का किसी तत्व, अन्वेषण एवं वांछनीयता से कोई संबंध नहीं होता है वरन् ये सौन्दर्य बोध की संतुष्टि करते है । यह शब्दों द्वारा भी हो सकती है और चित्र कला, मूर्ति–कला एवं भवन–निर्माण–कलां द्वारा भी हो सकती है ।

ऑकशॉट का मानना है कि प्रत्येक विधि तीन विशेषतायें लिये होती है । प्रथम, वह अपने आप में सजातीय होती है । सजातीय इसीलिए क्योंकि इसकी संरचनात्मक अवधारणाओं में विचारों की तार्किक सुसंगता होती है । यह दूसरे के साथ एवं अपने आधार तत्वों में समरूपता लिए होती है । द्वितीय, प्रत्येक विधि अपने आप में. अन्तर्विष्ट होती है । प्रत्येक

विधि की कसौटियां एवं पद्धतियां अपने उद्देश्य के लिए पर्याप्त होती है एवं उन्हें किसी बाहरी सहायता की आवश्यकता नहीं होती है । तृतीय, प्रत्येक विधि अप:ने आप में सम्प्रभु होती है । दूसरे शब्दों में, प्रत्येक विधि विचारों की अपनी स्वयं की दुनियां में संप्रभु होती है और यह अन्य विधियों से पूर्णत: अलग होती है । जिस तथ्य को एक वेधि लेकर चलती है वह अन्यों के लिए कुछ भी नहीं होती है । उदाहरण के लेए, व्यावहारिक विधि का जिस विश्लेषण की पद्धति एवं कसौटियों से संबंध है उसका ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक विधियों से कोई संबंध नहीं है । अगर हम एक विधि की पद्धतियों एवं कसौटियों को दूसरी विधिं में लागू करेंगे तो यह एक गलती होगी ।

अत: स्पष्ट है कि प्रत्येक विधि/रीति अनुभव के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण लेकर चलती है और उस दृष्टिकोण में अन्य दृष्टिकोण का कोई महत्व नहीं होता है । अत: ऑकशॉट का मानना रहा है कि प्रत्येक विधि भनुभव का एक सीमित दृष्टिकोण लेकर चलती है । इससे अनुभव का परिसीमन होता है एवं वह विकृत हो जाता है । अत: इन विधियों को दर्शन की संज्ञा नहीं दी सकती है । दर्शन अनुभव की समग्रता को लेकर चलता है । दूसरी तरफ, अगर हम अनुभव की व्यावहारिक, ऐतिहासिक एवं संख्यात्मक ब्यख्या को लेकर चलेंगे तो वह विवेचना दर्शन की नहीं वरन् ववहार, इतिहास एवं विज्ञान की होगी ।

5. मानव प्रकृति तथा अनुभव का ऐतिहासिक संदर्भ

अब हम राजनीतिक दर्शन के प्रति अपनाए गए ऑकशॉट के दृष्टिकोण का विवेचन करने का प्रयास करेंगे । उन्होंने अपनी प्रारंभिक रचना ‘Experience and Its Modes’ में राजनीतिक दर्शन के बारे में बहुत कम लिखा है । ऑक शॉट का अपने राजनीतिक दर्शन का विवेचन हॉब्स के लेवियाथन की प्रस्तावना, ‘पोलिटिका एवं क्रेम्बिज जर्नल ' नामक पत्रिकाओं में लिखे गए लेखों तथा उनके लन्दन स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स में दिए गए उद्घाटन भाषण में करते हैं । इन लेखों में से कई कालान्तर में. उनकी पुस्तक ‘Reationalism in Politics’ में संकलित किए गए । ऑकशॉट ने राजनीतिक दर्शन की प्रकृति के तीन पक्षों – अवधारणात्मक विश्लेषण, मनुष्य की प्रकृति एवं सांसारिक नियति के शाश्वत पक्षों का विवेचन और आलोचनात्मक अन्वेषण का विवेचन किया है ।

प्रथम, राजनीतिक दर्शन के प्रथम पक्ष का विवेचन करते हुए ऑकशॉट ने लिखा है कि राजनीतिक दर्शन का लक्ष्य राजनीति की परिभाषा एवं उसकी अवधारणाएं प्रदान करना है । यह राजनीतिक गतिविधियों की विशिष्ट विशेषताओं की व्याख्या तथा उनकी संरचनात्मक अवधारणाओं का विश्लेषण करता है । चूंकि राजनीति अनुभव की समग्रता का एक पक्ष है । अत: राजनीति का विश्लेषण करना है एवं उसका अवधारणात्मक स्वरूप प्रदान करना है ।

द्वितीय, ऑकशॉट के अनुसार राजनीतिक दर्शन का एक अन्य पक्ष या कार्य मानव प्रकृति एवं उसकी सांसारिक नियति का विवेचन तथा समसामयिक सभ्यता का आलोचनात्मक विश्लेषण करना भी है । राजनीतिक दर्शन का यह पक्ष हॉब्स के लेवियाथन की प्रस्तावना (यह प्रस्तावना ऑकशॉट ने लिखी है) में देखने को मिलता है । ऑकशॉट का मानना है कि राजनीतिक दर्शन राजनीति एवं शाश्वतता के मध्य संबंध स्थापित करता हैं तथा उसका लक्ष्य

मानव प्रकृति एवं उसकी क्षमताओं का सिद्धान्त विकसित करना है । अत राजनीतिक दर्शन मानव प्रकृति एव उसकी नियति के शाश्वत पक्षों से जुड़ा होता है । एक राजनैतिक दार्शनिक एक विशिष्ट युग में जीता है एवं तात्कालिक सभ्यता का उस पर प्रभाव दिखना स्वाभाविक होता है । अत वह मानव प्रकृति एवं उसकी नियति के इन शाश्वत पक्षों में कुछ संशोधन एवं नए आयाम जोड़ता रहता है । यहां यह उल्लेख करना वांछनीय होगा कि ऑकशॉट ने विचारधारा को पूर्णत अस्वीकार कर दिया है । विचारधारा एवं राजनीति की तुलना करते हु ए ऑकशॉट ने लिखा है कि विचारधारा हमें बनावटी शाश्वतता की तरफ धकेल देती है । विचारधारा में एक नरकयुक्त नागरिक जीवन–समाज के निर्माण की संभावना छुपी रहती है जबकि दावा स्वर्ग का करती है । दूसरी तरफ किसी भी प्रमुख राजनीतिक दार्शनिक ने यह दावा नहीं किया है कि मानव परिवेदनाओं से मुक्ति अकेले राजनीतिक गतिविधियों द्वारा पाई जा सकती है । डी॰एफ़ ऑकशॉट ने राजनीतिक दर्शन को एक आलोचनात्मक अन्वेषण के रूप में भी माना है । राजनीति को समझने के लिए विभित्र कारक जैसे आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, मनोवैज्ञानिक, नैतिक आदि अपनी प्रभावी भूमिका के परस्पर विरोधी दावे प्रस्तुत करते हैं । अत: एक भ्रांति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । ऑकशॉट का मानना है कि इन परस्पर विरोधी दावों की जांच, करने हेतु राजनीतिक दर्शन एक कसौटी प्रदान करता है जिसमें हम यह जान पाते हैं कि दावों की सापेक्ष स्थिति क्या है । कालान्तर में चलकर राजनीतिक दर्शन का यह पक्ष एक बार फिर उनकी पुस्तक ' Rationalism in Politics' में दिखायी देता है । यहां ऑकशॉट का मानना है कि राजनीतिक दर्शन एक पराश्रित एवं द्वितीय श्रेणी की गतिविधि है जिसका संबंध राजनीतिक अवधारणाओं का विश्लेषण करना, राजनीतिक सोच से संबंधित असत्यताओं को सही करना तथा राजनीति के अन्वेषण की विभिन्न पद्धतियों की गलतियों का पता लगाना एवं उनको सही करना है ।

6. ऑकशाट के चिन्तन में इच्छा तथा मानव व्यवहार का संगठन पक्ष

ऑकशॉट अपने राजनीतिक दर्शन की विशय–वस्तु की शुरुआत हॉब्स, रूसो, काण्ट तथा हीगल की भांति इच्छा या स्वतंत्रता से करता है । इसी कारण ऑकशॉट द्वारा अपनी पूर्ववर्ती रचना में हॉब्स की इसलिए प्रशंसा की गई है कि उसने इच्छा को राज्य का आधार बनाया । ऑकशॉट का मानना है कि राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में हॉब्स पहला विचारक था जिसने इच्छा, व्यक्तिगत इच्छा को राज्य का आधार माना है । हॉब्स के अनुसार विवेक हमेशा परिकल्पनात्मक होता है और वह कभी भी स्पष्ट नहीं होता है । अत: यह कर्तव्यों एवं दायित्वों को लागू करने में असमर्थ होता है । एक औचित्यतायुक्त सत्ता व्यक्तियों की इच्छा एवं सहमति पर ही निर्भर कर सकती है । साथ ही, ऑकशॉट ने हॉब्स द्वारा इच्छाशक्ति का कोई सुसंगत सिद्धान्त प्रस्तुत न कर पाने के कारण उसकी आलोचना की है । हॉब्स के राजनीतिक दर्शन की इस कमी की पूर्ति के करने के लिए एक तरफ वह रूसो की सामानय इच्छा का सिद्धान्त, हीगल की विवेकीय इच्छा का सिद्धान्त एवं बोसांके की वास्तविकता इच्छा के सिद्धान्त का उल्लेख करता है तो दूसरी तरफ अपनी पुस्तक ' On Human Conduct ' के प्रथम

अध्याय में वह स्वयं भी यही प्रयास करता दिखाई देता है । ऑकशॉट ने स्वतंत्रता को सभी मानवीय व्यवहार की औपचारिक शर्त के रूप में माना है । साथ ही उसने स्वतंत्रता को विचारशील चेतना के संदर्भ में भी लिया है । 'मानव व्यवहार स्वतंत्र है, क्योंकि वह बुद्धि की अभिव्यक्ति के प्रदर्शन के रूप में पहचाना जाता है । '

ऑकशॉट ने अपनी स्वतंत्रता की मान्यता को व्यवहार (Practice) के साथ रखकर देखने का प्रयास किया है । व्यवहार आचरण के ऐसे नियमों एवं सिद्धान्तों का समूह है जो कि व्यक्तियों को एक साथ रहने एवं उनकी आपसी अंत:क्रिया को संभव बनाता है । अत: वह मानव कर्म एवं संबंधों को नियंत्रित करता है । जैसा कि ऑकशॉट ने लिखा है कि 'एक व्यवहार को सोच–विचार, ढंगों, प्रयोगों, रीति–रिवाजों, प्रथाओं, सूत्रों, सिद्धांतों, नियमों के समूह के रूप में पहचाना जा सकता है। .. मानव कर्म एवं अभिकथन से संबंधित दायित्वों एवं कर्तव्यों का उल्लेख करता है । ऑकशाँट ने व्यवहार के दो रूप यंत्रीय/सहायक कारक या विवेकीय तथा नैतिक व्यवहार बताए हैं । यंत्रीया सहायक कारक या विवेकीय व्यवहार वह होता है जो किसी विशिष्ट उद्देश्य या उद्‌यम में सहायक कारक होता है । ये व्यवहार 'कार्य सम्पादन ' की सफलता में वृद्धि हेतु बनाए जाते हैं ।... इनकी कल्पना संतुष्टि प्राप्ति हेतु की जाती है एवं चाही गई उपलब्धि में यह एक सहायक कारण होता है । ऑकशॉट ने इसमें कार्यालय दिनचर्या, पेस्टि तैयार करने के नियम, अर्थव्यवस्था की प्रबंध व्यवस्था, अस्पताल. सेना, ऑरकेस्ट्रा स्कूल आदि को यंत्रीय/सहायक कारक या विवेकीय व्यवहार का उदाहरण माना है । जबकि इससे पूर्णत: भित्र नैतिक व्यवहार सारभूत चाह की संतुष्टि में सहायक कारक नहीं–होता है, यह तो उन दशाओं का निर्धारण करता है जिनकी सारभूत चाह की संतुष्टि हेतु पूर्ति की जानी चाहिए । ऑकशॉट ने नैतिक व्यवहार को ' The Ars Artium Conduct' तथा 'व्यवहारों का व्यवहार ' की संज्ञा दी है । दोस्ती, पड़ौसत्त्व, सामान्य भाषा के प्रवक्ता तथा इतिहासकारों एवं केमेस्टों के संघों को इस श्रेणी में रखा गया है ।

ऑकशॉट का मानना है कि जिस तरह व्यवहार दो तरह के होते हैं उसी तरह उन पर आधारित मानव संघ भी दो प्रकार के होते हैं । प्रथम, उद्‌यमी/प्रयोजनार्थ मानव संघ जो कि सामान्य उद्देश्य पर आधारित होते हैं । द्‌वितीय, नैतिकता पर आधारित संघ जो कि सामान्य व्यवहार की सर्वव्यापक सत्ता पर आधारित होते हैं । ऑकशॉट का मानना है कि उद्‌यमी/प्रयोजनार्थ संघ के सदस्य सामान्य उद्देश्य या सामान्य हितों की पूर्ति के संदर्भ में एकत्र होते हैं । ये सभी अपने सामान्य उद्देश्य की पूर्ति, सामान्य उद्‌यम एवं व्यापार को बढावा, सामान्य हितों का संरक्षण या सामान्य दुश्मन का भय आदि सामान्य लक्ष्य लेकर चलते हैं । इन संघों का उद्देश्य सरल भी हो सकता है एवं जटिल भी । इसके सदस्यों का आपसी संबंध निकट का भी हो सकता है तथा दूर का भी । किन्तु जो चीज इनको दूसरे प्रकार के संघों से भिन्न करती है, वह है उनका सामान्य लक्ष्य, जिसकी वे पूर्ति करना चाहते हैं । हालांकि इस तरह के संघ से ये पूर्णत: भिन्न होते हैं । ये सर्वमान्य स्वीकृति के आधार पर एक साथ रहते हैं न कि सामान्य उद्देश्य के आधार पर । इनके सदस्यों को सत्ता की मान्यता मंजूरी जैसी कोई सामूहिक हिस्सेदारी नहीं होती है । वे इस बात के लिए पूर्णत: स्वतंत्र होते हैं कि वे अपनी

इच्छानुसार अपने सारभूत उद्देश्य को चुनें । उदाहरण के लिए दो दोस्त आपस में कुछ सामान्य निष्ठाओं से जुड़े होते हैं न कि सामान्य उद्देश्य की पूर्ति हेतु । हालांकि यहां यह स्पष्ट करना वांछनीय होगा कि ऑकशॉट ने कहीं भी सामान्य उद्देश्य एवं सारभूत उद्देश्य में कोई स्पष्ट अन्तर नहीं किया है । साथ ही दोनों प्रकार के संघों में बहुत सी समान विशेषताएं होती है किन्तु वे अपने संघ की रीति एवं उस आधार पर जिस पर वे बने होते हैं गुणात्मकरूप से भिन्न होते हैं ।

ऑकशॉट का मानना है कि– नागरिक (civil) संघ नैतिक व्यवहार पर आधारित संघ होता है । दूसरे शब्दों में, उन्होंने नागरिक संघ को एक नैतिक संघ के रूप में लिया है । ऑकशॉट ने निम्न कारणों से नागरिक संघ को उद्यमी / प्रयोजनार्थ संघ मानने से इनकार कर दिया है ।

प्रथम, यह पता लगाना बहुत मुश्किल है कि कौन से उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु नागरिक संघ अस्तित्व में है । ऑकशॉट इस बात को पूर्णत: अस्वीकार करता है कि कई ऐसे सामान्य उद्देश्य हैं जो कि पर्याप्त रूप से नागरिक संघ का उल्लेख कर सकें । यहां तक कि 'शांति' एवं 'सुरक्षा' भी इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकती है क्योंकि ऑकशॉट इन्हें कतई सारभूत उद्देश्य नहीं मानता है । ऑकशॉट का मानना है कि शांति एवं सुरक्षा भी खुशी एवं श्रेष्ठता की भांति बहुत ही सामान्य है एवं किसी कर्म के निर्देशन को सक्षम बनाने वाले उद्देश्यों को तय करने में असमर्थ है ।

द्वितीय, ऑकशॉट का मानना है कि अगर सिविल एसोसिएशन प्रयोजनार्थ संघ होगा तो वह समान सदस्यों का संघ नहीं होगा । इसके सदस्यों में महत्त्व के अनुसार भिन्नता होगी तथा सामान्य उद्देश्यों में किए गए योगदान के अनुसार उनके अधिकारों एवं दायित्वों में भी भिन्नता होगी ।

तृतीय, अगर सिविल एसोसिएशन उद्यमी/प्रयोजनार्थ संघ होगा तो यह अपने से भिन्न उद्देश्यों को लेकर चलने वालों को सहन नहीं करेगा । इसी आधार पर ऑकशॉट ने यह निष्कर्ष निकाला कि उद्यमी/प्रयोजनार्थ नागरिक संघ अपनी प्रकृति में अनिवार्य रूप से अधिनायकवादी होते हैं । एक उद्देश्य आधारित राज्य में उसके नागरिक राज्य के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु प्रयोग में आने वाले स्रोतों के अतिरिक्त न कुछ होते है और न कुछ हो सकते हैं । '

चतुर्थ, ऑकशॉट का मानना है कि अगर नागरिक संघ प्रयोजनार्थ संघ होंगे तो यह व्यवस्थापकों, भूमिका निवार्हकर्ताओ एवं प्रयोजनार्थ नियमों से बना होगा न कि शासकों, नागरिकों, एवं कानूनों से । ऐसी स्थिति में यह अन्तर करना बहुत कठिन होगा कि ऐसा संघ एक फैक्टरी, व्यापारिक प्रतिष्ठान या विकास निगम से कैसे भिन्न होगा? क्या ऐसे संघ को नागरिक संघ की संज्ञा दी जा सकती है?

पंचम, ऑकशॉट का मानना है कि उद्यमी/प्रयोजनार्थ संघ अपने स्वरूप में सिविल संघ की भांति अनिवार्य नहीं हो सकते हैं । दूसरे शब्दों में, प्रयोजनार्थ संघ स्वैच्छिक होते हैं । यह उसके सदस्य पर निर्भर करता है कि वह अपने उस विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए उस संघ का सदस्य बने या नहीं । प्रयोजनार्थ संघ को अनिवार्य बनाने का तात्पर्य व्यक्तियों को उसकी

स्वतंत्रता एवं सत्ता, जो कि उसकी आवश्यक दशा है, से वंचित करना है । 'एक अनिवार्य प्रयोजनार्थ संघ स्वयं में विरोधाभासी होते हैं।' इसी कारण ऑकशॉट ने राज्य को उद्यमी/प्रयोजनार्थ संघ मानना अस्वीकार कर दिया । राज्य आवश्यक रूप से एक अनिवार्य संघ है। यह (राज्य) अपने सदस्यों की नैतिक स्वायत्तता से समझौता किए बिना प्रयोजनार्थ संघ नही हो सकता है । चूंकि हम राज्य पर आगे चलकर विवेचना करेगें, अत: यहां हम नागरिक संघ की प्रकृति पर ही विवेचना करेंगे ।

ऑकशॉट का मानना है कि सिविल एसोसिएशन कोई अस्पष्ट एवं अनिर्धारक व्यवहारों से नहीं बना होता है । वह नियमों की पूर्णता है । ऑकशॉट ने नागरिक संघ को नियमयुक्त संघ की संज्ञा दी है । विचारकों में इस बात पर मतभेद पाया जाता है कि नैतिक व्यवहार को जब पूर्णत: नियम में बांध दिया गया है तो उसकी नैतिकता में कमी आती है या उसका परिसीमन हो जाता है । प्रथम तर्क के विचारकों, विशेषकर ऑँस्पिटी. का मानना है कि नियमों, जो कि मृतप्राय: कोड होते हैं, से संबद्ध होने के कारण नागरिक संघ नैतिकता से दूर चला जाता है । जबकि दूसरे विचारक. फ्रेन्को इससे भिन्न मत अपनाते हैं । उनका. मानना है कि 'नियमों को, जिनसे कि नागरिक संघ बना है, नागरिकता के परिसीमन के रूप में नहीं स्वीकार करना चाहिए । नागरिक संघ को एक वास्तविक नैतिकता एवं जीवित 'परम्परा के रूप में स्वीकार करना चाहिए न कि एक संक्षेपण या संहिता के रूप में ' । नागरिक संघ को बनाने वाले नियम विभिन्न प्रकार के होते हैं । कुछ नियम सत्ता के पद से संबंधित होते हैं और यही संविधान की शक्तियों, दायित्वों, प्रक्रियाओं की रीतियों आदि को तय करते हैं । कुछ व्यवस्थात्मक सत्ता द्वारा तय किए जाते हैं, जिन्हें ऑकशाँट ने लेक्स (Lax) की संज्ञा दी है । कुछ नियम ऐसे होते है जो लेक्स तथा सत्ता के पद से संबंधित प्रावधानों को बदलने वाले होते हैं । ऑकशॉट के नियमों की इस व्यवस्था को रेस्पब्लिका (Respublica) की संज्ञा दी है । ऑकशॉट का मानना है कि सिविल एसोसिएशन रेस्पब्लिका की सत्ता की सामान्य स्वीकृति द्वारा तय होते हैं। जैसा कि ऑकशॉट ने लिखा है कि 'जो नागरिक को एक दूसरे से जोड़ते हैं तथा नागरिक संघ को तय करते हैं वह रेस्पब्लिका की सत्ता की स्वीकृति है । इस स्वीकृति को नागरिक एक दायित्व के रूप में स्वीकार करते हैं ' नियमों की इस व्यवस्था (रेस्पब्लिका) में ऑकशॉट ने लेक्स को सबसे ज्यादा महत्त्व दिया है क्योंकि यह एक तरफ नागरिक संघ का आधार तैयार करते है तो दूसरी तरफ सर्वोच्च कानून निर्मात्री सत्ता द्वारा तय किए जाते हैं । भिखु पारीख के शब्दों में, 'ये नागरिक संघ के लिए अनुपम है एवं उसका एकमात्र आधार है । लेक्स केवल नियमों का समूह नहीं वरन् ये नियमों की अपने आप में अंतविष्ट एवं आन्तरिक रूप में समन्वय की व्यवस्था है जो कि उद्यतम् कानून निर्मात्री सत्ता द्वारा बनाए जाते हैं । यह नागरिकों के अधिकारों एवं दायित्वों का विवेचन करती है तथा असंबद्ध नागरिकों को एकत्रित करती है लेक्स व्यवहार के नियमों को तय करते हैं... लेक्स की आज्ञा का पालन या उसकी अवज्ञा नहीं होती बल्कि उनको मान्यता प्रदान करना या मान्यता प्रदान नहीं करना ही विकल्प होता है ।'

ऑकशॉट के अनुसार लेक्स को मानना नागरिक का दायित्व है क्योंकि ये स्थापित प्रक्रियाओं के अनुसार अधिकृत व्यक्तियों द्वारा बनाए जाते हैं । अत: उनको मानना एक दायित्व है । ऑकशॉट का मानना है कि नागरिक द्वारा इनकी मंजूरी या अनुमोदन की जरूरत नहीं होती है । यह माना जाता है कि वे सही एवं अच्छे होंगे । केवल इनकी सत्ता की स्वीकृति एवं उसका अनुपालन जरूरी होता है । लेक्स की मंजूरी या नामंजूरी से कोई अन्तर नहीं पड़ता है । 'नियम की नियम के रूप में अस्वीकृति उनके अनुमोदन या अनुमोदन न करने की स्वीकृति नहीं है । किसी नियम नैतिक का बाध्यताकारी स्वरूप इसलिए खत्म नहीं हो जाता है कि उसका अनुमोदन नहीं हुआ है । नियम की नियम के रूप में स्वीकृति उसकी सत्ता के संदर्भ में नियम की स्वीकृति है । ' लैक्स को यह प्रदर्शित करने की जरूरत नहीं है कि वे अच्छे हैं एवं उन्हें जन समर्थन मिलना चाहिए । ऑकशॉट का मानना है कि 'ये नियम आन्तरिक रूप से प्रतिबन्धात्मक होते हैं और उनके लिए किसी बाहरी सहायता की जरूरत नहीं होती है । अगर नागरिक शासक इनके अनुपालन के लिए बाहरी सहायता लेते हैं, जैसे इनके गुणों की व्याख्या करके नागरिकों को मनाना, यह बताना कि उनसे अच्छी चीज सामने आयेगी या डराना, फुसलाना, रिश्वत देना एवं कोई समझौता करना, तो वे शासक के रूप में खत्म हो जाते हैं एवं मैनेजर मात्र बन जाते हैं । अनुनय – विनयकरि नेतृत्व की कला सिविल संघ को भ्रष्ट कर देती है अत: इसका इसमें कोई स्थान नहीं है ।'

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम दो निष्कर्ष निकाल सकते हैं । प्रथम, ऑकशॉट का मानना है कि नियम की सत्ता नागरिकों की सतत् स्वीकृति पर निर्भर करती है और यह स्वीकृति दायित्वों के निर्वाह में नहीं वरन् दायित्वों को मान्यता प्रदान करने में अभिव्यक्ति होती है । अगर नागरिक नियमों को मान्यता प्रदान करने से मना कर दें तो उनकी सत्ता स्वत: खत्म हो जाती है । द्वितीय, नियमों को मानना आवश्यक है । नागरिकों को उनके मूल्यांकन एवं अनुमोदन या मंजूरी की जरूरत नहीं पड़ती है । अगर नागरिक नियमों का मूल्यांकन करना, उनकी आलोचना करना एवं उनको बदलना चाहें तो वे इसके लिए व्यवस्थापिका की सत्ता राजनीति को प्रभावित कर सकते हैं, जिसे ऑकशॉट ने राजनीतिक विचार–विमर्श की संज्ञा दी है। किन्तु ऑकशॉट का मानना है कि इस तरह के राजनीतिक विचार–विमर्श को नागरिक आयामों तक सीमित रहना चाहिए । ऑकशॉट इसकी वांछनीयता एवं न्यायोचितता को कोई महत्त्व नहीं देता है, क्योंकि उनकी नागरिक संघ की अवधारणा में नागरिक सत्ता सबसे महत्त्वपूर्ण अभिधारणा या आधारतत्त्व है जिसका वांछनीयता, उपयोगिता, विवेकशीलता, न्यायोचित आदि से कोई संबंध नहीं है । अत: ऑकशॉट ने ऐसे राजनीतिक विचार–विमर्श को जिसका लक्ष्य एक पूर्ण समाज या मानवता की अच्छाई, समुदाय का हित आदि हो, अस्वीकार किया है, क्योंकि उसके अनुसार सिविल एसोसिएशन अपने आप में उद्यमी प्रयोजनार्थ संघ नहीं है । ऑकशॉट के अनुसार नागरिक नैतिकता व्यक्तिगत एवं सामाजिक नैतिकता से भिन्न होती है । साथ ही यह स्वायत्त भी होती है । इसका संबंध केवल मानव व्यवहार के नागरिक पक्ष से ही होता है ।

यहां स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि जब नागरिक सत्ता को उसके अनुमोदन एवं वांछनीयता के पक्ष से अलग कर दिया गया है तो क्या यह व्यक्ति की नैतिकता स्वयत्तता को चुनौती एवं खतरा नहीं है? ऑकशॉट ने स्वयं इस आशंका को दूर करते हुए लिखा है कि नागरिकता सत्ता एवं दायित्व की धारणा में व्यक्ति की नैतिक स्वायत्तता से कतई ही कोई समझौता नहीं होता है । इसके उन्होंने दो कारण बताए हैं । प्रथम, नागरिक सत्ता 'लेक्स ' से जुड़ी होती है और लेक्स कोई ऐसे आदेश नहीं होते हैं कि उनकी अनुपालना हो ही । ऑकशॉट के अनुसार नागरिक कानून (Voluntas) नहीं वरन् 'लेक्स' है । यह उल्लेख करना वांछनीय होगा कि यहां ऑकशॉट ने नागरिक सत्ता पर हॉब्स की मान्यता से भिन्न मत अपनाया है । हॉब्स ने नागरिक सत्ता के संचालन को इच्छा एवं आदेश से जोड़ा है जबकि ऑकशॉट की नागरिक सत्ता की मान्यता में आदेश का कोई स्थान नहीं है । द्वितीय, रेस्पब्लिका की सत्ता की मान्यता में आदेश का कोई स्थान नहीं है । रेस्पब्लिका की सत्ता की स्वीकृति के उपरान्त भी व्यक्ति की स्वतंत्रता पर कोई अन्तर नहीं पडेगा क्योंकि भविष्य में वह इस बात के लिए स्वतंत्र होगा कि जब उसको यह लगे कि नागरिक सत्ता नागरिक आयामों से दूर जा रही है तो वह अपनी स्वीकृति वापस ले ले ।

7. स्वतंत्रता तथा सत्ता का नैकट्य

इस तरह स्पष्ट है कि ऑकशॉट के चिन्तन में स्वतंत्रता एवं सत्ता का निकट का संबंध है । 'स्वतंत्रता एवं सत्ता. की सहसम्बद्धता का विचार ही ऑकशॉट के राजनीतिक दर्शन का मुख्य आधार है ।' इसी कारण ऑकशॉट आदर्शवादी राजनीतिक दर्शन की परम्परा के काफी नजदीक है । आदर्शवादी विचारक राज्य की सत्ता एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सहअस्तित्व, सत्ता को व्यक्ति की सहमति पर केन्द्रित करके नहीं वरन् सामान्य विवेकीय इच्छा पर केन्द्रित करते हैं । दूसरे शब्दों में, आदर्शवादी राजनीतिक चिन्तन की मूल मान्यता इस धारणा पर आधारित है कि राज्य की सत्ता का अस्तित्व व्यक्तिगत सहमति की अपेक्षा व्यक्ति की इच्छा वास्तविक या विवेकीय इच्छा पर निर्भर करता है । जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है कि ऑकशॉट ने आदर्शवादियों, विशेषकर रूसो, हीगल एवं बोसाके की भांति व्यक्तिगत सहमति के विचार को पूर्णत: अस्वीकार कर दिया है । उन्होंने सभी व्यक्तियों की सहमति का आधार व्यवहार्थ माना है किन्तु ऑकशॉट की इच्छा की मान्यता आदर्शवादियों की भांति वास्तविक या विवेकीय इच्छा नहीं है । ऑकशॉट की सत्ता का वास्तविक एवं विवेकीय इच्छा से संबंध नहीं है । हीगल का विवेचन करते हुए ऑकशॉट ने लिखा है कि वास्तविक इच्छा बहुत ही अस्पष्ट होती है और इससे सत्ता एवं विद्वता में अन्तर करना असंभव हो जाता है ।

राज्य को एक संस्था के रूप में देखते हैं तो उसके तीन आयाम दिखाई देते हैं । प्रथम, यह संघ की विशिष्ट प्रणाली होता है । द्वितीय, यह सत्ता का पद होता है एवं तृतीय, यह सरकारी मशीनरी एवं शक्ति संरचना लिए होता है । प्रथम राज्य की प्रगति से, द्वितीय स्वरूप के आभास से एवं तृतीय इसके अस्तित्व में बने रहने के तरीके से सबंधित होता है किन्तु ऑकशॉट ने राज्य के इन तीनों आयामों में प्रथम आयाम को ही सबसे ज्यादा महत्त्व दिया है क्योंकि इसका स्वरूप इसकी प्रणाली पर निर्भर करता है । दूसरे शब्दों में, अगर राज्य को एक

उद्यमी/प्रयोजनार्थ संघ मानते हैं तो उसकी प्रकृति एक प्रकार की होगी और उसको सिविल एसोसिएशन मानते हैं तो उसकी प्रकृति भिन्न प्रकार की होगी । अत स्पष्ट है कि यही राज्य के स्वरूप को तय करती है और इसी के उदाहरण उसने स्वयं नागरिक समाज के आदर्श स्वरूप को उभारने का प्रयास किया है । ऑकशॉट का मानना है कि आधुनिक राज्य की प्रकृति को लेकर आधुनिक यूरोपीय राजनीतिक विचारक भागों में बंट गए हैं । प्रथम, वे विचारक जो कि राज्य को एक नागरिक संघ के रूप में मानते हैं । इसमें मैकियावली, हॉब्स, लॉक, स्पीनोजा, मोन्टेक्यू,. डी–टोक्यावली, बर्क, काण्ट, फिक्टे एवं हीगल को लेते हैं । केल्विन, बेकन, सेंट साइमन, फॉउरर, सिस्मोंडी, मार्क्स, लेनिन एवं वेबर आदि विचारक एक भिन्न मत अपनाते हैं । इनके अनुसार राज्य एक उद्यमी/प्रयोजनार्थ संघ है । ऑकशॉट का मानना है कि यूरोपीय राज्य पिछली पांच शताब्दियों से तेजी के साथ उद्यमी संघ की तरफ बढ़ रहे हैं । इसके कारणों का विवेचन करते हुए इसमें उसने शासन संयत्र की व्यापकता, प्रभुत्व की मध्यकालीन धारणा का चिरकालीन प्रभाव, औपनिवेशीकरण, युद्ध आदि कारण लिए हैं । लाभ के लिए बनाए जाने वाले ऐसे राज्य को ऑकशॉट ने दासतायुक्त राज्य की संज्ञा दी है । ऑकशॉट का मानना है कि आज सभी साम्यवादी एवं तृतीय विश्व के राज्य इसी श्रेणी में आते हैं । जहां तक उदार लोकतांत्रिक राज्यों का प्रश्न है उनका मानना है कि इनमें लोककल्याणकारी, राज्य की प्रवृत्तियों, उत्पादन की सरकारी दिशा, अर्थ–व्यवस्था का प्रबंध, अनिवार्य सामान्य शिक्षा, रोजगार की गारन्टी के कारण ये राज्य भी तेजी के साथ इस दिशा में बढ़े हैं । ऑकशॉट का मानना है कि आज आधुनिक यूरोप के सभी राज्य इन्हीं दो परस्पर विरोधाभास एवं असंगत रूपों में बंटे हुए हैं । 'एक का आधार स्वतंत्रता है तो दूसरे का दासता । एक स्वयं अपने एवं दूसरे के व्यक्तित्व का सम्मान करता है तो दूसरा ' आधे व्यक्ति ' की अवधारणा को लेकर चलता है जहां स्वयं अपने एवं दूसरे की स्वायत्तता के सम्मान का अभाव होता है । ' ऑकशॉट का मानना है कि राज्य के इन्हीं दो रूपों के कारण आज 'राइट एवं लेफ्ट ', स्वतंत्र उद्यम एवं सामूहिक योजना. प्रतिक्रियावादी एवं प्रगतिशीलता आदि दो पूर्णत: विरोधी विचारधाराओं में सम्पूर्ण विश्व बंट गया है । यहां यह उल्लेख करना वांछनीय होगा कि ऑकशॉट ने स्वयं राज्य को एक नागरिक संघ माना है ।

अत: स्पष्ट है कि ऑकशाँट अपने चिन्तन में नैतिक को प्रमुखता प्रदान करके एक तरफ व्यक्ति एवं सरकार, इच्छा कानून, स्वतंत्रता एवं सत्ता आदि के आपसी विरोध को कम करने में हुए हैं तो दूसरी तरफ उन्होंने नैतिक व्यवहार को नागरिक संघ का आधार प्रदान करके राज्य को नैतिक एवं आदर्शवादी स्वरूप प्रदान कर दिया है ।

8. ऑकशॉट के रूढ़िवादी आग्रह

अब हम राजनीति में विवेकवाद की प्रवृत्ति एवं ऑकशॉट द्वारा की गई उसकी आलोचना तथा उनके रूढ़िवादी आग्रह का विवेचन करने का प्रयास करेंगे । ऑकशॉट का मानना है कि यूरोपीय राजनीति पिछली चार शताब्दियों से राजनीतिक अनुभवहीनता से ग्रसित रही है । यह राजनीतिक अनुभवहीनता हमें नए शासक नए शासक वर्ग एवं नए राजनीतिक समाज में दिखाई देती है । ऑकशॉट के अनुसार राजनीति में विवेकवाद इसी अनुभवहीनता के निराकरण

के फलस्वरूप सामने आया है । इन वर्गों के पास शासन संचालन से संबंधित राजनीतिक शिक्षा का अभाव है एवं उन्हें शासन के कुशल संचालन से लिए सलाह एवं निर्देशन की जरूरत होती है। विवेकवादियों के अनुसार शासन संचालन एक तकनीकी ज्ञान है तथा यह लोक प्रशासन से अधिक नहीं है । इस तकनीकी ज्ञान को किताबों द्वारा सीखा जा सकता है एवं सिखाया जा सकता है । इस ज्ञान को हम यांत्रिक तरीके से प्रयोग में ला सकते हैं । जैसा कि उन्होंने लिखा है 'तकनीकी ज्ञान को पुस्तकों से सीखा जा सकता है । इसे पत्राचार पाठ्य द्वारा सीखा जा सकता है । इसमें अधिकांश को हृदय द्वारा सीखा जा सकता है, रट कर दोहरायाजा सकता है एवं यांत्रिकी तरीके से प्रयोग में लाया जा सकता है । न्यायबद्धता का तर्क इस प्रकार की तकनीक है । संक्षेप में तकनीकी ज्ञान को शब्दों के साधारण अर्थों में सीखा एवं सिखाया जा सकता है । ' विवेकवादियों का मानना रहा है कि व्यावहारिक ज्ञान कोई ज्ञान नहीं होता है । तकनीकी ज्ञान ही ज्ञान का एकमात्र तत्त्व है । व्यावहारिक ज्ञान एक प्रकार की अविद्या है ।

ऑकशॉट का मानना है कि राजनीति में विवेकवाद की प्रवृत्ति ग्रीककाल से हो रही है किन्तु वहां आधुनिक विवेकवादियो की भांति विवेक की प्रभुता का तात्पर्य तकनीकी प्रभुता से कभी नहीं रहा । प्लेटो विवेकवादी था किन्तु उसका द्वन्द्ववाद कोई तकनीक नहीं था । साथ ही, मध्यकालीन स्कोलस्टिक पद्धति में भी कभी तकनीक को प्रभुता नहीं मिली । यहां तो तर्क को भी एक सीमित अर्थ में ही लिया गया । ऑकशॉट के अनुसार राजनीति में विवेकवाद की यह प्रवृत्ति पुनर्जागरण तथा मैकियावली से ही प्रारंभ होती है । मैकियावादी का प्रिंस राजनीति के विज्ञान का एक अच्छा उदाहरण है । प्रिंस में राजनीतिक शिक्षा के उन नियमों एवं आचार संहिताओं एवं तकनीकी का उल्लेख किया गया है जिनका अनुकरण करके नया व्यक्ति भी सफल शासक बन सकता है । किन्तु मैकियावली तकनीकी ज्ञान की सीमाओं से परिचित था । अत: उसने न तो कभी शासन कला को 'लोक प्रशासन ' की श्रेणी में माना और न ही उसने यह कहा कि इसे किताबों द्वारा सीखा जा सकता है । मैकियावली नए शासक को अपनाए जाने वाले आचरणों एवं नियमों एवं संहिताओं की प्रिंस के रूप में किताब प्रदान करता है तो साथ ही वह राजनीति को तकनीकी प्रयोग नहीं वरन् राजनय की कला की श्रेणी में लेता है । उसके अनुसार अन्वेषण की तीन विशेषताएं होती हैं । प्रथम, इसके कुछ नियम होते हैं, जिन्हें सीखा जा सकता है । द्वितीय, इन नियमों का प्रयोग, पूर्णत: यांत्रिक तरीके से होता है । दूसरे शब्दों में, इन नियमों के लिए किसी ज्ञान या बुद्धि की जरूरत नहीं होती वरन् इनका प्रयोग स्वाभाविक रूप से यांत्रिक तरीके से किया जाता है । तृतीय, इन नियमों का प्रयोग सर्वव्यापक होता है । बेकन की भांति ही विचार प्रकट करते हुए डेस्कार्ट्स ने कहा है कि अन्वेषण की तकनीक का लक्ष्य निश्चितता होना चाहिए । अन्वेषण की तकनीक का प्रयोग यांत्रिकी की भांति सर्वव्यापकीय होता है । डेस्कार्ट्स के अनुसार जो निश्चित नहीं है, वह अज्ञान है । उन्होंने ज्यामितीय अन्वेषण पद्धति पर सबसे ज्यादा जोर दिया है । उनका मानना है कि यह पद्धति त्रुटिरहित है । राजनीति में विवेकवाद की यह प्रवृत्ति, विरोधों के उपरान्त थोड़े बहुत परिवर्तनों एवं संशोधनों के साथ, कालान्तर में भी चलती रही ।

ऑकशॉट ने राजनीति में विवेकवाद की इस प्रवृत्ति की आलोचना करते हुए कहा है कि इसे हम न तो सैद्धान्तिक दृष्टि से और न ही व्यावहारिक राजनीति पर पड़ने वाले इसके प्रभाव

के कारण से स्वीकार कर सकते हैं । सैद्धान्तिक दृष्टि से विचार करते हुए ऑकशॉट ने कहा कि ज्ञान को हम दो भागों में बांट सकते हैं । एक को हम तकनीकी ज्ञान कहते हैं । दूसरा व्यावहारिक ज्ञान होता है । जहां तक तकनीकी ज्ञान का प्रश्न है, ऑकशॉट का मानना है कि प्रत्येक कला, विज्ञान तथा व्यावहारिक गतिविधि में एक तकनीक का समावेश होता है । इस तकनीक को नियमबद्ध किया जा सकता है जिसे सीखा जा सकता है, याद किया जा सकता है एवं उसे व्यवहार में क्रियान्वित किया जा सकता है । दूसरे प्रकार का ज्ञान व्यावहारिक ज्ञान होता है । चूंकि इसका अस्तित्व प्रयोग एवं व्यवहार में होता है, अत: इसे न तो नियमबद्ध किया जा सकता है और न ही इसे सीखा या सिखाया जा सकता है । इसे केवल प्रयोग एवं अभ्यास द्वारा अर्जित किया जाता है । इसको अभ्यास द्वारा ही पूरी तरह से प्राप्त किया जा सकता है । ऑकशॉट ने विवेकवादियों के इस आग्रह को कि तकनीकी ज्ञान ही एकमात्र ज्ञान है एवं व्यावहारिक ज्ञान कुछ नहीं होता है एवं वह अज्ञान तथा अविद्या है, की आलोचना करते हुए कहा है कि ज्ञान के इस पक्ष को प्रमुखता देने का तात्पर्य आधे ज्ञान की जानकारी प्राप्त करना है । उनके अनुसार ज्ञान के इन दोनों रूपों में अन्तर तो है किन्तु उन्हें पृथक नहीं किया जा सकता है । प्रत्येक मानव गतिविधि ज्ञान के इन्हीं दो रूपों से सम्बद्ध होती है । उदाहरण के लिए, पाकशास्त्र की कला को हम केवल पुस्तक पढ़कर नहीं जान सकते हैं । एक अच्छे रसोइये के लिए खाना पकाने का व्यावहारिक ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है । यही बात चित्रकारी, संगीत, कविता, आदि कलाओं पर भी समान रूप से लागू होती है । तकनीकी जानकारी एक चीज है एवं व्यावहारिक दक्षता दूसरी । जिस व्यक्ति के पास इन दोनों की जानकारी होती है, वह व्यक्ति ही उस कला में दक्ष हो सकता है । ऑकशॉट ने जोर देकर कहा कि यह बात राजनीतिकी पर भी लागू होती है । राजनीतिक गतिविधियों से– संबंधित ज्ञान तकनीति एवं व्यावहारिक दोनों ही होता है । राजनीतिक ऐं की दोहरी प्रकृति होती है । अत : इसमें तकनीकी ज्ञान को व्यावहारिक ज्ञान से न तो अलग किया जा सकता है और न ही वे एक दूसरे का स्थान ले सकते हैं ।

व्यावहारिक राजनीति पर विवेकवाद के पड़ने वाले प्रभाव की दृष्टि से ऑकशॉट ने तीन कारणों से इसकी आलोचना की है । प्रथम, विवेकवादी राजनीति का आग्रह पूर्णता एवं एकरूपता की राजनीति की ओर होता है । ये दोनों ही स्थितियां एक विचारधारा को उत्पन्न करती हैं । विवेकवादी का निर्देशन इतिहास या भूतकालीन चिन्तन एवं व्यवहार की कोई परम्परा नहीं वरन् विचारधारा करती है । राजनीति में विवेकवादी विरासत की सभी परम्परागत व्यवस्थाओं में अविश्वास प्रकट करता है । वे समाज की इस तरह से पुन: रचना करना चाहते हैं ताकि वह अधिक एकरूपीय, प्रभावी एवं तार्किक बन सके । दूसरे शब्दों में, राजनीतिक शिक्षा के ऐसे किसी प्रारूप को ये स्वीकार करने को तैयार नहीं है जो अपने स्वरूप में विवेकवादी न हो । विवेकवादियों की मान्यता में प्रेरणा, आदत, भावना आदि तत्त्वों का कोई स्थान नहीं है । ऐसी स्थिति में विवेकवादी एक मान्यता को प्रस्तुत करते हैं, जब उसमें असफल हो जाते हैं तो वे दूसरी मान्यता को सामने लाते हैं । फलत: समसामयिक राजनीति तेजी से एक सामान्य विवेकवादी मनोवृत्ति से पतित हो गई है ।

द्वितीय, विवेकवादी राजनीति जानबूझकर आवश्यक मानी गई राजनीति है । इस तरह की राजनीति कभी भी वास्तविक नहीं होती है । यह समाज के कुछ स्थायी हितों को लेकर चलती है । विवेकवादियों के अनुसार इन हितों की विवेक द्वारा व्याख्या होनी चाहिए एवं वह विचारधारा की तकनीक के अनुसार होनी चाहिए । ऑकशॉट का मानना है कि तकनीक के इन नियमों को मान करके हम भविष्य की किसी समस्या का समाधान नहीं कर सकते हैं । भविष्य में आने वाली समस्याएं लिखे शब्दों–तकनीकी के नियमो–के अनुरूप हों, वह कोई जरूरी नहीं है।

तृतीय, विवेकवादी विचारक राजनीति के विज्ञानवाद के दावे को लेकर चलते हैं । किन्तु इनका विज्ञानवाद इमन से अधिक नहीं है जबकि विज्ञान तकनीकी ज्ञान से अधिक होता है । साथ ही विज्ञानवाद के प्रभाव के कारण ये राजनीतिक विचारक परम्परा एवं रीति–रिवाजों के पूरी तरह के आलोचक बन गए । विवेकवादी परम्परा में केवल एक भ्रम की स्थिति पाता है तथा महसूस करता है कि विवेकीय मानव–प्राणियों का इस तरह जीवन व्यतीत करना कोई अच्छा तरीका नहीं है । विवेकवादी इस मान्यता से पूर्णत: भिन्न मत अपनाते हैं कि चीजें जिस रूप में भूतकाल से हमें प्राप्त हुई हैं उनका अपना एक महत्त्व है । अत: ऑकशॉट ने जोर देकर कहा है कि राजनीतिक जीवन में परम्परा एवं रीति–रिवाजों के प्रभाव को अनदेखा नहीं किया जा सकता है ।

9. मूल्यांकन एवं निष्कर्ष

अत: हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ऑकशॉट गैरविवेकवादी नहीं है वरन् वह विवेकवादियो के सभी प्रकार के ज्ञान को तकनीकी ज्ञान मानने के आग्रह का विरोधी है । विवेकवादियों का विरोध तथा परम्परा एवं रीति–रिवाजों पर जोर दिये जाने के कारण ऑकशॉट को एक रूढ़िवादी विचारक माना गया । नियोजित समाज, 1944 का ब्रिटिश विधेयक तथा महिलाओं के मताधिकार को ऑकशॉट ने ब्रिटिश राजनीति में विवेकवाद की अभिव्यक्ति मानने के कारण उनको टोरी दल का प्रवक्ता एवं उनके लेख 'The Political Economy of Freedom' को विद्वतापूर्ण टोरी पम्फलेट की संज्ञा दी गई है । किन्तु ऐसा है नहीं । ऑकशॉट के बारे में यह धारणा इसलिए बनी क्योंकि वे इसके लिए ब्रिटिश लेबर पार्टी को उत्तरदायी मानते है । उनका मानना है कि ब्रिटिश लेबर पार्टी द्वारा संचालित सामाजिक सुधार आन्दोलन ब्रिटिश परम्परा के अनुरूप नहीं है । विवेकवाद का विरोध एवं परम्परा तथा रीति–रिवाजों पर जोर दिए जाने को राजनीति में रूढ़िवाद या सूचना का अनुसरण (The pursuit of intimation) की संज्ञा दी है । यद्यपि ऑकशॉट ने स्वयं कभी रूढ़िवाद शब्द को पसंद नहीं किया । 'ऑकशॉट ने स्वयं अपने लेख 'On Being Conservative' मे अपने को रूढ़िवादी मानने से इंकार कर दिया । राजनीति में परम्परा एवं रीति रिवाजों को प्रमुखता दिए जाने को ऑकशॉट रूढ़िवाद की बजाय सूचना का अनुसरण कहना अधिक पसन्द करता था । साथ ही ऑकशॉट के चिन्तन के व्याख्याकार ग्रीनलिफ ने भी ऑकशॉट को रूढ़िवादी विचारक मानने से इन्कार किया है । फिर भी, उनके चिन्तन में रूढ़िवादी आग्रह देखा जा सकता है । एक राजनीतिक रूढ़िवादी विरासत मे प्राप्त संस्थाओं के संरक्षण पर जोर देता है । वह इनमें सुधार

उसी अवस्था में करना चाहता है जिसमें उनको स्थिर बनाना आवश्यक हो । उसका सुधार हमेशा परम्परा से जुड़ा रहकर धीमा एवं क्रमिक होता है । राजनीति का कार्य राष्ट्र को विरासत में प्राप्त संस्कृति एवं संस्थाओं को बनाए रखते हुए उनकी पूर्णता का प्रयास करना है । अत एक रूढ़िवादी सभी प्रकार के परिवर्तनों का विरोध नहीं करता वरन् उसका आग्रह प्रचलित प्रारूपों एवं प्रवृत्तियों के अनुरूप धीमे परिवर्तन पर होता है । ऑकशॉट जब परम्परा को राजनीति का आधार एवं उसके निर्देशक के रूप में लेता है तो वह तीन चीजों पर जोर देता है । प्रथम, परम्परा से बाहर के सिद्धान्तों एवं संस्थाओं को लागू न किया जाए । द्वितीय, प्रचलित परम्पराओं के अन्दर ही उनकी सामंजस्यता एवं सुसंगतता में वृद्धि का प्रयास करना चाहिए । अगर प्रचलित प्रारूपों एवं मान्यताओं में संघर्ष हो तो किन्हीं बाहरी सिद्धान्तों एवं संस्थाओं को लागू करके नहीं वरन् उस संघर्ष का उस विशिष्ट समाज की प्रचलित मान्यताओं एवं प्रारूपों के संदर्भ में ही समाधान करना चाहिए । तृतीय, किसी अमूर्त सिद्धान्त द्वारा उत्तर तलाश नहीं करना चाहिए । वरन् अपने स्वयं के की मूर्त जानकारी के संदर्भ में उसका समाधान ढूंढना चाहिए । यह मूर्त जानकारी उस समुदाय की परम्परा से प्राप्त होती है । परम्परा सुधारक की निर्देशक होनी चाहिएँ। यही उसका सही राजनीतिक दिशा–निर्देशन करती है । अत: ऑकशॉट ने उनको 'सूचनाओं का अनुसरण' माना है । यह कला है, विज्ञान नहीं ।

ऑकशॉट ने रूढिवादी की भांति यह निष्कर्ष निकाला कि यदि किसी देश की विशिष्ट परम्पराओं के अनुरूप संस्थाओं को तय नहीं किया गया तो उनकी असफलता निश्चित है । उनकी सफलता को केवल इस आधार पर सुनिश्चित नहीं किया जा सकता है कि संस्थाओं के संचालन के ज्ञान को तकनीकी ज्ञान की 'भाति यंत्रिकी तरीके से लागू किया जा सकता है । बर्क की भांति ऑकशॉट का मानना है कि परम्पराओं की सीमाओं की अनुपस्थिति में मानव प्राणी भावना एवं 'आवेगों के प्राणी है इससे दमनकारी स्थिति उत्पन्न होती है । अत: बर्क की भांति ऑकशॉट का भी निष्कर्ष रहा है कि स्वतंत्रता के लिए परम्पराओं में विरोधाभासों को दूर करने के लिए उनमें सुधार एवं परिवर्तनों पर भी बल दिया जाए किन्तु वे परिवर्तन उस समय की प्रचलित मान्यताओं के अनुरूप होने चाहिए । अत: यह हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ऑकशॉट का रूढिवाद की ओर आग्रह तो रहा, किन्तु वे एक ऐसे सचेत रूढ़िवादी थे जो प्रचलित परम्पराओं के अनुरूप हर परिवर्तन को स्वीकार करते थे ।

10. अभ्यास प्रश्न

1. ऑकशॉट की दर्शन सम्बंधी अवधारणा स्पष्ट कीजिए ।
2. ऑकशॉट द्वारा प्रतिपादित विधि अन्वेषण की कसौटी तथा उसके प्रमुख प्रकार क्या है ? चर्चा कीजिए ।
3. ऑकशॉट के चिन्तन में इच्छा तथा मानव अनुभव व व्यवहार विषय पर एक समीक्षात्मक टिप्पणी लिखिए ।
4. ऑकशॉट के चिन्तन में स्वतंत्रता तथा सत्ता का क्या परस्पर सम्बंध स्थापित है ? चर्चा कीजिए

11. संदर्भ सूची

माइकल ऑकशॉट	:	**एक्सपिरिअन्स एण्ड इट्स मोड्स** (1933)
————————	:	**रेशनालिज्म इन पॉलिटिक्स** (1962)
————————	:	**ऑन ह्यूमन कन्डक्ट** (1975)
भिखु पारेख——————--	:	'दि पोलिटिकल फिलॉसफी ऑफ माइकल ऑकशॉट, **ब्रिटिश जरनल ऑफ पोलिटिकल साइंस**' (1979)
पॉल फ्रेन्को	:	**'माइकल ऑकशॉट इज ए लिबरल थ्योरिस्ट, पोलिटिकल थ्योरी** (1990)
मिलर, कोलमैन कांथॉली	:	**दि.ब्लैकवेल एन्साइक्लोपीडिया तथा रायन (सं.) ऑफ पोलिटिकल थॉट** (1987)
लीलाराम गुर्जर	:	**बीसवीं सदी के राजनीतिक विचारक** (1997)

इकाई 10 – परम्परा, इतिहास तथा राजनीति II : ऐरिक बोगेलिन का वैचारिक संदर्भ

इकाई संरचना

1. उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. राजनीतिक यथार्थ की प्रकृति
4. राजनीतिक यथार्थ के आयाम
   4.1 व्यक्ति
   4.2 समाज
   4.3 इतिहास
5. राजनीतिक यथार्थ की अभिव्यक्ति का साधन: वोगेलिन की प्रतीक योजना
6. दर्शन की पुन: स्थापना का आग्रह
7. मूल्यांकन
8. अभ्यास–प्रश्न
9. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप यह समझ सकेंगे कि–

1. वोगेलिन के विचारों में समाज, राजनीति व दर्शन किस प्रकार चरितार्थ होते हैं ?
2. इतिहास किस प्रकार राजनीतिक–दार्शनिक प्रसंगों को एक समग्र परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है ।
3. राजनीतिक यथार्थ कैसे अभिनिर्मित होता है ? उसकी प्रकृति क्या है ? उसकी अभिव्यक्ति किस प्रकार संभव हो पाती है ? तथा
4. राजनीतिक दर्शन की पुन: स्थापना की दिशा में वोगेलिन का क्या वैचारिक योगदान है?

2. प्रस्तावना

ऐरिक वोगलिन गैर प्रत्यक्षवादी राजनीतिक दर्शन के पुन: जागरण एवं पुन: स्थापना करने वाले विचारकों मे एक महत्त्वपूर्ण विचारक है । उनकी रचनाएं विशेषकर The New Scicence of Politics' 'Science, Politics and Gnosticism' की श्रृंखला इस नई मान्यता का आधार बनी एवं राजनीति विज्ञान की इस मान्यता को पूर्णत अस्वीकार कर दिया कि उसे भौतिक विज्ञानों का दर्जा दिया जा सकता है । वोगेलिन ने एक बार फिर क्लासिकल राजनीतिक दर्शन के सिद्धान्तों एवं पद्धतियों के पुन: जन्म पर जोर दिया । वोगेलिन ऐसी व्यवस्था की खोज का प्रयास करता है जिसमें क्लासिकल दर्शन की मान्यताओं को समुचित

स्थान प्राप्त होता है । वोगेलिन ने सन् 1922 में वियना विश्व– विद्यालय से कानून में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की तथा कुछ समय के लिए प्रोफेसर हान्स केल्सन के सहायक के रूप में काम किया । प्रोफेसर हान्स केल्सन का विशुद्ध कानून का सिद्धान्त समसामयिक प्रत्यक्षवादी विधि शास्त्र तथा कानूनी चिंतन का मुख्य आधार रहा था, किन्तु वोगेलिन की रुचि विशुद्ध कानूनी मान्यताओं की अपेक्षा सामाजिक, ऐतिहासिक एवं दार्शनिक मुद्दों पर रही । फलत: उन्होंने मैक्सवेबर, जो कि बीसवीं सदी के समाजशास्त्रीय चिन्तन का अग्रणी विचारक रहा है, की रचनाओं का गहनता से अध्ययन किया । वोगेलिन द्वारा किया गया मैक्सवेबर का मूल्यांकन, जो कि उनकी पुस्तक ' The New Science of Politics' के प्रथम भाग के रूप में सामने आया, ने उसको एक तरफ समसामयिक चिन्तन की प्रत्यक्षवादी धारणा से दूर रखा तो दूसरी तरफ उसे मानव अस्तित्व के दार्शनिक मत की जडों की खोज की ओर भी प्रेरित किया ।

3. राजनीतिक यथार्थ की प्रकृति

राजनीतिक यथार्थ सम्यूर्ण यथार्थ का एक भाग है । वोगेलिन का मानना है कि संबंधित यथार्थ को सम्पूर्ण यथार्थ नहीं मान सकते हैं वरन् यथार्थ तो एक ही सर्वसमग्र वास्तविकता है जिसमें भाग लेता व्यक्ति स्वयं एक वास्तविकता है । सम्पूर्ण यथार्थ को हम कई उल्लेखनीय चीजों जैसे ईश्वर, व्यक्ति आदि में बाट सकते हैं । ये सभी चीजें उसी तरह वास्तविक हैं, जैसे कि सर्वसमग्र वास्तविकेता में चीजें एक–दूसरे में सहभागिता लिए होती है । व्यक्तियों में यह सहभागिता एक आत्म चेतना का रूप लिए होती है । वोगेलिन ने आत्म चेतना को यथार्थ में मानव सहभागिता के संवेदनशील बिन्दु के रूप में माना है । आत्म चेतना समग्र नहीं है बल्कि समग्र के भीतर की एक प्रक्रिया है । समग्र को हम व्यक्ति के रूप में नहीं जान सकते हैं, हालांकि इसका स्वरूप मिथक (Myth) तथा दार्शनिक सामीप्यता द्वारा जाना जाता है । राजनीतिक यथार्थ समग्र के उस यथार्थ का पक्ष है जिसका संबंध 'व्यक्ति के उसके अपने अस्तित्व की व्यवस्था के निरन्तर प्रयास से है । 'इस तरह स्पष्ट है कि राजनीतिक यथार्थ व्यक्तियों के मानवीय क्षेत्राधिकार से संबंधित है वोगेलिन के 'अनुसार यथार्थ के तीन आयाम व्यक्ति, समाज तथा इतिहास है । फलत: वोगलिन ने राजनीति विज्ञान को परिभाषित करते हुए लिखा है कि राजनीति विज्ञान व्यक्ति, समाज तथा इतिहास की बौद्धिक (Noetic) व्याख्या है जो गैर–बौद्धिक व्याख्याओं की भूमिका से उत्पन्न होती है तथा इसमें तनावों के मध्य अस्तित्व मे रहती है । दूसरे शब्दों में, राजनीति विज्ञान राजनीतिक यथार्थ की बौद्धिक व्याख्या है । राजनीतिक यथार्थ के तीनों आयामों – व्यक्ति समाज एवं इतिहास–का विवेचन करने से पूर्व यह वांछनीय होगा कि हम यह देखें कि वोगेलिन ने बौद्धिक व्याख्या से क्या तात्पर्य लिया है । वोगेलिन ने बौद्धिक व्याख्या की दो विशेषताओं का विवेचन किया है । प्रथम, वोगेलिन की दार्शनिक व्याख्या प्लेटो एवं अरस्तु द्वारा दी गई व्याख्याओं के अनुरूप है । द्वितीय, वोगेलिन का मानना है कि बौद्धिक व्याख्या राजनीतिक यथार्थ में तनाव से उत्पन्न होती है । उनके अनुसार यह तनाव बाह्य अनुभव की वस्तु नहीं वरन् यह आन्तरिक अनुभव एवं विशिष्ट व्यक्तियों की मूर्त चेतना का तनाव है । यह अस्तित्ववादी तनाव सत्यों के संघर्ष

से उत्पन्न होता है । फलत: यह अस्तित्व के प्रति चिन्तन एवं उत्सुकता है । इस प्रकार यह व्यक्ति के सत्य की खोज एवं विश्व, समाज एवं इतिहास में प्राणी के अस्तित्व की खोज से जुड़ जाती है । दूसरे शब्दों में, यह व्यवस्था की खोज से सम्बद्ध होती है । वोगेलिन के अनुसार यह खोज रिपब्लिक की खोज के अनुरूप है ।

4. राजनीतिक यथार्थ के आयाम

अब हम राजनीतिक यथार्थ के तीनों आयामों – व्यक्ति, समाज एवं इतिहास का मूल्यांकन करने का प्रयास करेंगे । यहां हम देखने का प्रयास करेंगे कि इन तीनों के बारे में वोगेलिन क्या दृष्टिकोण अपनाता है । यह देखना इसलिए भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि इनके प्रति अपनाया गया दृष्टिकोण ही राजनीति विज्ञान की प्रकृति को तय करता है ।

4.1 व्यक्ति

वोगेलिन का मानना है कि राजनीति का किसी भी प्रकार का विश्लेषण मानव प्रकृति के सावधानीपूर्वक तय किए सिद्धान्त पर आधारित होता है । मानव प्रकृति के इस अध्ययन को वोगेलिन ने दार्शनिक नृविज्ञानशास्त्र की संज्ञा दी है । वोगेलिन ने मानव प्रकृति को प्लेटो–अरस्तु के व्यक्ति की मान्यता के रूप में लिया है । प्रोटोगोरियन की इस धारणा कि 'व्यक्ति ही सभी वस्तुओं की कसौटी है,' को वोगेलिन ने अस्वीकार करते हुए उसने ईश्वर को प्रत्येक चीज की कसौटी माना हैं । वोगेलिन के अनुसार अगर व्यक्ति मानव प्राणी के रूप में अपना अधिकतम विकास प्राप्त करना चाहता है तो उसे दैवीय तरीके के साथ विवेक का जीवन जीना चाहिए । वोगेलिन का व्यक्ति अरस्तु के 'स्पौडिआस (Spoudias) के समान हैं । स्पौडिआस एक ऐसा व्यक्ति है जो कि उचित क्रम में अपनी प्राथमिकताएं रखता है । ऐसा व्यक्ति जो उच्चतम अच्छाई प्राप्त कर लेता है, यह उच्चतम अच्छाई स्वयं में अच्छाई होती है न कि अन्य अग्रिम अच्छाई प्राप्त करने का साधन । जीवन सम्पदा, शक्ति,. सम्मान आदि प्राप्ति के लिए नहीं वरन् का जीवन ही व्यक्ति के लिए उच्चतम जिवन हैं । इस तरह के जीवन में सभी क्षमताएं एवं शक्तियों की पूर्ति हो जाती है । ऐसा जीवन व्यक्ति को सद्गुणी जीवन, विवेकीय जीवन, दैवीय तत्व तथा हमारे अंदर की उच्चतम चीज के प्रति अग्रसर करता है, अत: हम कह सकते हैं कि वोगेलिन एक ऐसे व्यक्ति की पुन: खोज के प्रयास में था जो कि प्लेटो अरस्तू के व्यक्ति की धारणा की भांति सद्गुणी एवं नैतिक हो । इस हेतु वोगेलिन मुख्यता: अरस्तु की पुस्तक 'Nichomachean Ethics' i.iv, तथा x को आधार बनाता है ।

4.2 समाज

वोगेलिन एक ऐसे अच्छे समाज का प्रारूप प्रस्तुत करना चाहता था, जो अपने आप में एक उदाहरण सिद्ध हो । वोगेलिन का मानना है कि एक राजनीतिक दार्शनिक का यह एक महत्वपूर्ण कार्य है कि वह एक व्यापक प्रारूप संरचना तय करे, जिसके आधार पर वह प्रचलित शासन प्रणालियों का मूल्यांकन कर सके । उदाहरणार्थ प्रस्तुत किए जाने वाले समाज का प्रारूप तैयार करना इस बात का प्रतीक है कि 'स्पौडिआस (Spoudias) के ईद–गिर्द समाज को कैसे

संगठित किया जाये । वोगेलिन ने स्पष्ट रूप से कहा है कि उसके द्वारा उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जाने वाला समाज का रूप न तो आदर्श राज्य का रूप होगा और न ही काल्पनिक व्यवस्था का । यह व्यक्तियों की मूल्य पसंदगी का निरूपण नहीं है । उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जाने वाला समाज सात्विक यथार्थ का एक रूप है । यह एक ऐसी तस्वीर है जिससे हमें यह पता चलता है कि अगर मानव व्यवस्था के आधारों पर समाज का गठन किया जाए तो वह कैसा लगेगा । वोगेलिन ने स्पष्ट रूप से कहा कि काल्पनिक रचना का वैज्ञानिक राजनीतिक सिद्धान्त से कोई संबंध नहीं है । काल्पनिक रचना को परिभाषित करते हुए वोगेलिन ने कहा है कि 'यह पूर्ण समाज प्राप्ति का एक रचना है जो कि नागरिकों को शैक्षणिक प्रक्रिया की अपेक्षा एक निर्धारित खाके के अनुसार संगठित करना चाहता है । 'वोगेलिन ने काल्पनिक व्यवस्था (Uto–pia) को राजनीति के इन्द्रजाल (Black Magic of Politics) की संज्ञा देते हुए कहा कि इसका आधार विवेकीय खाका नहीं होता है । साथ ही, वोगेलिन ने राजनीति दार्शनिकों को इसके प्रति भी आगाह किया है कि उदाहरणार्थ प्रस्तुत किए जाने वाले समाज का प्रारूप तय करते समय उन्हें इसके प्रारूप की व्यापक एवं गहन संरचना प्रस्तुत करनी चाहिए । दार्शनिकों को बहुत सावधानीपूर्वक कार्य करना चहिए, क्योंकि प्रारूप निर्माण किसी साहित्यिक रचना से बहुत ज्यादा होता है । वोगेलिन ने स्वयं ऐसे समाज का प्रारूप प्रस्तुत करते हुए कहा है कि यह समाज दो मान्यताओं पर आधारित होगा ?

प्रथम, यह इतना व्यापक और समृद्ध होगा, जितना कि विवेकीय जीवन को संभव बनाने के लिए आवश्यक होगा ।

द्वितीय, इसको इस तरह से संगठित किया जाएगा कि विवेकीय जीवन समाज के सांस्कृतिक एवं राजनैतिक संबंधों में आधारशक्ति बन जाए ।

वोगेलिन का मानना है कि इस तरह का अच्छा समाज कभी कठोर नहीं होगा । इसकी रचना बहुत लचीली होगी एवं यह व्यक्ति एवं समाज की प्रकृति के अनुभवात्मक ज्ञान के आधार पर विभिन्नता लिए भी होना चाहिए । 'यह अच्छा समाज शाश्वत रूप में अच्छा नहीं होगा । जो समाज इतिहास के एक बिन्दु पर अच्छा है, कालान्तर में प्रकृति के नियम के अनुसार उसमें पतन एवं विघटन होना स्वाभाविक है । इस दृष्टि से वोगेलिन ने प्लेटो तथा अरस्तु द्वारा बिम्बित व्यवस्थाओं को सबसे अच्छी व्यवस्था माना है । किन्तु समय के साथ उनमें विकृतियां आयी तथा उन व्यवस्थाओं ने पूर्णत: भिन्न रूप ले लिया । फलत: यथार्थ एवं उसके प्रतीकों में विकृति स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगी । वोगेलिन के अनुसार आज राजनीतिक दर्शन का मुख्य कार्य इस विकृति को दूर करके एक बार फिर उसी व्यवस्था की खोज करना है, जिसकी संरचना क्लासिक़ल दार्शनिकों, विशेषकर प्लेटो एवं अरस्तु ने प्रस्तुत की थी ।

इस संदर्भ में यह उल्लेख करना वांछनीय होगा कि वोगेलिन राज्य को राजनीति विज्ञान की कोई उपयुक्त अवधारणा नहीं मानता है । अत: उनके अनुसार राज्य तथा अन्य संघों के मध्य संबंधों का कोई मतलब नहीं रह जाता है । वोगेलिन के अनुसार राज्य अवधारणा नहीं वरन् एक प्रतीक है, जो कि आधुनिक इतिहास के एक विशिष्ट बिन्दु पर उद्भव हुआ है । इस संदर्भ में गेगेलिन जॉन बोदां का उल्लेख करते हुए कहता है कि वह सोलहवीं सदी में इसके

(राज्य) द्वारा संघर्षरत धार्मिक स्थितियों का समाधान प्राप्त करना थाहता था । इसी तरह वोगेलिन ने राष्ट्रराज्य के बारे में मत व्यक्त करते हुए है कि राष्ट्र व्यवस्था एवं इतिहास के दर्शन के परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में अध्ययन की कोई बौद्धिक इकाई नहीं हो सकता है । वोगेलिन आरनोल्ड टायनबी को उदघृत करते हुए कहता है कि सभ्यताओं का अपना इतिहास होता है जबकि राष्ट्र राज्यों का अपना कोई इतिहास नहीं होता । अत: वोगेलिन का मानना है कि हमें राज्य के स्थान पर समाज या राजनीतिक समुदाय प्रतीक के रूप में प्रयोग करना चाहिए ।

4.3 इतिहास

वोगेलिन के अनुसार राजनीति सिद्धान्त का तीसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष मानव समाज की सही व्यवस्था के विज्ञान को प्रस्तुत करना है । वोगेलिन का मानना है कि यह तभी संभव हो सकता है जबकि ऐतिहासिक अस्तित्व एवं प्रक्रिया का ज्ञान हो । इस संदर्भ में वोगेलिन समय के साथ–साथ अपनी पूर्व मान्यता में परिवर्तन करता गया और इस प्रकार उसने निम्न तीन मान्यताएं प्रस्तावित की हैं

प्रथम, वोगेलिन ने अपनी पहली मान्यता 'The New Science of Politics' में प्रस्तावित की है । यहां वोगेलिन राजनीति के सिद्धान्त को इतिहास के सिद्धान्त के साथ सम्बद्ध करने का प्रयास करता है । वोगेलिन ने लिखा है कि राजनीतिक समाज में व्यक्ति का अस्तित्व एक ऐतिहासिक अस्तित्व है । किसी राजनीति के सिद्धान्त को अगर मूल तत्वों का स्थान लेना है तो उसे उसी समय एक ऐतिहासिक सिद्धान्त भी होना चाहिए । राजनीतिक सिद्धान्त इतिहास से बंधा हुआ होता है । 'वोगेलिन का मानना है कि इतिहास की यह मान्यता प्लेटो के दर्शन में एक स्वीकृत परम्परा रही है ।

द्वितीय, वोगेलिन की इतिहास की द्वितीय मान्यता 'Order and History' के प्रथम खंड में सामने आती है । यहां वोगेलिन राजनीति विज्ञान को इतिहास के दर्शन एवं इतिहास की व्यवस्था के रूप में लेता है । इतिहास की व्यवस्था के बारे में वोगेलिन ने लिखा है कि 'इतिहास की व्यवस्था व्यवस्था के इतिहास से प्रकट होती है । 'दूसरे शब्दों में, वोगेलिन के इतिहास का दर्शन इतिहास की व्यवस्था, जो कि व्यवस्था के इतिहास से उदभव होती है, की मान्यता पर आधारित है । उनके अनुसार व्यवस्था का दर्शन इतिहास में किसी भी अर्थ को समझने के लिए आवश्यक है । किन्तु यहां यह स्पष्ट कर देना वांछनीय होगा कि वागेलिन की इतिहास के दर्शन की धारणा हीगल के इतिहास के दर्शन की मान्यता से पूर्णत: भिन्न है । जैसा कि वोगेलिन ने स्वयं कहा है कि उसकी व्यवस्था का दर्शन अस्तित्व की अवधारणाओं एवं उसके सैद्धान्तिक एवं संस्थात्मक प्रकटीकरणों के इतिहास का कोई स्मरणीय तथ्य नहीं है । अत: यह न तो विचारों का इतिहास है, न ही दर्शन का इतिहास है और यहां तक कि न ही अठारहवीं सदी से किसी परिचित इतिहास का दर्शन है । वास्तव में यह निश्चित रूप से आधुनिक समय में दर्शन के किसी भी अन्य प्रयास के विपरीत है । वोगेलिन इतिहास के दर्शन के माध्यम से कोई ऐतिहासिक प्रारूप का अर्थ या इतिहास के अंतिम अर्थ को प्रकट नहीं करना चाहता था, वरन् वोगेलिन के इतिहास का दर्शन तो अनुभव के अस्तित्व' पर आधारित है । जैसा कि वोगेलिन ने लिखा है कि 'यह विश्व में अस्तित्व की अपनी व्यवस्था के लिए मानव

जाति के संघर्ष को प्रकट करता है ।' वोगेलिन के अनुसार इतिहास का सिद्धान्त या इतिहास का दर्शन व्यक्ति को उसके अस्तित्व की स्थिति, ऐतिहासिक प्रक्रिया में उसकी सहभागिता, सभ्यताएं, जिन समयों से चल रही थी, उनके आयामों को प्रकट करना है । अत: इतिहास समाज में मानव अस्तित्व की प्रमुख व्यवस्थाओं एवं उनके प्रतीकों के उत्तरोतर क्रम के रूप में प्रकट होता है जिसे कि समाज अपनी स्व व्याख्याओं के अनुरूप स्वरूप प्रदान करता है । वोगेलिन ने अब तक की ऐतिहासिक प्रक्रिया में पांच प्रतीक रूपों की दृष्टि से पांच व्यवस्थाओं का उल्लेख किया है । ये व्यवस्थाएं अपने विशिष्ट प्रतीकों के रूप में सामने आयी हैं । वोगेलिन के अनुसार ये व्यवस्थाएं एवं उनके प्रतीक निम्न हैं –

(क) प्राचीन पूर्व का साम्राज्यिक संगठन, इसका अस्तित्व विशवव्यापी मिथक के रूप में प्रकट हुआ।

(ख) इतिहास में अस्तित्व के श्रुति (Revelatory) रूप का विकास । इस श्रुति रूप का विकास मोजेस एवं कुछ खास व्यक्तियों के पैगम्बरों ने किया है ।

(ग) व्यवस्था के प्रतीकवाद के रूप में दर्शन का विकास । यह पोलिस एवं हेलेनिक मिथक (Polis and Hellenic Myth) के रूप में प्रकट हुई।

(घ) अलेक्लेण्डर से बहु –सभ्यतायी साम्राज्य उद्भव । ईसाइत्व के रूप में अभिव्यक्ति ।

(ङ:) आधुनिक राष्ट्रीय राज्य का उद्भव । व्यवस्था के प्रतीक के रूप में आधुनिक गूढ़ज्ञानवादी (Gnosticism) का उद्भव ।

वोगेलिन ने इतिहास में उपर्युक्त पांचों व्यवस्थाओं के विवेचन को Order and History' के छः खंडों के माध्यम से प्रस्तुत करने की योजना बनाई । प्रथम तीन खंड अर्थात् खंड 1 : Israel and Revelation, खण्ड 2: The world of the Polis, खण्ड 3:Plato and Aristotle, क्रमश: प्रथम तीन व्यवस्थाओं के रूप में सामने आए । बाद में तीन खण्डों, अर्थात् खण्ड 4: Empire and Christianity, खण्ड 5: The Protestant Centuries एवं खण्ड 6 : The Crisis of Western Civilization को बाद की दो व्यवस्थाओं के विवरण के लिए तय किया गया । किन्तु कालान्तर में चलकर वोगेलिन ने अपनी इस योजना में संशोधन कर लिया जो कि 'Order and History' के खण्ड 4: Ecumenic Age एवं खण्ड 5 :In Search of Order से संबंधित है । वोगेलिन द्वारा अपनी योजना में जो संशोधन किया गया उसका विवेचन तृतीय बिन्दु में किया जाएगा ।

तृतीय, वोगेलिन के 'Order and History' खण्ड 3 एंव खण्ड 4 में प्रकाशन के मध्य अठारह वर्ष का समय लग गया । जब 'Order and History' का चौथा खण्ड 'Ecumenic Age' सामने आया तो वोगेलिन की छः खण्डों वाली मूल योजना टूटती हुई दिखाई दी । अपनी योजना के इस टूटने को स्पष्ट करते हुए वोगेलिन ने 'Ecumenic Age' की प्रस्तावना में लिखा है कि जैसे जैसे काम आगे बढ़ा ऐतिहासिक व्यवस्थाओं एवं उनके प्रतीकीकरण से जो संरचनाएं उदभव हुई वह पूर्व में किए गए अनुमान से ज्यादा ही जटिल सिद्ध हुईं।' वोगेलिन ने स्वयं अपनी मूल योजना के टूटने के दो कारण बताए हैं: प्रथम हालांकि वोगेलिन का मानना

रहा है कि अध्ययन का उनका मूल– सिद्धान्त इतिहास की व्यवस्था, व्यवस्था के इतिहास से उद्भव होती है –गलत नहीं था, पांच प्रकारों की व्यवस्था एवं प्रतीकीकरण की मूल योजना एक ठोस योजना है तथा उनका विश्लेषण अब भी सार्थकता लिए हुए है । किन्तु फिर भी वह सम्पूर्ण सामने आई सामग्री को समाहित करने की दृष्टि से बहुत सीमित थी ।

द्वितीय, इतिहास की कोई भी रेखीय (Linear) अवधारणा व्यवस्था एवं प्रतीकीकरण के विभिन्न रूपों को संरचनाकृत नहीं कर सकती है क्योंकि अर्थ एवं तात्पर्य की एक रेखा समय की रेखा के साथ–साथ नहीं चल सकती है । इतिहास की रेखीय मान्यता खत्म हो गई है । वोगेलिन के अनुसार रेखीय इतिहास की अवधारणा पश्चिम के लिए तो प्रमुख रही किन्तु अन्य संस्कृतियों के लिए जो कि एक समय–चक्र में अस्तित्व में रही, आनुभविक रूप से उपयुक्त नहीं रही । साथ ही वोगेलिन का मानना रहा है कि जब हम इतिहास की एक रेखीय सर्वव्यापक मान्यता को लेकर चलते हैं तो महत्त्वपूर्ण सभ्यताओं को ही स्थान मिलता है तथा छोटी स्थानीय संस्कृतियों को आसानी से अनदेखा किया जा सकता है । यह स्थिति दार्शनिक दृष्टि से न्यायोचित नहीं है ।

वोगेलिन ने इतिहास की एक रेखीय अवधारणा को अस्वीकार करके आत्म चेतना की संरचना के रूप मे लिया । अत: वोगेलिन ने अपनी तीसरी मान्यता में इतिहास के दर्शन को एक आत्म चेतना के दर्शन के रूप में स्वीकार किया । जैसा कि वोगेलिन ने लिखा है कि 'समाज एवं इतिहास में मानव व्यवस्था की समस्या चेतना की व्यवस्था से उद्भव होती है । इस कारण से आत्म चेतना का दर्शन राजनीति के दर्शन का केन्द्रीय बिन्दु है ।' वोगेलिन ने कहा है कि हम व्यक्तियों के रूप में आत्म चेतना की व्यवस्था में हमारे अस्तित्व की व्यवस्था को पाते हैं । अत: वोगेलिन के अनुसार दार्शनिक स्वयं अपने चिन्तन की जड़ों के बारे में स्पष्ट होता है। अत: वोगेलिन अपने दर्शन की अवधारणा के माध्यम से आत्म चेतना के सिद्धान्त पर आधारित अस्तित्व के प्रति बौद्धिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है । इतिहास में वे उन मध्य (Leap in being) के दार्शनिकों एवं संस्कृतियों को भी देखने लगते हैं जो कि दो प्रमुख सभ्यताओं के बीच प्रभावी रहे तथा चिन्तन विभिन्नीकरण की दृष्टि से प्रभावी रहे । वोगेलिन अपने इस चिन्तन के बदलाव की स्वयं 'Order and History' के खण्ड 5: In Search of

Order में भी पुष्टि करते हैं । साथ ही यहां वह परानुभविक प्रस्थापनाओं तथा मानव यथार्थ के अलंघ्य संरचना के अपने अर्थ को अभिव्यक्त करने के लिए वह उपयुक्त भाषा के उदभव पर जोर देते है जिसमें कि सभी ऐतिहासिक कृत्यों को समाहित किया जा सकता है ।

5. राजनीतिक यथार्थ की अभिव्यक्ति का साधन: प्रतीक योजना

वोगेलिन का मानना है कि हर चिन्तन की यथार्थता विभिन्न प्रतीकों माध्यम द्वार प्रकट होती है । 'प्रतीकात्मकता किसी ऐसे व्यक्ति के एक अनुभव के रूप में अभिव्यक्त होती है जिसकी आत्मा ब्रह्माण्ड तथा उसके अस्तित्व वे दैवीय धरातल की तरफ खुलती है ।' वोगेलिन ने इन प्रतीकों में तीन–मिथक् (Myth), दर्शन एवं श्रुति (Revelation) को माना है । वोगेलिन का मानना है कि यथार्थ तक पहुंचने के लिए वह तीसरा रास्ता है । अत: हम कह सकते हैं कि मिथक, दर्शन एवं श्रुति मानव अनुभव के प्रतीकात्मक रूप हैं जो कि अनुभव के विशिष्ट

विभिन्न रूपों को प्रकट 'करते हैं एवं यथार्थ के ज्ञान के व्यवस्थित रूप को संचारित करते हैं । यद्यपि इन प्रतीकों की सत्यता इनके द्वारा संग्रहित किए गए अनुभव के स्तर पर निर्भर करती है न कि स्वयं प्रतीकों के स्तर पर । साथ ही वोगेलिन का मानना है कि ये प्रतीक अस्तित्व को सार्थकता का रूप भी प्रदान करते हैं । वोगेलिन का मानना रहा है कि राजनीति विज्ञान का संबंध उन प्रतीकों से है, जो कि व्यक्तियों को राजनीतिक यथार्थ की बहुत व्यापक एवं स्वआलोचनात्मक समझ में सहायता करते हैं ।

वोगेलिन का मानना है कि आधुनिक युग एक प्रलयकारी अवस्था से गुजर रहा है क्योंकि वैचारिक सैद्धान्तिकों ने जो दृष्टिकोण अपनाया उसके फलस्वरूप राजनीतिक यथार्थ धूमिल पड़ता जा रहा है एवं उसके मूल प्रतीकों का स्थान अन्य प्रतीक ले रहे हैं । दर्शन की यह विकृति एवं पथविचलन उस समय हुआ, जब प्रतीकों का स्थान विवेक ने तथा बौद्धिक सहभागिता का स्थान अनुभव की अन्य विधियों ने ले लिया । वोगेलिन का मानना है कि यह विकृति दार्शनिकीकरण के इतिहास की एक प्रमुख विशेषता रही है और आज भी है । जैसा कि वोगेलिन ने लिखा है कि 'दर्शने के इतिहास का अधिकांश भाग इसके पथविचलन के इतिहास का है ।' वोगेलिन का मानना हे कि दर्शन की विकृति एवं पथविचलन की यह प्रवृत्ति न्यूनाधिक रूप से अरस्तु के बाद से ही पाई जाती है । आज सभी समसामयिक दार्शनिक प्रवृत्तियों–आदर्शवाद, यथार्थवाद, पदार्थवाद, नवकाण्टवाद, प्रत्यक्षवाद, हीगलवाद, मार्क्सवाद गोचरवाद, अस्तित्ववाद, मानववाद, इतिहासवाद एवं नवथोमिज्म – इसी विकृति के रूप हैं । इन प्रवत्तियों के सिद्धान्तविदों 'ने व्यक्ति, समाज तथा इतिहास की व्यवस्था को उलट दिया है तथा तथाकथित इतिहास के ऐसे दर्शनों कि रचना की है जिसमें व्यक्ति को इतना सीमित बना दिया गया कि उसे इतिहास या समाज का साधन मात्र माना जाने लगा ।

इतिहास को व्यक्ति से उच्च स्तरीय यथार्थ माना जाने लगा । अत: सी. एस. लेविस का निष्कर्ष रहा है कि 'यथार्थ की इस वैचारिक विरूपण की प्रक्रिया में व्यक्ति का उन्मूलन हो गया ' किन्तु इनमें वोगेलिन ने दर्शन के विकार के लिए सबसे ज्यादा उत्तरदायी हीगल एवं उसके बाद प्रत्यक्षवाद को माना है । इनके परिणामस्वरूप सभी समाज विज्ञान, विशेषकर समसामयिक राजनीति विज्ञान दो विरोधी ध्रुवों – मतान्ध पराभौतिकवाद एवं मतान्ध प्रत्यक्षवाद–में बंट गए हैं । वोगेलिन के अनुसार मिथक, दर्शन एवं श्रुति के यथार्थ के ग्रहण (प्रभावहीनता) के लिए उत्तरदायी हीगल की आत्मा (Geist) विचार तथा चिन्तन (Gedanke) आदि प्रतीकवाद था । मिथक के विरुद्ध विद्रोह केवल यथार्थ 'के ग्रहण में ही समाप्त हो सकता है । जैसा कि वोगेलिन ने लिखा है कि "दैवीय रूप से व्यवस्थित ब्रहमाण्ड में सहभागिता का अनुभव मानव से परे केवल मिथक के साधन द्वारा ही अभिव्यक्त होता है । आत्म चेतना की परिधि में इसे चिन्तन की प्रक्रिया में रूपान्तरित नहीं कर सकते हैं । वोगेलिन ने माना है कि यह सही है कि जब पुराने मिथक ब्रहमाण्ड के बारे में गहन अनुभव अपूर्ण लगने लगते हैं और एक अन्य आत्म चेतना बौद्धिक रूप से प्रकाश मान बनने लगती है तो एक नए मिथक की जरूरत पड़ती है । ऐसी नई मिथक प्लेटो के संवादों तथा ईसाई विचारकों के चिन्तन में पाए जाने वाले बौद्धिक विवेचन को आगे लाने में पर्याप्त होती है । आत्म चेतना तथा उसके परे के

मध्य का संबंध केवल मिथक के द्वारा ही अभिव्यक्त किया जा सकता है, न कि संदिग्ध गूढ़ ज्ञान (Speculative gnosis) के द्वारा हीगल तथा अन्य आधुनिक दार्शनिको द्वारा आत्म चेतना में ही इसे समाहित करने का भ्रमित प्रयास किया गया है ।'

यहां यह स्पष्ट करना वांछनीय होगा कि वोगेलिन ने अपनी प्रारंभिक रचनाओं में ईसाइत्व के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया है, किन्तु अपनी अंतिम रचना 'Order and History', खण्ड 5. In Search of Order में उन्होंने ईसाइत्व के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण अपना लिया है । वोगेलिन का मानना रहा है कि परम्परागत ईसाई अभिव्यक्ति अपने आप को आधुनिक प्रगतिशील मुहावरों से सम्बद्ध करके यथार्थ एवं स्वयं ईसाईयत को विकृत कर रही है। वोगेलिन के अनुसार इसकी स्पष्ट बौद्धिक पराकाष्ठा हीगल में पाई जाती है । वोगेलिन भूत को समझने की हीगल की पद्धति को अस्वीकार करता है । यथार्थ की विकृति में हीगल की भूमिका की विवेचना करते हुए वोगेलिन ने लिखा है कि 'प्रतीकों की प्रमुख विकृति को समझना ही हीगल का अनुत्क्रमणीय योगदान रहा है ।' चेतन यथार्थ (In–reality) तथा वस्तु यथार्थ (Thing–reality) को एक अस्तित्व के नए प्रतीकवाद में सम्मिश्रण के द्वारा समाधान तलाश करना ही हीगल की पूणत: असफलता रही है । यह एक ऐसा विषय है जिसका सार द्वन्द्वात्मक रूप से ऐतिहासिक प्रक्रिया में है जब तक कि वह दैवीय रूप में न पहुंच जाए । इसका उद्देश्य इसके आत्म चेतना के पूर्ण मूर्त अवधारणात्मकता है । अत: यह व्यापक यथार्थ को सीमित करता है ।' वोगेलिन का मानना रहा है कि आधुनिक चिन्तन पर हीगल का प्रभुत्व है जो न केवल संबंधभूत को समझने की पद्धति तक सीमित है वरन् वह हमारे वर्तमान युग में प्रकट होता है । आज हीगल की बौद्धिक दृष्टि से ईसाइत्व के अर्थ को पुन: परिभाषित किया जा रहा है तथा पश्चिम की शक्ति के साथ उसके तादात्म्य को देखा जा रहा है । वोगेलिन का अपना सम्पूर्ण प्रयास आधुनिक चिन्तन पर से हीगल के प्रभाव को कम करना था ।

वोगेलिन प्रत्यक्षवाद की आलोचना करते हुए कहता है कि इससे हम गलत द्वितीय श्रेणी का यथार्थ ही प्राप्त कर सकते हैं । प्रत्यक्षवाद की गति राजनीति के मानव विरोधी वैचारीकरण की तरफ होती हे । 'कामू की भांति वोगेलिन ने माना है कि मनोभाव की बजाय तर्क बहुत ज्यादा राजनैतिक अत्याचार है । सख्त तार्किक सत्यता राजनीति के पर्याप्त दर्शन की अपेक्षा विचारधारा की सूचक है ।' साथ ही प्रत्यक्षवाद द्वारा तथ्यों एवं मूल्यों वे विभाजन की भी वोगेलिन ने आलोचना की है । वोगेलिन के लिए 'क्या होना चाहिए, मूल्य नहीं वरन् यह प्राणी व्यवस्था तथा मानव व्यवहार के मध्य का आनुभविक तनाव है । यह तनाव एक नैतिक दृष्टि को उत्पन्न करता है जो वोगेलिन के अनुसार राजनीतिक कर्म की व्यापक खोज है ।' वोगेलिन क मानना है कि तथ्य–मूल्य का विभाजन प्रत्यक्षवाद द्वारा किया गया आधुनिक् दार्शनिक शब्दावली की 'भ्रष्टता' का परिणाम है । वोगेलिन के अनुसार बौद्धिक प्रतीकीकरण (Noetic symbolization) ही सामाजिक क्षेत्र में स्व–व्याख्या का एकमात्र प्रारूप है ।

वोगेलिन का मानना है कि आधुनिक युग में प्रवृत्ति के फलस्वरूप दर्शन को दो तरह की चुनौतियां मिलने लगीं । प्रथम, अक्षरानुसरणवाद (Literalism) है तथा द्वितीय, अहमवाद (Egophany) है । यह वांछनीय होगा कि इन दोनों चुनौतियों का दर्शन पर क्या प्रभाव रहा,

को देखने का प्रयास करें । प्रथम, अक्षरानुसरणवाद दार्शनिक प्रतीकों को इस रूप में स्वीकार करता है कि वे वस्तुपरक यथार्थ के तथ्ययुक्त वक्तव्यों को लिए होते हैं । अत: इसका परिणाम यह होता है कि दार्शनिक दृष्टि को हमेशा पराभौतिक एवं धर्मतंत्र की व्यवस्था जैसे सीमित रूप में स्वीकार किया जाने लगता है तथा द्वन्द्व का एक निष्फल पद्धति के रूप में परिवर्तित होने का खतरा बढ़ जाता है । इस तरह अक्षरानुसरणवाद विकृति के एक रूप का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें व्यक्ति में बौद्धिक अनुभव की दृष्टि खत्म हो जाती हे । अस्तित्ववादी सत्य का स्थान व्यवस्थात्मक कठोरता ले लेती है और इसे ही उपलब्धि की कसौटी के रूप में लिया जाता है । द्वितीय, वोगेलिन दर्शन के लिए दूसरी चुनौती अहमवाद (Egopany) को मानता है । वोगेलिन के अनुसार दर्शन को यह चुनौती अक्षरानुसरणवाद से ज्यादा व्यापक है । इसके प्रभाव के कारण खुले मानस का स्थान बंद मानस एवं आत्मा का स्थान स्व ले लेता है । वोगेलिन के अनुसार ' अगर आत्मा स्व के आसपास समाप्त होती है तो दर्शन असंभव हो जाता है । इन स्थितियों में ईश दर्शन (Theophany) का स्थान अहमवाद ले लेता है । अलंकारमय यथार्थ से युक्त मानव की प्राकृतिक सहभागिता द्वितीय श्रेणी के यथार्थ की संरचना के आक्रामक प्रयास के अधीनस्थ हो जाती है जिसमें अहरयुक्त स्व (Egophenic self) ही अर्थ एवं तात्पर्य की कसौटी का रूप ले लेता है ।' वोगेलिन का मानना है कि अहमवादी विद्रोह की यह दशा ही आधुनिक युग की विशेषता रही है । आधुनिक व्यक्ति की अहमूवादी प्रकृति निम्न रूपों में अभिव्यक्ति होती है:

1. सच्चे दर्शन की अस्तित्त्ववादी दशा की अस्वीकृति के कारण आधुनिक युग पूर्णत: मतान्ध (Dogmatic) है ।

2. आधुनिक व्यक्ति अलगाववादी मनोवृत्ति से ग्रसित है ।

3. इतिहास दुबारा लिखा जा रहा है ताकि यथार्थ मध्य (Metaxy) को दूर किया जा सके।

4. तनावों के मध्य रहने वाली मानवता को अपरिपक्वता की दशा के रूप में पुन: परिभाषित किया जाता है ।

5. ईश्वरीय आध्यात्मिकता को निरूपण के मनोविज्ञान द्वारा स्पष्ट किया जाता है ।

6. मानव का लक्ष्य इतिहास में स्वतंत्रता की अंतिम दशा, गूढ़ज्ञान (Gnoticism) की स्थापना को माना जाता है ।

7. युगान्त विषयक दिशा के साथ यथार्थ के सच्चे अनुभव का स्थान रूपान्तरित यथार्थ के मिथक–मसीहावाद–को प्रदान कर दिया जाता है ।

8. इतिहास में मानव की अभिकर्ता के रूप में मान्यता का स्थान विभाजित स्व ले लेता है।

युजीन वेब (Eugene Webb) के अनुसार वोगेलिन द्वारा व्याख्यित इस पथविचलन के दो प्रारूप सर्वव्यापकता (Immanentizing) एवं अनुभवातीता (Transcendentalizin) रहे हैं । पथविचलन अनुभवातीतता के प्रारूप की स्पष्ट अभिव्यक्ति ईसाई युग की प्राथमिक शताब्दियों के गद्रूलान (Gnostic) के आन्दोलन में दिखाई देती है । यहां अलगाव की भावना का जन्म होता है और यह अलगाव व्यक्ति एवं विश्व के पृथक्करण में दिखाई देता है । फलत:

बौद्धिक चेतना (Noetic consciousness) खत्म हो जाती है । वेब के अनुसार पथविचलन का दूसरा रूप, सर्वव्यापकीय रूप में दार्शनिक समाज एवं विश्व को एक समस्या के रूप में लेता हैं तथा हमेशा इसको संगठित करने में जुटे रहता है । यह संगठन निम्न दो आधारों पर चरितार्थ होता हैं । प्रथम, व्यवस्था के आन्तरिक की अपील के द्वारा संस्थात्मक व्यवस्थाओं को तय करके इसे उपलब्ध किया जा सकता है । दूसरा, दमन के द्वारा संगठन के प्रारूप को थोपा जा सकता है । जब भी व्यवस्था के प्रारूप को लागू करने की बात की जाती है तो एक आदर्श व्यवस्था के रूप में उसे प्रस्तुत किया जाता है । किन्तु कालान्तर में चलकर वह व्यवस्था व्यक्तियों की आकांक्षाओं को पूरा नहीं कर पाती है । अत: वे दमनकारी व्यवस्था के रूप में सामने आती हे ।

वोगेलिन का मानना है कि दर्शन 'के इस पथ विचलन का दर्शन, विशेषकर राजनीतिक दर्शन पर व्यापक एवं विभिन्न प्रकार का प्रभाव रहा है, जिनमें कुछ का ऊपर विवेचन कर चुके हैं । किन्तु इनमें वोगेलिन ने निम्न दो प्रभावों का और उल्लेख किया है ।

प्रथम, वोगेलिन का मानना रहा है कि 'दर्शन का इतिहास अपने अधिकांश भाग में अपने पथविचलन का इतिहास है... इसका पथविचलन 'फिलाडोक्सी' (Philodoxy) में हो गया है ।' वोगेलिन के अनुसार 'दर्शन' अपना मूल अर्थ खो चुका है तथा इसका प्रयोग 'फिलाडोक्सी' मतप्रियता (Lover of opinion) में हो गया है । अत: दार्शनिकों का आग्रह बुद्धिप्रियता की अपेक्षा मतप्रियता हो गया, वे निश्चितता की इच्छा से प्रेरित होने लगे । यथार्थ के प्रति अभिव्यक्ति के मूल तरीकों में बुद्धि का स्थान आस्था एवं आशा ने ले लिया है ।

द्वितीय, पथविचलन की इस स्थिति का परिणाम यह हुआ कि आधुनिक चिंतन में मानव जीवन को पृथक–पृथक भागों में बांट कर देखा जाने लगा । वोगेलिन ने इसकी आलोचना करते हुए कहा है कि मानव– जीवन को राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा अन्य क्षेत्रों के मध्य नहीं बांटा जा सकता है । उनका मानना है कि इस तरह का विभाजन अमूर्त एवं कृत्रिम है । वोगेलिन के अनुसार राजनीतिक गतिविधि को मानव जीवन की पूर्ण परिधि में ही उचित रूप से समझा जा सकता है । इसका यह तात्पर्य नहीं है कि वोगेलिन इस परिधि, मानव जीवन पर किसी सीमा लक्ष्य का निर्धारण नहीं करता है । जैसा कि दॉते जर्मीनो ने लिखा है कि 'उसके (वोगेलिन) सम्पूर्ण राजनीति दर्शन का संबंध मानव दशा के अनुभव का पर्याप्त प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त करना ही एक सीमा है ।' इस रूप में देख सकते हैं कि वोगेलिन का प्रयास ग्रीककालीन राजनीति की अवधारणा, जिसका कि संबंध सभी मानव गतिविधियों की समग्रता तथा मानव की उच्चतम अच्छाई की तरफ रहा, की ओर लौटने का प्रयास कर रहा है । वोगेलिन राजनीति को एक ऐसे प्रयास के रूप में देखता है जिसका लक्ष्य मानव व्यवस्था के स्रोत के अनुभव लौकिकता के प्रवाह में संरचना का सृजन करना है । वोगेलिन के अनुसार मानव का सांस्कृतिक, दार्शनिक तथा धार्मिक अनुभव वह धरातल है, जिससे राजनीतिक संस्थाएं तथा नीतियां तय होती हैं । वोगेलिन का यह झुकाव निश्चित रूप से आधुनिक उदार चिंतन से बहुत दूर है ।

6. दर्शन की पुन: स्थापना का आग्रह

वोगेलिन का मानना है कि दर्शन के इस विकृत स्वरूप को दूर करने के लिए दर्शन की पुन: स्थापना पर जोर दिया जाना चाहिए । दर्शन की पुन: स्थापना का तात्पर्य दर्शन को जीवन के तरीके के रूप में मानव की स्वचेतना के विशिष्ट विवेकीय तरीके एवं मानव अस्तित्व की सत्यता के ज्ञान के रूप में लेने से है । दर्शन की स्थापना के लिए वोगेलिन निम्न दो चीजें करने के लिए जोर देते हैं.

प्रथम, बौद्धिक चिन्तन मनन (Noetic Meditation) की तकनीक की पुन: खोज की आवश्यकता है । इसके लिए हमें बौद्धिक चिन्तन मनन की पद्धति पर जोर देने वाले दार्शनिकों के लेखन को देखना होगा । जैसा कि इल्लीस संडोज ने लिखा है कि 'दर्शन की पुन: स्थापना का कार्य केवल अरस्तु की सही समझ तक वापिस पहुंच जाने से पूरा नहीं हो जाता है । हालांकि यह आवश्यक रूप से पहला कदम है । अरस्तु दर्शन की उपलब्धि एवं प्रकृति के संबंध में पूर्णत: स्पष्ट था जबकि इस स्पष्टता को आज सामान्यत: महत्त्व नहीं दिया जाता है ।' द्वितीय, चेतना एवं सत्ता मीमांसा (Ontology) के दर्शन के विस्तार की आवश्यकता है । साथ ही वोगेलिन ने इस बात पर भी जोर दिया है कि पुन: स्थापना के इस कार्य को बड़ी सावधानी पूर्वक करना चाहिए । दर्शन की पुन: स्थापना को हमें इस गलत अर्थ में नहीं लेना चाहिए कि इसका लक्ष्य किसी निश्चित एवं अंतिम सत्य की घोषणा करना है । उनका आग्रह तो केवल दर्शन की प्रकृति से संबंधित कमियों को समझकर उनको दूर करने से है । अत वोगेलिन का मानना रहा है कि दार्शनिक को बौद्धिक चेतना की संरचना का विश्लेषण बहुत सावधानीपूर्वक करना चाहिए ।

वोगेलिन का मानना है कि राजनीतिक दर्शन का लक्ष्य समझ की विकृति के विरूद्ध मानव यथार्थ की संरचना एव व्यवस्था की खोज होना है । आज सम्पूर्ण मानव जाति व्यवस्था की इसी खोज में लगी हुई है यद्यपि व्यक्तियों की भूमिका भिन्न–भिन्न हो सकती है । वोगेलिन के शब्दों में, 'यथार्थ की सत्यता पर प्रश्न नहीं किया जा सकता है । इसका प्रतिरोध किया जाता है । अत: हमें सत्य के प्रतिरोध एवं अनुभव किए गए सत्य के अनुकूलतम प्रतीकीकरण के बारे में सहमति या असहमति के मध्य अन्तर करना होगा । प्रतिरोधी मानव प्राणी है । वे उसी प्रकार की आत्मचेतना से युक्त है जिसमें कि सत्यता की खोज में लगा विचारक होता है । उनकी यथार्थ का अनुभव संबंध विचारकों की भांति ही होता है ।' किन्तु जैसा कि पीछे उल्लेख कर चुके हैं कि वोगेलिन के अनुसार सम्पूर्ण आधुनिक चिन्तन हीगल के प्रभाव से युक्त है, अत, यथार्थ का विकृत रूप सामने आ रहा है । आधुनिक चिन्तन पर से हीगल के प्रभाव को कम करने एवं व्यवस्था की खोज हेतु, वोगेलिन के अनुसार क्लासिकल दर्शन विशेषकर प्लेटो की मान्यताओं को स्थापित करना होगा । टिमोथी फुल्लर के शब्दों में, 'नि:सन्देह प्लेटो वोगेलिन का आध्यात्मिक मित्र इसलिए नहीं है कि वोगेलिन क्लासिकल ईसाइयत की अन्त: दृष्टियों को अस्वीकार करता है, वरन् इसलिए है क्योंकि वह प्लेटो को परानुभावकता को अभिव्यक्त करने की भाषा विकसित करने के संघर्ष में अन्य सभी विचारकों से ऊपर मानता है... उसने (प्लेटो) कहीं भी वस्तुगतता एवं व्यक्तिगतता के अन्तर को सामने

नहीं आने दिया जो कि दर्शनशास्त्र एवं धर्मशास्त्र में संघर्ष का केन्द्र बिन्दु है ।' किन्तु टिमोथी फुल्लर का मानना रहा है कि वोगेलिन केवलमात्र प्लेटोवादी नहीं है । वोगेलिन ने अपने लेखन में प्लेटो के साथ ही हेब्रो अवतारों, अरस्तु, पॉल, आगस्टाइन, थामस एक्वीनास, स्कोटिश दार्शनिकों एवं कई अन्य दार्शनिकों का उल्लेख किया है. तथा इन सभी दार्शनिकों ने यथार्थ को प्रकट करने के कुछ संकेत अवश्य प्रदान किए । किन्तु इन सभी में प्लेटो ही एक ऐसा विचारक है जिसका अनुसरण करके आधुनिक चिन्तन पर से हीगल के प्रभाव को कम कर सकते हैं तथा एक ऐसी व्यवस्था की खोज कर सकते हैं जिसमें दर्शन की उचित स्थापना संभव बन सके ।

7. मूल्यांकन

वोगेलिन समसामयिक युग का एक बहुत ही सशक्त विचारक रहा है जिसका विभित्र—विभिन्न विषयों पर गहन चिन्तनयुक्त लेखन रहा है । वोगेलिन पश्चिमी परम्परा का एक रचनात्मक विचारक रहा है । इन्होंने विभिन्न ऐतिहासिक व्यवस्थाओं को अलग–अलग प्रतीक योजना के माध्यम से बहुत प्रभावकारी तरीके से विवेचन किया है । यद्यपि वोगेलिन ने अपने विश्लेषण में प्राचीन स्रोतों को प्रमुखता दी है, किन्तु साथ ही वह समसामयिक चिन्तन के विभिन्न आदोलनों के विवेचन से भी दूर नहीं रहा है । वोगेलिन इस युग का एक ऐसा अनुभूति मूलक विचारक रहा है जिसने बहुत व्यापक आधार पर चिन्तन परम्परा, जिसे कि वह ऐतिहासिक व्यवस्था का नाम देता है, का मूल्यांकन किया है । वोगेलिन ने जस्पर्स, लोनरगन. पोलानी, गेडामेर, रिकर आदि की भांति इस सदी के सांस्कृतिक बदलाव को युग पुरानी सांस्कृतिक प्रस्थापनाओं 'जो कि आज लुप्त प्राय: हो गई है', के ऊपर रखकर स्पष्ट करने के प्रयास के साथ ही एक नई व्यवस्था के सृजन का भी मार्ग प्रशस्त करने का प्रयास किया है । 'इन सभी विचारकों में वोगेलिन' अपने ऐतिहासिक क्षेत्र के विस्तार में तथा ऐतिहासिक केन्द्र बिन्दु की मूर्तता के साथ दार्शनिक दृष्टि की व्यापकता एवं गहनता के संयुक्तीकरण के तरीके में सबसे विशिष्ट है ।' यद्यपि कुछ दार्शनिक एवं दार्शनिक इतिहासकार ऐसे रहे हैं, जिन्होंने मानव एवं उसके अस्तित्व का गहनता से विश्लेषण किया है किन्तु वोगेलिन ने ऐतिहासिक अन्वेषण के साथ दार्शनिक प्रतिबिम्ब को भी जोडा है, वह अपने आप में अनूठा है । 'ज्ञान, बोध, अस्तित्व का खुलापन तथा सूक्ष्म की गहराइयों का संयुक्तीकरण उनको हमारे युग के इतिहास के दर्शन का एक महान दार्शनिक बना देता है ।'

वोगेलिन ने हमारे युग के दो प्रमुख चिन्तन आन्दोलनों, हीगलवादी मान्यता तथा प्रत्यक्षवाद का विश्लेषण करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि आज इनके प्रभाव के कारण राजनीतिक यथार्थ धूमिल पड़ गया है एवं हम दर्शन के पतन की अवस्था में आ गए हैं । वोगेलिन का आग्रह रहा है कि अगर इस अवस्था से उभरना है तो हमको क्लासिकल दर्शन की मान्यताओं, विशेषकर ग्रीककालीन धारणाओं की ओर अग्रसर होना होगा । ऐसे समय में जबकि व्यवहारवाद का बहुत प्रभाव था तथा हर चीज का तकनीकी तथा मूल्य द्वैधता एवं वस्तुगतता दर्शन की मान्यताओं किया जा रहा था, वोगेलिन ने एक बार फिर क्लासिकल दर्शन की मान्यताओं के आधार पर विषयवस्तु पर जोर दिया । क्लासिकल दर्शन की पुन: स्थापना का प्रयास समसामयिक' काल में वोगेलिन की प्रमुख देन है ।

जहां तक वोगेलिन की कमियो का प्रश्न है उनमें से कुछ इस प्रकार है:

प्रथम, वोगेलिन ने विभिन्न ऐतिहासिक व्यवस्थाओं का दार्शनिक दृष्टि से विवेचन करने का प्रयास किया है किन्तु बहुत से ऐसे ऐतिहासिक क्षेत्र हैं जिन पर वोगेलिन ने बहुत कम प्रकाश डाला है । वोगेलिन ने मुख्यत: निकवर्ती पूर्व, क्लासिकल पुरावशेष, पश्चिमी मध्य युग तथा तदुपरान्त पश्चिमी विकासों का विश्लेषण किया है । किन्तु वोगेलिन के चिन्तन में गैर–ईसाई चिन्तन, विशेषकर एशिया के चिन्तन का बहुत ही कम उल्लेख है । हालांकि गैर–ईसाई चिन्तन के कुछ पक्षों का वोगेलिन ने विवेचन किया है किन्तु उनके लेखन में गैर ईसाई चिन्तन कभी भी केन्द्रबिन्दु नहीं रहा । साथ ही वोगेलिन के लेखन में 'सेकण्ड टेम्पल' के विध्वंस उपरान्त के यहूदी चिन्तन के विवेचन का भी अभाव रहा है । यह सही है कि वोगेलिन ने अपनी रचना 'आर्डर एण्ड हिन्दी' खंड प्रथम, में इजराइल के धर्म एवं प्रारंभिक यहूदी धर्म का व्यापक विवेचन किया है । किन्तु उन्होंने कहीं भी उस रबाई परम्परा (Rabbinic tradition) का विवेचन नहीं किया जिसका कि पश्चिम के धार्मिक चिन्तन के विकास में महत्त्तवपूर्ण योगदान रहा है । ईसाइयत एवं यहूदीवाद की जड़े काफी निकटता से जुड़ी होने के उपरान्त भी सामान्यत: दोनों एक दूसरे से अपरिचित ही रहे हैं । इस संदर्भ में वोगेलिन का चिन्तन दोनों मे मध्यस्थता तथा सामंजस्यता का आधार बन सकता है, किन्तु 'सेकण्ड टेम्पल' के विध्वंस के उपरान्त यहूदीवीद का विवेचन न करके वोगेलिन ने इसके क्षेत्र को सीमित कर दिया ।

द्वितीय, वोगेलिन ने व्यावहारिक राजनीतिक प्रभावों के बारे में पर्याप्त रोशनी नहीं डाली । यद्यपि वह मूलत: राजनीतिक दार्शनिक है और उसका लगभग सारा चिन्तन सैद्धान्तिक है किन्तु फिर भी उसने कहीं भी यह स्पष्ट करने का प्रयास नहीं किये है कि इस युग की अस्पष्टता को दूर करने में कौन सा व्यावहारिक रास्ता अच्छा रहेगा । वोगेलिन के चिन्तन में राजनीतिक यथार्थ. विशेषकर समसामयिक यथार्थ को तलाशना बहुत ही कठिन है । वोगेलिन समय के महत्त्वपूर्ण मुद्दों, जैसे हिन्द–चीन युद्ध, शस्त्रों की दौड़, क्रान्तिकारी अपने विरोध का निर्दयी रूप से दमन, आदि पर चुप ही रहा है । अत: वोगेलिन एक रूढ़िवादी विचारक की भूमिका ग्रहण कर लेता है ।

वोगेलिन को कई विचारक उसके द्वारा राजनीति एवं धर्म के विश्लेषण के हेतु अपनाई पद्धति के कारण दक्षिणपंथी विचारक मानने लगे । मोजेस हाडाज (Moses Hadas) ने उनहें गुप्त एवं प्रच्छन्न फासीवादी की संज्ञा दी है । किन्तु ऐसा है नहीं । जैसा कि दाते जर्मिनो ने लिखा है कि 'एक राजनीतिक दार्शनिक के रूप में वोगेलिन राजनीतिक संघर्ष की भाषा के अनुसार वर्गीकरण को अस्वीकार करता है । वह वामपंथी या मध्यममार्गी नहीं वरन् वह तो राजनीति के आलोचनात्मक अध्ययन में लगा हुआ है ।' वोगेलिम के चिन्तन का योगदान तो इसी में है कि उसने एक ऐसी प्रस्तावना प्रस्तुत की है जिस पर आगे आने वाले विचारक कार्य कर सकते हैं । प्रस्तावना या संरचना प्रस्तुत करना ही वोगेलिन के चिन्तन का मुख्य योगदान है ।

8. अभ्याय प्रश्न

1. 'इतिहास दर्शन तथा राजनीतिक यथार्थ की वोगेलिन–दृष्टि ' विषय पर एक लेख लिखिए ।
2. वोगेलिन के अनुसार राजनीतिक यथार्थ की क्या प्रकृति है ? राजनीतिक यथार्थ किस साधन योजना से अभिव्यक्त होता है ? स्पष्ट कीजिए ।
3. वोगेलिन ने किन आधारों पर दर्शन की पुन: स्थापना का आग्रह किया है ? विवेचना कीजिए ।
4. वोगेलिन के राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में योगदान का मूल्यांकन कीजिए ।

9. संदर्भ सूची

एरिक वोगेलिन	:	**दि यू साइन्स ऑफ पालिटिक्स** (1952)
————————————	:	**ऑर्डर एण्ड हिस्टरी** (1957)
डी जर्मिनो	:	**वियोन्ड आइडियालॉजी – दि रिवाइवल ऑफ पोलिटिकल थ्योरी** (1967)
इल्लिस संडोज	:	**'एरिक वोगेलिन एण्ड दि नेचर ऑफ फिलॉसफी'**, **मॉडर्न एज** (1969)
ए. डी. क्रेम्पिगनी व केनेश मिनोग	:	**कम्तेंपोरेरी पोलिटिकल फिलॉसफर्स** (1975)
लीलाराम गुर्जर	:	**बीसवीं सदी के राजनीतिक विचारक** (1997)

ISBN : 13/978-81-8496-282-6